श्री कृष्णामृतमहार्णव
एवं
सदाचारस्मृतिः

प्रकाशकः
श्री भक्ति–प्रज्ञान गौड़ीय वेदान्त विद्यापीठ प्रकाशन,
बंगलौर–५६००८८

प्रस्तावना

श्री जगद्गुरु मध्वाचार्य जी ने द्वैत सिद्धांत की प्रतिष्ठापना करते हुए सैंतीस शास्त्र ग्रन्थों को लिखा है वे **सर्वमूल** नाम से प्रसिद्ध हैं। उनमें **श्री कृष्णामृतमहार्णव** और **सदाचार स्मृति** छोटे ग्रन्थ होते हुए भी अत्यन्त महत्त्व के हैं। जगद्गुरु जी उन ग्रन्थ रूप गागर में सागर भरे हैं। इस ग्रन्थ के बारे में सुमध्वविजय नाम के ग्रन्थ में नारायण पंडिताचार्य जी लिखते हैं।

क्षेत्राग्र्यं त्रिभुवन वैद्यनाथ नाथं।
प्रस्थाय प्रचुर तरान्तरः प्रभवि॥
श्रीकृष्णामृत परमार्णवाभिधानाम्।
चक्रे सद्वचनततिम् स्मभक्तभूत्यै॥

श्री जगद्गुरु मध्वाचार्य जी अपने संचार में कोक्कड़ नाम के वैद्य नाथेस्वर नाम से प्रसिद्ध क्षेत्र को आए थे। वहाँ उनके प्रिय शिष्य नित्य अग्निहोत्र रखने वाले **एढ़पडित्ताय** ने मोक्ष पाने की इच्छा से करने का आचरण और धर्म मार्ग को बताने के लिए प्रार्थना की। उस समय जगद्गुरु जी जो उपदेश दिए वही श्रीकृष्णामृतमहार्णव बना।

इस ग्रन्थ में आचार्य जी से रचित श्लोक कम है, किन्तु विष्णु, नारद, पद्य, स्कन्द इत्यादि महापुराण वचनों से संग्रहित श्लोक हैं। आचार्य जी मतस्थापनाचार्य हैं ही, उसके साथ साथ वे सम्पूर्ण ज्ञान वाले कवि और बड़े मनीषी हैं। उनकी काव्य की प्रतिभा इस छोटे सी से ग्रन्थ में व्यक्त होती है। प्रारम्भ में मंगलाचरण में बताये गये शब्दों के अनुसार इस संसार के अनेक विध के ताप में तपने वाले लोगों के उद्धार के लिए यह ग्रन्थ रचाया गया है। इसके लिए यह ग्रन्थ **अधीयानं इदम् शास्त्रम्** उन्हीं के इन शब्दों से स्पष्ट होता है।

इस ग्रन्थ में एकादशी के आचरण के बारे में शास्त्रीय आधार पूर्वक सारे महत्त्व के विषयों की चर्चा की गयी है। साथ साथ देव पूजा के अर्चन, स्मरण, ध्यान इत्यादि षोडश विधि की

पूजा का महत्त्व बताया गया है। यह विवरण हमें भागवत की नवधा भक्ति के विवरण की याद दिलाता है। आचार्य जी मंगलाचरण में अर्चन, स्मरण, ध्यान, कीर्तन, कथन और श्रवण ये छः विध पुजा को बताते हुए आगे इस ग्रन्थ में इनके बारे में ही विवरण देते हैं, इसकी पूर्व सूचना देते हैं।

यह शास्त्र होते हुए भी काव्य की गरिमा को दिखाने वाला ग्रन्थ हैं। प्रत्येक श्लोक में भगवान के एक विशिष्ट नाम का प्रयोग किया गया है। लौकिक व्यवहार में अंकित नाम के लिए कोई अर्थ नहीं रहता। दृष्टान्त के लिए 'क्षीरसागर लाल' नाम वाले के घर में पीने के लिए दूध तो नहीं छाछ भी नहीं रहता, क्योंकि उसके घर में गाय ही नहीं है। किन्तु भगवान के नाम के बारे में ऐसा नहीं होता। प्रत्येक नाम के लिए एक विशिष्ट अर्थ होता है। आचार्य जी श्लोकों को लिखते या चयन करते समय इसके बारे में विशेष ध्यान दिये हैं। यह ग्रन्थ श्रीकृष्ण नाम के अमृत–महावर्ण यानी अमृत का महासागर हैं। हम इस सागर की गहराई मे जितना डूबते हैं, उतने रत्न हमें मिलते हैं। भगवान् के नाम के निर्वचन से (व्याकरण की सहायता से शब्द का अलग अलग अर्थ निकालना) हमें समग्र श्लोक का और एक विशेषार्थ मिल जाता है। यह आचार्य जी की विशेष प्रतिभा के कारण है। एक ही श्लोक में दो तीन अर्थ दिखाना उनकी विशेषता हैं। हम **महार्णवरत्न संग्रह** में अपने ज्ञान की मिति में इसको दिखाने का एक प्रयास किए हैं। यह एक छोटा सा प्रयत्न है, समग्र अर्थ दिखाना हमारे योग्यता के अधीन नहीं है, और यह कार्य पूर्ण भी नहीं हुआ है। केवल पाठकों को दिशा दर्शन करते हुए इनमें उनके कुतूहल को उत्पादन करने का यह एक छोटा सा प्रयत्न है। पाठक इसका सदुपयोग करेंगे यही आशा है।

पंडित पांडुरंगी वीर नारायणाचार्य बड़े विद्वान हैं। वे बहुत कष्ट सहन करते हुए हिंदी भाषी लोगों के लिए अनुकूल हो इस दृष्टि से इस ग्रन्थ का और सदाचार स्मृति का भाषा में अनुवाद

किए हैं। इनके इस श्रम को गौरव देते हुए हम अपने आराध्य श्री पञ्चमुखी श्री हनुमत् समेत श्री सीता राम जी का अनुग्रह उन्हें प्राप्त हो और ऐसे सत् कार्य उनसे बार–बार हो यह प्रार्थना करते हैं।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन का सारा भार बैंगलोर के श्री माध्वमहामण्डल ने वहन किया है। हम उनके ऋणी हैं।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में सहायक बने ज्ञात अज्ञात सहकारियों के श्रेय को हम सदा चाहते हैं।

तिजारा
राजस्थान
दिनांकः ९–४–२०११

इति शम्
श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी महाराज,
पीठाधिपति मध्वमठ, पलिमारुमठ शाखा, प्रयाग

श्री श्री विद्यात्मतीर्थ विरचित

महार्णव रत्न संग्रहः

	नाम	विवरण
1	**केशवः**	*कश्च ईशश्च = केशौ। वृतु, वर्तने =* ***केशवः***– ब्रह्मा और रूद्र की रक्षा करने वाले। महाप्रलय में (ब्रह्म कल्प के अन्त में) ब्रह्म और रूद्र पद भी नष्ट होते हैं। उस समय उस पद पर रहने वाले ब्रह्म–रुद्रादि देवताओं का भी अन्त होता है। केवल **केशव** ही रह जाते हैं। *'यो ददाति अमृतत्वं हि'* केवल भगवान् ही मोक्ष (मुक्ति) को दे सकते हैं, अन्य कोई नहीं।
3	**जनार्दनः**	*जनान् अर्दयति इति* ***जनार्दनः।*** दुष्ट लोगों को कष्ट देते हैं, इसके लिए भगवान् का नाम **जनार्दन** है। हरि–दीक्षा न लिए हुए और भगवान् की अर्चा–पूजा ना करने वाले पशु–समान लोगों को **जनार्दन** शिक्षा (दण्ड) देते हैं। इसी हेतु यहाँ **जनार्दन** नाम प्रस्तुत है।
4	**अधोक्षजः**	*इन्द्रियावेद्यः* (इन्द्रियों से न जानने योग्य भगवान् ***अधोक्षजः***।) इस संसार में जन्म, रोग, भय इत्यादि हमारी इन्द्रियों के कारण ही होते हैं। **अधोक्षज** की पूजा करने वाला महा भाग्यशाली है। इन्द्रियों से हम **अधोक्षज** को जान नहीं पाते।
5	**विष्णुः**	***विष्णुः*** (*वि+ष्+लृ व्याप्तौ =* ***विष्णुः***।) भगवान् **विष्णु** सर्वत्र व्याप्त होने के कारण सबके

		आधार भूत बने हैं।
6	**हरिः**	***हरिः*** (*हरति इति हरिः।*) पाप को हरण करते हुए विशिष्ट फल को केवल हरि ही दे सकते हैं। पाप हरण के बिना मिले हुए फल से सुख का अनुभव नहीं होगा।
7	**हरिः**	***हरिः*** (*हरति इति **हरिः**।*) कलि के कारण होने वाले महत्तर पाप को भी हरण करने वाले भगवान् केवल **श्री हरि** हैं। अन्य कोई नहीं हो सकता। इसके लिए यहाँ **हरि** शब्द का दो बार प्रयोग किया गया है।
10	**सुरासुर नमस्कृते,**	***सुरासुर नमस्कृते,*** कंस, केशिघ्न—कंस, भृगु ऋषि का अंश वाला असुर था। अतः उसमें देव दानव दोनों गुण थे। केशी पूर्ण रूप से राक्षस था। ऐसे देव दानव दोनो से नमस्कृत **केशव**। *नराणां **कम्** = स्वरूप **सुखम्** यस्मिन लोके **सः नरकः** = वैकुण्ठं प्राप्य न याति संसारं।* **केशव** का आराधन करने वाले वैकुण्ठ को पाने के बाद पुनः संसार को नहीं आते हैं।
24	**गोविन्द**	***गोविन्द** = गो नाम पृथ्वी, विन्द—जीत लिया।* हिरण्याक्ष से वराह रूप से पृथ्वी को जीत लेने के कारण भगवान् का नाम **गोविन्द** है। ऐसे सम्पूर्ण भू मण्डल को अपने वश में रखने वाले भगवान् ही उत्तम स्थान को दे सकते हैं। इसके लिए उत्तम स्थान पाने के लिए तुम **गोविन्द** की आराधना करो। यह बात मरीचि ऋषि ध्रुव के लिए कहते हैं।

24	**अच्युतम्**	***अच्युतम्*** *= जो च्युति रहित है वह अच्युत है।* च्युति रहित स्थान में रहने वाला केवल नारायण ही च्युति रहित स्थान अन्य को दे सकते हैं। ब्रह्मादि देवताओं का स्थान भी महाप्रलय में नाश होने वाले हैं। हे ध्रुव, तुम यदि च्युति रहित स्थान चाहते हो तो **अच्युत** की ही सेवा करो। ही, का प्रयोग इसको दृढ़ करने के लिए किया गया है।
28	**विष्णु**	***विष्णु*** *= वि ष् लृ व्याप्तौ।* सर्वत्र व्याप्त होने के कारण ऐन्द्रमिन्द्रासन को (इन्द्र के समान स्थान को) देने में संशय नहीं। हे ध्रुव, तुम विष्णु की आराधना करो। ध्रुव के लिए यह पुलह ऋषि ब्रह्म पुराण में कहते हैं।
29	**विष्णु**	***विष्णु*** *= वि ष् लृ व्याप्तौ।* सर्वत्र व्याप्त भगवान को इन तीनों लोकों में मिलने वाली इच्छित वस्तु को देने में अथवा विशेष स्थान देने में कोई श्रम नहीं है।
30	**विष्णु**	**विष्णु** = शंख–चक्र–गदा–धारी **विष्णु** को सर्व पाप नाश करने में कोई श्रम नहीं होता।
31	**अनिरुद्ध–प्रद्युम्न–संकर्षण–वासुदेव**	**अनिरुद्ध–प्रद्युम्न–संकर्षण–वासुदेव** = यह चतुर्व्युह–रूप चारों ओर रहते हुए पुनर्जन्म कैसे हो सकता है, अर्थात् नहीं होता।
32	**वासुदेवः**	**वासुदेवः** (वासनात् वासुदेवः – सर्वत्र वास करने वाले वासुदेव में प्रवेश पाने वाले को

		पुनर्जन्म कैसे हो सकता है?)
35	**हरिः**	***हरिः*** *= हरति इति* ***हरिः।*** सकल पाप हरण करने वाले हरि के स्मरण करने के बाद और प्रायश्चित करने की क्या आवश्यकता है?
36	**गोविन्द**	***गोविन्द*** *= गो नाम वेद (शब्द-राशि) विद = ज्ञान (जानना)।* **गोविन्द** के नाम-स्मरण के बिना ज्ञान मिलने वाला नहीं है। **गोविन्द** स्मरण मात्र से मूढ़ एवं कुटिल भी ज्ञानी हो जाता है।
37	**हरिः**	***हरिः*** *= हरति इति* ***हरिः।*** जन्म, मृत्यु, जरा इत्यादियों का हरण करने वाले हरि का स्मरण करने वाला मोक्ष को पाता है।
38	**कृष्णः**	***कृष्णः*** *= कर्षति इति कृष्णः। कलिमलापहम्-* कलयुग के कारण होने वाले पापों को आकर्षण करते हैं। ऐसे श्रीकृष्ण के स्मरण से घोर कलियुग का भी पाप नाश होता है।
41	**वासुदेवः**	**वासुदेवः** = सर्वत्र वास करने वाला भगवान गर्भ, जन्म जरा, रोग, संसार बन्धन आदि दुःखों को नाश करते हुए (उन सब स्थान एवं स्थिति में रहते हुए) वही रक्षा करते हैं। मोक्ष देने वाले **वासुदेव** हैं (**वासुदेव** रूप मोक्ष देता है)।
44	**गोविन्द**	***गोविन्द*** *= गोवर्धन गिरि को उठाने वाले* ***गोविन्द।*** गोवर्धन पर्वत को उठाने वाले को भक्तों की पाप-राशि क्या भार बन सकती है अर्थात् नहीं। वह कपास-राशि के समान है

		तथा एक चिनगारी मात्र से भस्म हो जाने वाली है।
45	**गोविन्द**	***गोविन्द** = वेद का उद्धार करने वाले* ***गोविन्द।*** गो अर्थात् शब्द राशि। वेद के उद्धारक गोविन्द ज्ञान-प्रद होते हैं। उनके आराधना के बिना और गुरूपदेश के बिना दुःख भोगना पड़ता है।
45	**वासुदेव**	***वासुदेव** = वासुश्चासौ देवश्च वासुदेवः।* हृदय गुहा में वास करने वाल वासुदेव की आराधना से योग्य गुरु-रूप वासुदेव के कारण मोक्ष मिलता है।
46	**कृष्ण**	**कृष्ण** = जीव और भगवान के बीच जीवाच्छादक, परमाच्छादक नाम के दो आवरक होते हैं। भगवान श्रीकृष्ण अपने कर्षकत्व गुण के कारण इन दोनों आवरकों (पाप संघात पञ्जरः) को नष्ट करने में समर्थ हैं।
47	**कृष्ण**	**कृष्ण** = मोक्ष चार विध (प्रकार) के होते हैं। मोक्ष-योग्य-जीव प्रारब्ध-कर्म के क्षय के बाद अपने योग्यतानुसार चार प्रकार के मोक्ष में किसी एक को पाकर मूल-रूपि कृष्ण में प्रवेश करता है।
49	**नारायण**	**नारायण**=नारायण बड़ा चोर है। नर-रूप धारण किया हुआ कृष्ण-रूप का चोर हमारे पापों का हरण करता है। क्योंकि भगवान कृष्ण प्रसिद्ध चोर है तथा उनका नाम भी माखन-

		चोर है।
52	**नारायण**	**नारायण**=नारायण देवताओं के लिए भी गुरु हैं इसके लिए वे सुरगुरु हैं। 'हतकिल्बिषः' पाप नाश करते हैं, इससे मोक्ष मिलता है।
54	**नारायण**	**नारायण**=मन्थन से शास्त्रों का ज्ञान होता है। मूल–रूपि **नारायण** भगवान समुद्र मंथन की प्रेरणा देते हैं। **अजित** रूप से मंथन चलाए। **कूर्म** रूप से मंदर पर्वत को उठाये। **धन्वन्तरि**–रूप से अमृत पिलाए। **आलोडय**–– नित्य शास्त्रों का मंथन करना चाहिए।
56	**वासुदेव**	**वासुदेव** = वासुदेव सर्वत्र वास करते हैं। *वेदेषु*––प्रतिपादक रूप से, *यज्ञेषु*––फल भोक्तृत्वरूप से, *तपस्सु*––तप करते हुये, *दानेषु*––पात्र के अधिष्ठान से, *तीर्थेषु*––सन्निहित होकर, *व्रतेषु*––उद्देश्य रूप से, *इष्टेषु*–*पूर्तेषु*–– अन्नादिदान रूप में ऐसे वासुदेव भगवान सारे वस्तुओं में वास करते हैं।

विषय सूची
श्री कृष्णामृतमहार्णव

विषय सूची

सदाचारस्मृतिः

कृष्णामृतमहार्णवः

॥श्री गुरुराजो विजयते॥

श्रीमदानन्दतीर्थभगवत्पादाचार्यविरचितः

कृष्णामृतमहार्णवः

अर्चितः संस्मृतो ध्यातः कीर्तितः कथितः श्रुतः।
यो ददात्यमृतत्वं हि स मां रक्षतु केशवः॥१॥

पाण्डुरङ्गीवीरनारायणाचार्यरचिता हिन्दीविवृतिः

वन्दे गोविन्दमानन्दज्ञानदेहं पतिं श्रियः।
श्रीमदानन्दतीर्थार्यवल्लभं परमक्षरम्॥
आचार्यचरणं नौमि विश्वेशाख्यतिं सदा।
पदनुग्रहलेशेन प्राप्ता विद्या विमुक्तिदा॥

अन्वयः प्रतिपदार्थ अर्चितः (प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल इन तीनों कालों में श्रुति, पञ्चरात्र तथा स्मृति में कहे गये विधियों से पूजित) [तथा] **संस्मृतः** (भक्तिपूर्वक स्मरण किए गए) [तथा] **ध्यातः** (ध्यान के विषयीभूत) **कीर्तितः** (नामग्रहण पूर्वक पुकारे गए) **कथितः** (शास्त्र व्याख्यान के विषय,) **श्रुतः** (गुरूपदेश द्वारा सुनाए गए) **यः** (जो) **केशवः** (कृष्णरूपी भगवान्) **अमृतत्वं** (निरन्तर परमानन्दरूप वैकुण्ठ को) **ददाति** (देते हैं) **सः** (वह श्रीकृष्ण जी) **माम्** (हमारी) **रक्षतु** (रक्षा करें।)

अनुवादः प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल––इन तीनों कालों में श्रुति, पञ्चरात्र तथा स्मृति में कहे गये विधियों से पूजित, तथा भक्तिपूर्वक स्मरण किए गए, तथा ध्यान के विषयीभूत नामग्रहण पूर्वक पुकारे गए, शास्त्र–व्याख्यान के विषय, गुरूपदेश द्वारा सुनाए गए जो कृष्णरूपी भगवान् निरन्तर परमानन्दरूप वैकुण्ठ को देते हैं, वह श्रीकृष्ण जी हमारी रक्षा करें।

(विशेषार्थ श्लोक-संख्या १): श्रीमत् मध्वाचार्य जी ने भक्तों को भगवान् की उपासना पद्धति दिखाने हेतु श्रीकृष्णामृतमहार्णव ग्रन्थ की रचना की है। कृष्णामृतमहार्णव का तात्पर्य है कि भगवान् श्रीकृष्णजी अमृत के समुद्र हैं। उस अमृत समुद्र में स्नान करने से तथा उसका पान करने से लोग मुक्ति को प्राप्त करेंगे। इस ग्रन्थ में भगवान् की पूजा विधि, स्मरण विधि, ध्यान विधि, कीर्तन विधि, कथन विधि तथा स्मरण विधि--इन छह विधियों को प्रतिपादित किया गया हैं। इसी को सूचित करने हेतु अर्चितः, संस्मृतः इत्यादि छह विशेषण दिए गए हैं। इस ग्रन्थ में मुख्यतः भगवान् वेदव्यास जी कृत नाना-पुराणों से लिए गए वचनों से ही इन सारी विधियों का प्रतिपादन किया गया है।

तापत्रयेण संतप्तं यदेतदखिलं जगत्।
वक्ष्यामि शान्तये तस्य कृष्णामृतमहार्णवम्॥२॥

अन्वयः तापत्रयेण (आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक इन तीन कष्टों से) **सन्तप्त** (दुःखानुभूति करने वाला) **यदेतत्** (यह जो) **अखिलं** (पूरे जगत् हैं) **तस्य** (उस जगत् ताप की) **शान्तये** (शान्ति हेतु) **कृष्णामृतमहार्णवम्** (कृष्णामृतमहार्णव ग्रन्थ की) **वक्ष्यामि** (रचना करूंगा।)

अनुवादः आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं आधिभौतिक इन तीन कष्टों से दुःखानुभूति करने वाला यह जो पूरा जगत् हैं, उस जगत् ताप की शान्ति हेतु कृष्णामृतमहार्णव ग्रन्थ की रचना करूंगा।

(विशेषार्थ श्लोक-संख्या २): आध्यात्मिक, अधिदैविक एवं आधिभौतिक दुःखों से, अथवा शारीरिक-मानसिक-वाचिक दुःखों से, अथवा गर्भवास, जन्म एवं मरण—इन तीनों से उत्पन्न होनेवाले दुःखों से, अथवा बाल्य, यौवन एवं वार्धक्य—इन तीन अवस्थाओं में होनेवाले दुःखों से यह सम्पूर्ण जगत् व्यथित, व्याकुलित, उद्वेलित और उद्विग्न हुआ है। इस दुःख की शान्ति न घर से, न बच्चों से, न किसी मकान या जायदाद इत्यादि से होती है। ये सब

दुःखों के ही कारण हैं। जैसे-जैसे अधिक वाहन, घर इत्यादि सम्पत्ति बढ़ाते जायेंगे, वैसे-वैसे ही हम और अधिक दुःखी हो जायेंगे। इस दुःख की शान्ति का उपाय एकमात्र केवल भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं। कृष्णरूपी अमृत को पान करने से ही परम सुख की प्राप्ति होती है। इसलिए भगवान् श्री कृष्ण जी को अमृत के सागर के रूप में वर्णन किया गया है।

ते नराः पशवो लोके किं तेषां जीवने फलम्।
यैर्न लब्धा हरेर्दीक्षा नार्चितो वा जनार्दनः॥३॥

अन्वयः यैः (जिन लोगों ने) **हरेः** (भगवान की) **दीक्षा** (दीक्षा को) **न लब्धः** (न लिया हो) **वा** (अथवा) **जनार्दनः** (भगवान् श्री कृष्ण को) **न अर्चितः** (पूजित न किया हो) **ते नराः** (वे लोग) **लोके** (इस संसार में) **पशवः** (बिल्कुल जानवर ही हैं।) **तेषां** (उन लोगों के) **जीवने** (जीवन से) **किं फलम्** (क्या लाभ हैं?)

अनुवादः जिन लोगों ने भगवान् की दीक्षा को **न** न लिया हो अथवा भगवान् श्रीकृष्ण को पूजित न किया हो, वे लोग इस संसार में बिल्कुल जानवर ही हैं। उन लोगों के जीवन से क्या लाभ हैं?

(विशेषार्थ श्लोक-संख्या ३): इस संसार में जिस प्रकार अनेक प्रकार के प्राणी, पक्षी इत्यादि जानवर जीवन यापन कर रहे हैं, उसी प्रकार जीवन यापन करना ही जिनका उद्देश्य है, ज्ञान भक्ति का कोई प्रसंग जिनके जीवन में नहीं है, जिन लोगों ने भगवान् के सर्वोत्तमत्व ज्ञानपूर्वक भक्ति की अन्तरङ्ग दीक्षा अथवा ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण तप्त-मुद्रा-धारण इत्यादि बहिरङ्ग-दीक्षा भी नहीं ली हो तथा जीवन में कभी भी भगवद् आराधना न की हो, वे लोग जानवर के समान होंगे।

संसारेस्मिन् महाघोरे जन्मरोगभयाकुले।
अयमेको महाभागः पूज्यते यद्धोक्षजः॥४॥

अन्वयः जन्मरोगभयाकुले (गर्भवासादि जन्म-दुःख तथा त्रिविध भयों के कारण अत्यन्त पीडित) **महाघोरे** (अत्यन्त भयङ्कर) **अस्मिन्** (इस संसार में) **अधोक्षजः** (भगवान् श्री कृष्ण जी) **पूज्यते** (पूजित हो रहे हैं) **इति यत्** (यह विषय) **अयम्** (यह) **एकः** (एक) **महाभागः** (महाभाग्य है।)

अनुवादः गर्भवासादि जन्म-दुःख तथा त्रिविध भयों के कारण अत्यन्त पीडित अत्यन्त भयङ्कर इस संसार में भगवान् श्री कृष्ण जी पूजित हो रहे हैं— यह एक परम सौभाग्य का विषय है।

(विशेषार्थ श्लोक-संख्या ४): गर्भवास बाल्य-यौवन-स्थाविर (वृद्धावस्था) इत्यादि सब अवस्थाओं में नाना प्रकार के भय से पीडित इस संसार में भगवान् की पूजा करना ही अत्यन्त मुख्य भाग्य है। इससे ही लोग संसार-भय-रूपी बन्धन से मुक्त हो सकते हैं।

स नाम सुकृती लोके कुलं तेनाभ्यलंकृतम्।
आधारस्सर्वभूतानां येन विष्णुः प्रसादितः॥५॥

अन्वयः येन (जिस पुरुष ने) **सर्वभूतानाम् आधारः** (सर्वभूतों के आधार) **विष्णु** (भगवान् विष्णु को) **प्रसादितः** (प्रसन्न कर दिया है) **सः** (वही पुरुष) **लोके** (इस भूमि में) **सुकृती नाम** (पुण्यवान् शब्द से कहा जाता है।) **तेन** (उस पुरुष ने) **कुलं** (अपने कुल को) **अभ्यलंकृतम्** (सजाया है।)

अनुवादः जिस पुरुष ने सर्वभूतों के आधार भगवान् विष्णु को प्रसन्न कर दिया है, वही पुरुष इस भूमि में 'पुण्यवान्' शब्द से जाना जाता है। उस पुरुष ने अपने कुल को सजाया है।

यज्ञानां तपसां चैव शुभानां चैव कर्मणाम्।
तद्विशिष्टफलं नृणां सदैवाराधनं हरेः॥६॥

अन्वयः हरेः सदैव आराधनं (जो भगवान् की नित्य पूजा इत्यादिरूप आराधना की जाती है) **तत्** (वह आराधना ही) **नृणां** (मनुष्यों के द्वारा किये गये) **यज्ञानां तपसां च एव शुभानां कर्मणां च एव** (अश्वमेध इत्यादि यज्ञों का, कृच्छ्र-चान्द्रायण एकादशी

इत्यादिरूप तपस्याओं का, तथा सन्ध्यावन्दन इत्यादि दैनंदिन शुभकार्यो का) **विशिष्ट-फलं** (अत्यन्त उत्कृष्ट फलस्वरूप है।)

अनुवादः जो भगवान् की नित्य पूजा इत्यादिरूप आराधना की जाती है वह आराधना ही मनुष्यों के द्वारा किये गये अश्वमेध इत्यादि यज्ञों का, कृच्छ्र-चान्द्रायण एकादशी इत्यादिरूप तपस्याओं का, तथा सन्ध्या-वन्दन इत्यादि दैनंदिन शुभकार्यो का अत्यन्त उत्कृष्ट फलस्वरूप है।

(विशेष-व्याख्या श्लोक-संख्या ५-६): मनुष्य अपने जीवन में अच्छी गति को प्राप्त करने के लिये यज्ञ-याज्ञ-चान्द्रायण इत्यादि अनेक प्रकार का शुभ कार्य करता रहता है। इन सारे अच्छे कर्मों के फल है, भगवदाराधना करने का अवकाश मिलना। क्यों कि भगवदाराधना का भाग्य सब को प्राप्त नहीं होता है। जिन लोगों ने अनेक जन्मों से पुण्य का अर्जन किया है उन्हीं लोगों को भगवत्पूजा करने का भाग्य प्राप्त होता है। अतः इस सदवकाश का लाभ उठाकर प्रतिदिन भगवान्की अर्थना (प्रार्थना) कर भगवान् को संतुष्ट करना चाहिए। वही पुरुष पुण्यवान् कहलाया जाता हैं। वह पुरुष अपने सारे वंशपरम्परा का उद्धार करता है।

कलौ कलिमलध्वंसिसर्वपापहरं हरिम्।
येऽर्चयन्ति यदा नित्यं तेऽपि वन्द्या यथा हरिः॥७॥

अन्वयः कलौ (कलियुग में) **ये नराः** (जो लोग) **नित्यं** (प्रतिदिन) **कलिमल-ध्वंसिसर्वपापहरं हरिं** (कलियुग के प्रभाव से उत्पन्न होनेवाला अज्ञान इत्यादि-रूप के गन्दगी को नाश करने वाले तथा सब प्रकार के पापों को नष्ट करनेवाले हरि भगवान् की) **अर्चयन्ति** (पूजा करते हैं,) **ते अपि** (वह पूजा करने वाले लोग भी) **यथा हरिः वन्द्यः** (जैसे परमात्मा प्रणम्य है, उसी प्रकार) **वन्द्याः** (वन्दनीय हैं।

अनुवादः कलियुग में जो लोग प्रतिदिन कलियुग के प्रभाव से उत्पन्न होनेवाला अज्ञान इत्यादि-रूप की गन्दगी को नाश

करने वाले तथा सब प्रकार के पापों को नष्ट करनेवाले हरि भगवान् की पूजा करते हैं, वह पूजा करने वाले लोग भी जैसे परमात्मा प्रणम्य है, उसी प्रकार वन्दनीय हैं।

नास्ति श्रेयस्तमं नृणां विष्णोराराधनान्मुने।
युगेऽस्मिंस्तामसे लोके सततं पूज्यते नृभिः॥८॥

अन्वयः मुने (हे मुनिवर!) **अस्मिन् तामसे लोके** (इस तमोगुण प्रधान कलियुग में) **नृणां** (मनुष्यों को) **विष्णोः आराधनात्** (हरि की पूजा को छोड़कर दूसरा) **श्रेयस्तमं** (अत्यंत श्रेयस्कर मार्ग) **नास्ति** (नहीं हैं।) [इस कारण से हरि] **नृभिः** (मनुष्यों के द्वारा) **सततं** (प्रतिक्षण) **पूज्यते** (पूजित किया जाता है।)

अनुवादः हे मुनिवर! इस तमोगुण प्रधान कलियुग में मनुष्यों को हरि की पूजा को छोड़कर दूसरा अत्यंत श्रेयस्कर मार्ग नहीं हैं। इस कारण से हरि मनुष्यों के द्वारा प्रतिक्षण पूजित किये जाते है।

(विशेष-व्याख्या श्लोक-संख्या ७-८): कृतयुग-त्रेतायुग-द्वापरयुग में लोगों में कार्यक्षमता बहुत अधिक होती थी। अतः वे लोग हजारों सालों तक निराहार होकर समाधि में बैठकर तप करते थे। अनेक विध यज्ञयागादिरूप सत्कर्म कर सकते थे। परन्तु कलियुग में मनुष्यों का सामर्थ्य बहुत कम है। अतः केवल भगवत्पूजा ही कर सकते हैं। भगवत्पूजा से ही कलियुग में सद्गति प्राप्त होती है। इस लिये जैसे परमात्मा श्रीहरि पूजनीय है, वैसे उन की पूजा करनेवाले लोग भी पूजनीय हैं। अतः घर में कोई वैष्णव आने पर उनका विधिवत् सम्मान-सत्कार करना चाहिए।

अर्चिते देवदेवेशे शङ्खचक्रगदाधरे।
अर्चिताः सर्वदेवाः स्युर्यतः सर्वगतो हरिः॥९॥

अन्वयः यतः (क्यों कि) **हरिः** (श्रीहरि) **सर्वगतः** (सभी प्रकार के जीवित या अजीवित चेतन-अचेतन पदार्थों में रहते है।) [अतः] **शङ्ख-चक्र-गदाधरे** (शङ्ख, चक्र और गदा को धारण किए हुए) **देवदेवेशे** (देवों की देवता श्रीहरि को) **अर्चिते** (अर्चना करने

पर) **सर्वदेवाः** (बाकी सब ब्रह्मा, महेश्वर, इन्द्र, सूर्य, गणपति, काली इत्यादि देवताएं भी) **पूजिताः स्युः** (पूजित हो जायेंगी।)

अनुवादः क्यों कि श्रीहरि सभी प्रकार के जीवित या अजीवित चेतन–अचेतन पदार्थों में रहते है। अतः शङ्ख, चक्र और गदा को धारण किए हुए देवों की देवता श्रीहरि की अर्चना करने पर बाकी सब ब्रह्मा, महेश्वर, इन्द्र, सूर्य, गणपति, काली इत्यादि देवताएं भी पूजित हो जायेंगी।

स्वर्चिते सर्वलोकेशे सुरासुरानमस्कृते।
केशवे कंसकेशिघ्ने न याति नरकं नरः॥१०॥

अन्वयः सुरासुरनमस्कृते (देवताओं एवं असुरों के लिये भी प्रणम्य) **कंसकेशिघ्ने** (कंस तथा केशि इत्यादि दुष्टों के संहारक **सर्वलोकेशे** (सर्वलोकों के अधिपति) **केशवे** (भगवान् श्रीकृष्ण के) **स्वर्चिते** (अत्यन्त भक्ति से पूजित होने पर) **नरः** (पूजा करनेवाला मनुष्य) **नरकं न याति** (नरक को प्राप्त नहीं करेगा।)

अनुवादः देवताओं एवं असुरों के लिये भी प्रणम्य, कंस तथा केशि इत्यादि दुष्टों के संहारक, सर्व–लोकों के अधिपति, भगवान् श्रीकृष्ण के अत्यन्त भक्ति से पूजित होने पर पूजा करनेवाला मनुष्य नरक को प्राप्त नहीं करेगा।

(विशेष–व्याख्या श्लोक–संख्या ९–१०): इस संसार में जितने भी देवी–देवताएं हैं, वे सभी श्रीकृष्ण के अधीन हैं। श्रीकृष्ण के दास हैं। इन सभी देवताओं में स्वयं श्रीकृष्ण संनिहित होकर उस देवता को की गयी पूजा को स्वीकार करते है। अतः भगवान् की साक्षात् अर्चना करने पर सब देवताओं की अर्चना स्वयं हो जाती है। इस श्रीकृष्ण भगवान् की पूजा करने के बाद मनुष्य कभी भी नरक में नहीं गिरेगा।

सकृदभ्यर्च्य गोविन्दं बिल्वपत्रेण मानवः।
मुक्तिभागी निरातङ्की विष्णुलोके चिरं वसेत्॥११॥

अन्वयः मानवः (मनुष्य) **बिल्वपत्रेण** (बेल के पत्रों से) **सकृत्** (एक बार) **गोविन्दम्** (विष्णु भगवान् की)**अभ्यर्च्य** (पूजा

कर) **मुक्तिभागी** (पापों से मुक्त होकर) **निरातङ्की** (आतङ्कों से मुक्त होकर) **विष्णुलोके** (वैकुण्ठ में **चिरं** (अनन्तकाल तक) **वसेत्** (वास करेगा।)

अनुवादः मनुष्य बेल के पत्रों से एक बार विष्णु भगवान् की पूजा कर पापों से मुक्त होकर और आतङ्कों से मुक्त होकर वैकुण्ठ में अनन्तकाल तक वास करेगा।

शंकरः–

सकृदभ्यर्चितो येन देवदेवो जनार्दनः।
यत्कृत्यं तत्कृतं तेन संप्राप्तं परमं पदम्॥१२॥

अन्वयः येन (जिस पुरुष ने) **देवदेवो जनार्दनः** (देवताओं के भी देवता श्रीकृष्ण भगवान् की) **सकृत् अभ्यर्चितः** (एक बार पूजा कर ली है) **तेन** (उस पुरुष ने) **यत् कृत्यं** (जो कर्त्तव्य है) **तत् कृतम्** (उस को कर लिया है।) **तेन** (उस पुरुष ने) **परमं पदं संप्राप्तं** (परम पद वैकुण्ठ को प्राप्त कर लिया है।)

अनुवादः जिस पुरुष ने देवताओं के भी देवता श्रीकृष्ण भगवान् की एक बार पूजा कर ली हैं, उस पुरुष ने जो कर्त्तव्य है, उस को कर लिया है। उस पुरुष ने परम पद वैकुण्ठ को प्राप्त कर लिया है।

सकृदभ्यर्चितो येन हेलयाऽपि नमस्कृतः।
स याति परमं स्थानं यत्सुरैरपि दुर्लभम्॥१३॥

अन्वयः येन (जिस पुरुष ने जनार्दन श्रीकृष्ण की) **सकृत अभ्यर्चितः** (एक बार पूजा कर ली है,) [अथवा] **हेलयापि** (अनादर से भी) **नमस्कृतः** (नमस्कार कर लिया है,) **सः** (वह पुरुष) **सुरैरपि दुर्लभं** (देवताओं को भी दुर्लभ) **यत्** (जो) **परमं स्थानं याति** (परम गति वैकुण्ठ है, उस को प्राप्त करता है।)

अनुवादः जिस पुरुष ने जनार्दन श्रीकृष्ण की एक बार पूजा कर ली, अथवा अनादर से भी नमस्कार कर लिया है, वह

पुरुष देवताओं को भी दुर्लभ जो परम–गति वैकुण्ठ है, उस को प्राप्त करता है।

नारदः–

समस्तलोकनाथस्य देवदेवस्य शाङ्गिणः।
साक्षाद्भगवतो विष्णोः पूजनं जन्मनः फलम्॥१४॥

अन्वयः **समस्तलोकनाथस्य** (सारे लोकों के रक्षक) **देवदेवस्य** (इन्द्र इत्यादि देवताओं के देवता) **शार्ङ्गिणः** (शार्ङ्ग–नामक धनुष को धारण करनेवाले) **साक्षात् भगवतः** (मुख्य भगवान्) **विष्णोः** (विष्णु के) **पूजनं** (पूजा का अवसर मिलना) **जन्मनः** (इस जन्म का) **फलं** (सबसे बडा प्रयोजन है।

अनुवादः सारे लोकों के रक्षक इन्द्र इत्यादि देवताओं के देवता शार्ङ्ग–नामक धनुष को धारण करनेवाले मुख्य भगवान् विष्णु के पूजा का अवसर मिलना इस जन्म का सबसे बड़ा प्रयोजन है।

विशेष–व्याख्याः भगवान् को किसी बहाने से भी अनादर से भी कभी एक बार नमस्कार करने पर, एक ही बार पूजा करने पर उस मनुष्य का सैकड़ों जन्मों का पाप नष्ट होकर वह मनुष्य वैकुण्ठ में अनन्तकाल तक विहार करता है। अजामिल ब्राह्मण ने सारे जीवन सब तरह के दुर्व्यवहार करते हुए भी कभी अन्तकाल में पुत्र को बुलाने हेतु एक बार 'नारायण' शब्द का उच्चारण किया। उस को केवल नारायण–शब्दोच्चारण से ही वैकुण्ठ–लोक प्राप्त हो गया।

'भगवान्' शब्द का मुख्य अर्थ विष्णु (कृष्ण) ही है। पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, कीर्ति, श्री, ज्ञान, विज्ञान यह छह गुण जिस में होते हैं वह भगवान् है। विष्णु में यह गुण मुख्यतया है, तथा बाकी देवताओं में जो ऐश्वर्य इत्यादि गुण हैं वे विष्णु के द्वारा प्रदत्त ही हैं। अतः मुख्य भगवान् विष्णु की पूजा करने का मौका मिलना

इस जन्म का सबसे बड़ा सौभाग्य है। यह नारद जी का वचन है।

पुलस्त्यः–

भक्त्या दूर्वाङ्करैः पुंभिः पूजितः पुरुषोत्तमः।
हरिर्ददाति हि फलं सर्वयज्ञैश्च दुर्लभम्॥१५॥

अन्वयः पुंभिः (मनुष्यों के द्वारा) **भक्त्या** (भक्तिपूर्वक) **दूर्वाङ्कुरैः** (दूर्वा के अङ्कुरों से) **पूजितः** (पूजित किये गये) **पुरुषोत्तमः** (मनुष्यों से उत्तम) **हरिः** (श्रीहरि) **सर्वयज्ञैश्च दुर्लभम्** (अश्वमेध इत्यादि यज्ञों से भी दुष्प्राप्य) **फल** (फल को) **ददाति** (देते हैं।)

अनुवादः मनुष्यों के द्वारा भक्तिपूर्वक दूर्वा के अङ्कुरों से पूजित किये गये मनुष्यों से उत्तम श्रीहरि अश्वमेध इत्यादि यज्ञों से भी दुष्प्राप्य फल देते हैं।

विधिना देवदेवेशः शङ्खचक्रधरों हरिः।
फलं ददाति सुलभं सलिलेनापि पूजितः॥१६॥

अन्वयः देवदेवेशः (देवताओं के भी देवता) **शङ्खचक्रधरः** (शङ्ख और चक्र धारण करने वाले) **हरिः** (श्रीहरि) **विधिना** (विध्युक्तरीत्या) **सलिलेनापि पूजितः** (पानी से भी पूजित किये जाने पर) **सुलभं फलं ददाति** (अनायास ही मुक्ति फल देते हैं।)

अनुवादः देवताओं के भी देवता शङ्ख और चक्र धारण करने वाले श्रीहरि विध्युक्तरीत्या पानी से भी पूजित किये जाने पर अनायास ही मुक्ति फल देते हैं।

नरके पच्यमानस्तु यमेन परिभाषितः।
किं त्वया नार्चितो देवः केशवः क्लेशनाशनः॥१७॥

अन्वयः मरणानन्तर नरके पच्यमानः तु (नरक में नानाविध यातना अनुभव करते हुए यह जीव) **'क्लेशनाशनः** (सारे क्लेशों के नाश करनेवाले) **देवः** (दिव्य) **केशवः** (श्रीकृष्ण जी की) **किं**

त्वया नार्चितः (क्या तुम ने पूजा नहीं किया?') [इस प्रकार] **यमेन** (यम के द्वारा) **परिभाषितः** (पूछा जाता है।)

अनुवादः नरक में नानाविध यातना अनुभव करते हुए जीव को यम पूछते है कि, "सारे क्लेशों के नाश करनेवाले दिव्य श्रीकृष्ण जी की क्या तुम ने पूजा नहीं कि?"

(विशेष-व्याख्या श्लोक-अर्थ १५-१७): यह तीनों श्लोक पुलस्त्य ऋषि के वचन हैं। श्रीहरि को प्रसन्न करने के लिये बहुत सारे साधनों की आवश्यकता नहीं हैं। भक्तिपूर्वक दूर्वा पत्र (घास) से पूजा करने पर भी भगवान् संतुष्ट हो जाते हैं। बहुत सारे भोग लगाने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार पूजा अत्यन्त सुलभ सुकर होने पर भी जो पुरुष भगवान् की पूजा न कर मरणोपरान्त नरक में नानाविध यातनाओं का अनुभव करता है, तब यमजी उन से पूछते है कि 'तुम ने कभी भी भगवान् की पूजा नहीं कि हैं क्या? यदि एक बार भी भगवान् की पूजा कि होती, तब नरक का अनुभव करने की आवश्यकता नहीं होती'|

धर्मः-

द्रव्याणामप्यभावे तु सलिलेनापि पूजतिः।
यो ददाति स्वकं स्थानं स त्वया किं न पूजितः॥१८॥

अन्वयः द्रव्याणां अभावे अपि तु (बहुत द्रव्य न होने की स्थिति में) **सलिलेनापि पूजितः** (केवल पानी से पूजित किये हुए) **यः** (जो भगवान्) **स्वकं स्थानं** (अपने स्थान वैकुण्ठ को) **ददाति** (देते हैं) **सः** (उस भगवान् श्रीकृष्ण की) **त्वया** (तुम ने) **पूजितः न किं** (पूजा नहीं कि है क्या?)

अनुवादः बहुत द्रव्य न होने की स्थिति में केवल पानी से पूजित किये हुए जो भगवान् अपने स्थान वैकुण्ठ को देते हैं, उन भगवान् श्रीकृष्ण की क्या तुम ने पूजा नहीं कि है?

नरसिंहो हृषीकेशः पुण्डरीकनिभेक्षणः।
स्मरणान्मुक्तिदो नृणां स त्वया किं न पूजितः॥१९॥

अन्वयः हृषीकेशः (इन्द्रियों के अधिष्ठाता) **पुण्डरीक-निभेक्षणः** (कमल के पत्ते जैसे आँखोंवाले) **नृणां** (मनुष्यों को) **स्मरणात्** (स्मरणमात्र से) **मुक्तिदः** (मोक्ष देनेवाले) **सः नरसिंहः** (उस नरसिंह भगवान् की) **त्वया** (तुम ने) **पूजितः न किं** (पूजा नहीं किया है क्या?)

अनुवादः इन्द्रियों के अधिष्ठाता, कमल के पत्ते जैसे आँखोंवाले, मनुष्यों को स्मरणमात्र से मोक्ष देनेवाले उस भगवान् नरसिंह की तुम ने पूजा नहीं किया है क्या?

गर्भस्थिता मृता वाऽपि मुषितास्ते सुदूषिताः।
न प्राप्ता यैर्हरेर्दीक्षा सर्वदुःखविमोचिनी॥२०॥

अन्वयः सर्वदुःखविमोचिनी (सब प्रकार के दुःखों का नाश करनेवाली) **हरेः दीक्षा** (विष्णु दीक्षा को) **यैः न प्राप्ता** (जो लोगों ने नहीं लिया हो) **ते** (वे लोग) **गर्भस्थिताः** (गर्भस्थ है,) **अथवा** (अथवा) **मृताः** (मृत हैं,) **मूषिताः** (मूर्च्छावस्था में हैं,) **सुदूषिताः** (ब्रह्म-हत्यादि-दोष करनेवाले हैं।)

अनुवादः सब प्रकार के दुःखों का नाश करनेवाली विष्णु-दीक्षा को जो लोगों ने नहीं लिया हो, वे लोग गर्भस्थ है, अथवा मृत हैं, मूर्च्छावस्था में हैं, ब्रह्म-हत्यादि-दोष करनेवाले हैं।

(विशेष-व्याख्या श्लोक-संख्या १८-२०): यह तीनों श्लोक यमजी के वचन हैं। जो मनुष्य भूलोक में अनेक प्रकार के पाप कर्म कर मरणानन्तर नरक पर जाते हैं, तब यम जी उन लोगों से पूछते हैं कि क्या तुम लोगों ने कभी भी श्रीकृष्ण की पूजा नहीं की? यदि एक बार भी केवल पानी, पत्ते जैसे अत्यन्त साधारण द्रव्यों से पूजा कर ली होती तब नरक में आने की स्थिति नहीं होती। केवल स्मरणमात्र से सारे पापों से बचानेवाले श्रीकृष्ण परमात्मा की पूजा क्यों एक बार भी नहीं कि? जिन्होंने परमात्मा की दीक्षा नहीं प्राप्त कि है, वे लोग जिन्दा (जीवित) होने पर भी गर्भस्थ-शिशु जैसे किसी काम के नहीं हैं, मरे हुए

लोगों जैसे हैं, मूर्च्छावस्था में रहनेवाले लोगों जैसे हैं—जो कुछ भी नहीं कर पाते हैं। इस प्रकार यमजी पापियों को डांटते हैं।

मार्कण्डेयः–

सकृदभ्यर्चितो येन देवदेवो जनार्दनः।
यत्कृत्यं तत्कृतं तेन संप्राप्तं परमं पदम्॥२१॥

अन्वयः येन (जिस पुरुष ने) **सकृत्** (एक बार भी **देवदेवः** (देवों के देव) **जनार्दनः (**असुरों के संहार करनेवाले श्रीकृष्ण जी की) **अभ्यर्चितः** (पूजा कि है) **तेन** (उस पुरुष ने) **यत् कृत्यं** (जो अवश्य कर्तव्य है) **तत् कृतं** (उस कार्य कर लिया है।) [उस पुरुष ने] **परमं पदम्** (परम पद मोक्ष को) **संप्राप्तं** (प्राप्त कर लिया है।)

अनुवादः जिस पुरुष ने एक बार भी देवों के देव असुरों के संहार करनेवाले श्रीकृष्ण जी की पूजा कि है, उस पुरुष ने जो अवश्य कर्त्तव्य है उस कार्य कर लिया है। उस पुरुष ने परम पद मोक्ष को प्राप्त कर लिया है।

धर्मार्थकाममोक्षाणां नान्योपायस्तु विद्यते।
सत्यं ब्रवीमि देवेश हृषीकेशार्चनादृते॥२२॥

अन्वयः देवेश (हे शंकर भगवान्!) **हृषीकेशार्चनात् ऋते** (इन्द्रियों के स्वामी श्रीकृष्ण जी की पूजा के बिना) **धर्मार्थ–काम–मोक्षाणां** (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थों को प्राप्त करने के लिये) **अन्योपायः तु** (दूसरा कोई उपाय) **विद्यते** (नहीं हैं।)

अनुवादः हे शंकर भगवान्! इन्द्रियों के स्वामी श्रीकृष्ण जी की पूजा के बिना धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थों को प्राप्त करने के लिये दूसरा कोई उपाय नहीं हैं।

तस्य यज्ञवराहस्य विष्णोरमिततेजसः।
प्रणामं ये प्रकुर्वन्ति तेषामपि नमो नमः॥२३॥

अन्वयः अमिततेजसः (अमित–शक्ति–संपन्न) **विष्णोः** (सर्वत्र व्याप्त) **तस्य यज्ञवराहस्य** (जो यज्ञ–स्वामी वराह भगवान् हैं उन

को) **ये** (जो लोग) **प्रणामं** (नमस्कार) **प्रकुर्वन्ति** (करते हैं) **तेषाम् अपि** (उन विष्णुभक्तों को भी) **नमो नमः** (बार बार प्रणाम।)

अनुवादः अमित–शक्ति–संपन्न, सर्वत्र व्याप्त जो यज्ञ–स्वामी वराह भगवान् हैं, उन को जो लोग नमस्कार करते हैं, उन विष्णु–भक्तों को भी बार बार प्रणाम।

(विशेष–व्याख्या श्लोक–संख्या २१–२३)—ये तीनों श्लोक मार्कण्डेय ऋषि के हैं। जिस पुरुष ने एक भी बार भगवान् की अर्चना–उपासना कर ली है, उस पुरुष का पूर्ण–जीवन सार्थक है। उस पुरुष ने जीवन के मुख्य कर्त्तव्य कर लिया है, वह पुरुष निश्चित रूप से मोक्ष को प्राप्त करता हैं। इस जीवन के मुख्य उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष यानि चार पुरुषार्थों के परिधि में ही चलती है। इन चारों पुरुषार्थों का उपाय तो भगवान् की आराधना ही है। भगवदाराधना को छोड़कर किसी भी दूसरे उपाय से इन पुरुषार्थोंकी प्राप्ति नहीं होगी। अतः ऐसे अनन्त शक्ति–संपन्न सर्वगत सर्वज्ञ यज्ञ–रक्षक वराह–रूपी भगवान् (जो दशावतारों में से एक हैं) को जो लोग प्रतिदिन प्रणाम करते हैं, उन विष्णु–भक्तों को भी प्रति दिन बार बार प्रणाम करना चाहिए।

मरीचिः–

अनाराधितगोविन्दैर्नरैः स्थानं नृपात्मज।
न हि संप्राप्यते श्रेष्ठं तस्मादाराधयाच्युतम्॥२४॥

अन्वयः नृपात्मज (राजा उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव!) **अनाराधितगोविन्दैः** (जिन लोगों ने भगवान् की आराधना नहीं की है,) **नरैः** (वैसे लोग) **श्रेष्ठं स्थानं** (उत्तम पद को) **न हि संप्राप्यते** (नहीं प्राप्त कर सकते हैं।) **तस्मात्** (इसलिये) **अच्युतं** (च्युति–रहित श्रीकृष्ण भगवान् की) **आराधय** (आराधना करो।)

अनुवादः राजा उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव! जिन लोगों ने भगवान् की आराधना नहीं की है, वैसे लोग उत्तम पद को नहीं प्राप्त कर सकते हैं। इसलिये च्युति–रहित श्रीकृष्ण भगवान् की आराधना करो।

विशेष अर्थः मरीचि–ऋषि ध्रुव को संबोधित कर बोल रहे हैं कि हे ध्रुव! भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना के बिना अच्छे पद प्राप्त नहीं होगा। इस लिये तुम भगवान् की आराधना करो, ताकि तुम भी अच्छे स्थान प्राप्त कर सकोगे।

अत्रिः–

परः पराणां पुरुषस्तुष्टो यस्य जनार्दनः।
स चाप्नोत्यक्षयं स्थानमेतत्सयं मयोदितम्॥२५॥

अन्वयः पराणां (श्रीकृष्ण देवताओं से भी) **परः** (श्रेष्ठ) **पुरुषः** (सर्व शरीरों में रहनेवाले) **जनार्दनः** (असुरहारी श्रीकृष्ण) **यस्य** (जिस पुरुष की भक्ति से) **तुष्टः** (संतुष्ट होते हैं) **सः च** (वह पुरुष) **अक्षयं स्थानं** (अनन्तकाल तक नष्ट न होनेवाले स्थान को) **आप्नोति** (प्राप्त करता है।) **मया उदितम्** (मेरे द्वारा बोला गया) **एतत्** (यह विषय) **सत्यम्** (सत्य है।)

अनुवादः श्रीकृष्ण देवताओं से भी श्रेष्ठ, सर्व शरीरों में रहनेवाले, असुर–हारी श्रीकृष्ण जिस पुरुष की भक्ति से संतुष्ट होते हैं, वह पुरुष अनन्तकाल तक नष्ट न होनेवाले स्थान को प्राप्त करता है। मेरे द्वारा बोला गया यह विषय सत्य है।

अङ्गिराः–

यस्यान्तः सर्वमेवेदमच्युतस्याव्ययात्मनः।
तमाराधय गोविन्दं स्थानमग्र्यं यदिच्छसि॥२६॥

अन्वयः यदि (यदि) **अग्र्यं स्थानं** (उत्तम स्थान को) **इच्छसि** (प्राप्त करना चाहते हैं) **अव्ययात्मनः** (नष्ट न होने वाला शरीर धारण किये हुए) **अच्युतस्य** (वृद्धि ह्रासरहित) **यस्य** (जिस श्रीकृष्ण के) **अन्तः** (शरीर के अन्दर ही) **इदं सर्वम्** (यह पूरा विश्व है) **तं** (वैसे) **गोविन्दं** (श्रीकृष्ण जी की) **आराधय** (आराधना करो।)

अनुवादः यदि उत्तम स्थान को प्राप्त करना चाहते हैं, तो नष्ट न होने वाला शरीर धारण किये हुए, वृद्धि–ह्रास–रहित, जिस

श्रीकृष्ण के शरीर के अन्दर ही यह पूरा विश्व है, वैसे श्रीकृष्ण जी की आराधना करो।

विशेष अर्थः २५ श्लोक अत्रि-ऋषि का तथा श्लोक २६ अङ्गिरा ऋषि का है। यदि अच्छे स्थान प्राप्त करना चाहते हो तो सर्वान्तर्यामी च्युति-रहित नित्य-शरीर-वाले गोविन्द की आराधना करो। जिन भगवान् के शरीर के अन्दर ही सब विश्व है, वह भगवान् ही संसार से पार करवाकर मोक्ष देते हैं। जिस पुरुष की भक्ति से भगवान् संतुष्ट होते हैं, वह पुरुष मोक्ष प्राप्त करता है।

पुलस्त्यः-

परं ब्रह्म परं धाम योऽसौ ब्रह्म सनातनम्।
तमाराध्य हरिं याति मुक्तिमप्यतिदुर्लभाम्॥२७॥

अन्वयः यः आसौ (यह जो हरि) **परं ब्रह्म** (सर्वजगद्विलक्षण सर्वगुणपूर्ण) **परं धाम** (उत्तम तेजोरूप है) **तं** (उस) **सनातनं** (नित्य) **ब्रह्म** (पर ब्रह्म) **हरिं** (श्रीहरि की) **आराध्य** (आराधना कर) **अतिदुर्लभाम् अपि** (अत्यन्त दुर्लभ होने पर भी) **मुक्ति** (मोक्ष को) **याति** (प्राप्त करता है।)

अनुवादः यह जो हरि सर्वजगद्विलक्षण सर्व-गुण-पूर्ण उत्तम तेजोरूप है, उस नित्य, पर-ब्रह्म श्रीहरि की आराधना कर अत्यन्त दुर्लभ होने पर भी मोक्ष को प्राप्त करता है।

पुलहः-

ऐन्द्रमिन्द्रः परं स्थानं यमाराध्य जगत्पतिम्।
प्राप यज्ञपतिं विष्णु तमाराधय सुव्रत॥२८॥

अन्वयः सुव्रत (हे अच्छे व्रत करनेवाले ध्रुव!) **यं जगत्पतिं** (जो सर्वजगद्रक्षक विष्णु की) **आराध्य** (आराधना कर) **इन्द्रः** (वर्तमान इन्द्र ने) **ऐन्द्रं परं स्थानं** (अत्युत्तम इन्द्र पदवी को) **प्राप** (प्राप्त किया है) **तं** (उस) **यज्ञपतिं** (यज्ञ-स्वामी) **विष्णुं** (विष्णु की) **आराधय** (आराधना करों।)

अनुवादः हे अच्छे व्रत करनेवाले ध्रुव! जो सर्वजगद्रक्षक (समस्त विश्व की रक्षा करने वाले) विष्णु की आराधना कर वर्तमान इन्द्र ने अत्युत्तम इन्द्र पदवी को प्राप्त किया है, उस यज्ञ–स्वामी विष्णु की आराधना करों।

प्राप्नोत्याराधिते विष्णौ मनसा यद्यदिच्छति।
त्रैलोक्यान्तर्गतं स्थानं किमु लोकोत्तरोत्तरम्॥२९॥

अन्वयः मनसा (मन से) **यद्यत्** (जो जो) **त्रैलोक्यान्तर्गतं स्थानं** (भूमि–स्वर्ग–पाताल–रूपी त्रिलोक में अन्तर्गत स्थान की) **इच्छति** (इच्छा करता है उस स्थान को) **विष्णौ आराधिते** (विष्णु–भगवान् की आराधना करने पर) **प्राप्नोति** (प्राप्त करता है।) **किमु लोकोत्तरोत्तरं** (उत्तमोत्तम लोकों के बारे में क्या कहना है?)

अनुवादः मन से जो जो भूमि–स्वर्ग–पाताल–रूपी त्रिलोक में अन्तर्गत स्थान की इच्छा करता है, वह (भक्त) उस स्थान को भगवान् विष्णु की आराधना करने पर प्राप्त करता है। उत्तमोत्तम लोकों के बारे में क्या कहना है?

येऽर्चयन्ति सदा विषणुं शङ्खचक्रगदाधरम्।
सर्वपापविनिर्मुक्ताः परं ब्रह्म विशन्ति ते॥३०॥
ततोऽनिरुद्धं देवेशं प्रद्युम्नं च ततः परम्।
ततः संकर्षणं देवं वासुदेवं परात्परम्॥३१॥
वासुदेवात् परं नास्ति इति वेदान्तनिश्चयः।
वासुदेवं प्रविष्टानां पुनरावर्तनं कुतः॥३२॥

अन्वयः ये (जो लोग) **शङ्खचक्रगदाधरम्** (शङ्ख, चक्र, गदाओं को धारण करनेवाले) **विष्णुं** (विष्णु भगवान् की) **सदा** (सर्वदा) **अर्चयन्ति** (पूजा करते हैं) **ते** (वे लोग) **सर्वपापविनिर्मुक्तः** (सब पापों से मुक्त होकर) **परं ब्रह्म विशन्ति** (पर ब्रह्म को प्राप्त करते हैं।)

ततः (अंशि–रूप ब्रह्म–प्राप्ति के लिये) **देवेशम् अनिरुद्धं** (देवताओं के स्वामी अनिरुद्ध रूप को) **विशन्ति** (प्राप्त करते हैं।) **ततः परं** (उस के बाद) **प्रद्युम्नं विशन्ति** (प्रद्युम्न–रूप को प्राप्त

करते हैं।) **ततः** (उसके बाद) **संकर्षण देवं** (संकर्षण-रूपी भगवान् को) **विशन्ति** (प्राप्त करते हैं उसके बाद) **परात्परम्** (सर्वोत्तम) **वासुदेवं** (वासुदेव-रूपी अंशि भगवान् को) **विशन्ति** (प्राप्त करते हैं।) **वासुदेवात् परं** (वासुदेव-रूपी अंशि भगवान् से श्रेष्ठ कोई) **नास्ति** (नहीं है) **इति** (इस प्रकार) **वेदान्तनिश्चयः** (वेदान्त-शास्त्र का निर्णय है।) [इस कारण से] **वासुदेवं प्रविष्टानां** (वासुदेव रूपी भगवान् को प्राप्त किए हुए लोगों को) **पुनरावर्तनं (**इस संसार में पुनः आना) **कुतः** (क्यों होगा?) (वासुदेव-रूपी भगवान् को प्राप्त करने के बाद संसार नहीं होगा)

अनुवादः

जो लोग शङ्ख, चक्र एवं गदा को धारण करनेवाले विष्णु भगवान् की सर्वदा पूजा करते हैं, वे लोग सब पापों से मुक्त होकर पर-ब्रह्म को प्राप्त करते हैं। अंशि-रूप ब्रह्म-प्राप्ति के लिये देवताओं के स्वामी अनिरुद्ध रूप को प्राप्त करते हैं। उस के बाद प्रद्युम्न-रूप को प्राप्त करते हैं। उसके बाद संकर्षण-रूपी भगवान् को प्राप्त करते हैं उसके बाद सर्वोत्तम वासुदेव-रूपी अंशि भगवान् को प्राप्त करते हैं। वासुदेव-रूपी अंशि भगवान् से श्रेष्ठ कोई नहीं है। इस प्रकार वेदान्त-शास्त्र का निर्णय है। इस कारण से वासुदेव रूपी भगवान् को प्राप्त किए हुए लोगों को इस संसार में पुनः क्यों आना होगा? (वासुदेव-रूपी भगवान् को प्राप्त करने के बाद संसार नहीं होगा)

(विशेष-व्याख्या श्लोक-संख्या २७-३२): श्लोक २७ पुलस्त्य-ऋषि का वचन है। तथा २८ से ३२ तक श्लोक पुलह ऋषि के हैं। श्रीहरि को ही सर्वोत्तम गुण-पूर्ण होने के कारण नित्य-अनादि-ब्रह्म इत्यादि शब्दों से पुकारा जाता हैं, उन हरि की आराधना करने से निश्चित रूप से मुक्ति प्राप्त हो जायेगी।

पुलह-ऋषि ध्रुव को संबोधित कर बोल रहे हें कि वर्तमान युग में जो इन्द्र है वह भी श्रीहरि की आराधना कर ही अत्युत्तम इन्द्र पदवी को प्राप्त कर चुके हैं। तुम भी अच्छे स्थान को यदि

प्राप्त करना चाहते हो तो उस विष्णु की आराधना करो। उस सर्वोत्तम विष्णु के प्रसन्न होने पर तीनों लोकों के अन्तर्गत सभी को मन–चाहा पद मिल जायेगा।

३० से ३२ तक श्लोकों में परब्रह्म प्राप्ति किस प्रकार से होती है, इस विषय का प्रतिपादन कर रहे हैं। अनिरुद्ध, प्रद्युम्न, संकर्षण एवं वासुदेव — यह चार रूप धारण किये हुए परब्रह्म की प्राप्ति क्रमशः होती है।

प्रथमतः अनिरुद्ध–रूप की प्राप्ति, तदन्तर प्रद्युम्न–रूप की प्राप्ति, इस के बाद संकर्षण–रूप की प्राप्ति, अन्त में वासुदेव–रूप की प्राप्ति होती है। वह वासुदेव–रूप ही परब्रह्म है। वासुदेव–रूप की प्राप्ति के बाद कोई दूसरा रूप प्राप्तव्य नहीं होता है। उस वासुदेव–रूप को प्राप्त हुए लोग इस संसार में पुनः नहीं आयेंगे। वहीं अन्तिम–स्थान है।

यद्यपि अनिरुद्ध–प्रद्युम्न–संकर्षण–वासुदेव इन चारों रूपों में कोई भेद नहीं हैं। चारों भी परब्रह्म ही हैं। तथापि अनिरुद्ध इत्यादि–रूपों से भगवान् मार्ग में उपस्थित रहते हैं। अतः प्रथमतः अनिरुद्ध–प्राप्ति इत्यादि क्रम शास्त्रों में कहा गया है।

आत्रेयः–

यो यानिच्छेन्नरः कामान् नारी वा वरवर्णिनी।
तान्समाप्नोति विपुलान्समाराध्य जनार्दनम्॥३३॥

अन्वयः यो नरः (जो पुरुष) **वा** (अथवा) **वरवर्णिनी नारी** (उत्तम स्त्री) **यान् कामान्** (जिन जिन विषयवस्तुओं की) **इच्छेत्** (इच्छा करते हैं) **जनार्दनं** (असुरसंहारी श्रीकृष्ण जी की) **समाराध्य** (आराधना कर) **विपुलान् तान्** (अत्यन्त अधिक रूप में उन काम्य वस्तुओं को) **समाप्नोति** (प्राप्त करता है।)

अनुवादः जो पुरुष अथवा उत्तम स्त्री जिन जिन विषयवस्तुओं की इच्छा करते हैं, असुर–संहारी श्रीकृष्ण जी की आराधना कर अत्यन्त अधिक रूप में उन काम्य वस्तुओं को प्राप्त करता है।

विशेष—इस लोक में कोई पुरुष अथवा स्त्री जो कुछ भी वस्तु को चाहते हैं, जैसे धन-धान्य-पशु-पुत्र-वस्त्र-वाहन-गृह इत्यादि, तो भगवान् की आराधना कर इन सारे वस्तुओं को प्राप्त कर सकते हैं।

यह श्लोक आत्रेय ऋषि का है।

ब्रह्माः–

बहुभ्यां सागरं तर्तुं क इच्छेत पुमान् भुवि।
वासुदेवमनाराध्य को मोक्षं गन्तुमिच्छति॥३४॥

अन्वयः भुवि (इस भूमण्डल में) **कः** (कौन पुरुष) **बाहुभ्यां** (अपने हाथों से) **सागरं तर्तुम्** (समुद्र को पार करने की) **इच्छेत्** (इच्छा करता है?) [उसी प्रकार] **वासुदेवं** (वसुदेवपुत्र श्रीकृष्ण की) **अनाराध्य** (आराधना किये बिना) **कः** (कौन पुरुष) **मोक्षं गन्तुं** (मोक्ष जाने की) **इच्छति** (इच्छा करता है?)

अनुवादः इस भूमण्डल में कौन पुरुष अपने हाथों से समुद्र को पार करने की इच्छा करता है? उसी प्रकार वसुदेवपुत्र (अर्थात् नन्दनन्दन) श्रीकृष्ण की आराधना किये बिना कौन पुरुष मोक्ष (मुक्ति) प्राप्ति की इच्छा कर सकता है?

विशेष—ब्रह्माजी पूछते हैं कि नौका की सहायता बिना कौन अपने कंधे से समुद्र पार कर सकता है? वासुदेव श्रीकृष्ण की उपासना के बिना कौन मोक्ष को प्राप्त कर सकता है? इस का अर्थ यह है कि जैसे कोई पुरुष अपने हाथों से तैरकर समुद्र पार नहीं कर सकता है वैसे ही परमपुरुष की आराधना के बिना किसी भी पुरुष मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकेगा।

शंकरः–

कृते पापेऽनुतापो वै यस्य पुंसः प्रजायते।
प्रायश्चितं तु तस्योक्तं हरिसंस्मरणं परम्॥३५॥

अन्वयः पुंसः (मनुष्य को) **कृते पापे** (पाप करने पर) **वै** (निश्चितरूप से) **अनुतापः** (पश्चात्ताप) **प्रजायते** (होता है तो)

तस्य (उस पाप के लिये) **परं हरिसंस्मरणम्** (श्रेष्ठतर श्रीहरि का स्मरण ही) **प्रायश्चित्तम् उक्तम्** (प्रायश्चित्त कहा गया है।)

अनुवादः मनुष्य को कृते पाप करने पर निश्चितरूप से पश्चात्ताप होता है तो उस पाप के लिये श्रेष्ठतर श्रीहरि का स्मरण ही प्रायश्चित्त कहा गया है।

विशेष व्याख्या श्लोक संख्या ३५ः इस लोक में रहनेवाले पुरुष कोई पाप किये बिना जीवन नहीं चला सकता है। परन्तु अनिवार्यरूप से किये जानेवाले इन सारे पापों के लिये हरिस्मरण एकमात्र प्रायश्चित्त है। परन्तु किसी दुष्टोद्देश्य से किये गये पापों का यह प्रायश्चित्त नहीं है। यह शंकर भगवान् का वचन है।

न ह्यपुण्यवतां लोक मूढानां कुटिलात्मनाम्।
भक्तिर्भवति गोविन्दे स्मरणं कीर्तनं तथा॥३६॥

अन्वयः लोके (इस भूमि में) **अपुण्यवतां** (पुण्यरहित) **कुटिलात्मनाम्** (वक्रबुद्धिवाले) **मूढानां** (मूर्ख लोगों को) **गोविन्दे** (वेदसंरक्षक श्रीकृष्ण में) **भक्तिः न भवति** (भक्ति उत्पन्न नहीं होती है।) [इस कारण से उन दुष्ट लोगों के लिये] **स्मरणं कीर्तनं** (भगवान् का स्मरण तथा कीर्तन) **तथा (**प्रायश्चित) **न भवति** (नहीं होता है।)

अनुवादः इस भूमि में पुण्यरहित वक्रबुद्धिवाले मूर्ख लोगों को वेद–संरक्षक श्रीकृष्ण में भक्ति उत्पन्न नहीं होती है। इस कारण से उन दुष्ट लोगों के लिये भगवान् का स्मरण तथा कीर्तन–रूप प्रायश्चित करना संभव नहीं होता है।

तदैव पुरुषो मुक्तो जन्ममृत्युजरादिभिः।
जितेन्द्रियो विशुद्धात्मा यदैव स्मरते हरिम्॥३७॥

अन्वयः जितेन्द्रियः (इन्द्रियों को अपने वश में रखने वाला) **विशुद्धात्मा** (पूर्व पुण्य के कारण विशुद्धान्तःकरण होकर) **पुरुषः** (मनुष्य) **यदैव** (जिस समय पर) **हरिं स्मरते** (हरि का स्मरण करता है) **तदैव** (उसी समय वह पुरुष) **जन्म–मृत्यु–**

जरादिभिः (जन्म, मृत्यु, वार्धक्य इत्यादि रोगों से) **मुक्तः** (मुक्त हो जाता है।)

अनुवादः इन्द्रियों को अपने वश में रखने वाला मनुष्य पूर्व-पुण्य के कारण विशुद्धान्तःकरण (विशुद्ध चित्त से युक्त) होकर जिस समय पर हरि का स्मरण करता है, उसी समय वह पुरुष जन्म, मृत्यु, वार्धक्य इत्यादि रोगों से मुक्त हो जाता है।

प्राप्ते कलियुगे घोरे धर्मज्ञानविवर्जिते।
न कश्चित्स्मरते देवं कृष्णं कलिमलापहम्॥३८॥

अन्वयः घोरे (अत्यन्त कठोर) **धर्मज्ञानविवर्जिते** (धर्मकार्य तथा ज्ञान के लिये अवकाश नहीं देनेवाला) **कलियुगे** (कलियुग) **प्राप्ते** (प्राप्त होने पर) **कलिमलापहम्** (कलियुग के दोष को नष्ट करनेवाले) **कृष्णं देवं** (भगवान् श्रीकृष्ण को) **कश्चित्** (कोई भी पुरुष) **न स्मरते** (स्मरण नहीं करता है।)

अनुवादः अत्यन्त कठोर (घोर) धर्म-कार्य तथा ज्ञान के लिये अवकाश नहीं देनेवाला कलियुग प्राप्त होने पर कलियुग के दोष को नष्ट करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण का कोई भी पुरुष स्मरण नहीं करता है।

न कलौ देवदेवस्य जन्मदुःखापहारिणः।
करोति मर्त्यो मूढात्मा स्मरणं कीर्तनं हरेः॥३९॥

अन्वयः कलौ (कलियुग में) **मूढात्मा मर्त्यः** (मूर्ख मनुष्य) **जन्म-दुःखापहारिणः** (इस संसार के दुःख का परिहार करनेवाले) **देवदेवस्य** (देवताओं के देव) **हरेः** (श्रीहरि के) **स्मरणं कीर्तनं** (स्मरण तथा कीर्तन) **न करोति** (नहीं करता है।)

अनुवादः कलियुग में मूर्ख मनुष्य इस संसार के दुःख को परिहार करनेवाले देवताओं के देव श्रीहरि का स्मरण तथा कीर्तन नहीं करता है।

(विशेष व्याख्या श्लोक संख्या ३६-३९): शंकर जी बोल रहे हैं कि जो पुरुष अपने इन्द्रियों को वश में रखकर विशुद्ध मन से हरि का स्मरण करता है, वह मनुष्य उसी समय तुरन्त

संसार के सकल कष्टों से दूर हो जाता है। उस भक्त पुरुष का पाप हरिस्मरण से नष्ट हो जाते हैं। परन्तु यह कलियुग अत्यन्त घोर है, धर्मकार्य का आस्पद (स्थान) नहीं देता है, ज्ञान प्राप्त नहीं होने देता है। अतः मूर्खलोग इसी कलियुग में नानाविध विषयवस्तुओं में मग्न होकर परस्पर द्वेष, असूया, काम इत्यादि से अत्यन्त दुःख भोगते भोगते एकक्षण भी भगवान् का स्मरण नहीं करते हैं। कभी भी इन लोगों को भगवान् में भक्ति उत्पन्न नहीं होती है। हरिस्मरण के बिना अन्य कोई प्रायश्चित्त संसार में नहीं है। अतः ये मूर्ख लोग सर्वदा नरक में दुःख का अनुभव करते करते अन्त तक कभी भी भगवान् को प्राप्त नहीं कर पाते हैं।

ये स्मरन्ति सदा विष्णुं विशुद्धेनान्तरात्मना।
ते प्रयान्ति भयं त्यक्त्वा विष्णुलोकमनामयम्॥४०॥

अन्वयः ये (जो लोग) **विशुद्धेन अन्तरात्मना** (विशुद्ध मन से) **सदा** (सर्वदा) **विष्णुं** (श्रीहरि को) **स्मरन्ति** (स्मरण करते हैं) **ते** (वे लोग) **भयं त्यक्त्वा** (संसार के जन्म मृत्यु इत्यादि भय को छोड़कर) **अनामयं** (सकल दोषों से रहित) **विष्णुलोकं** (भगवान् के वैकुण्ठ-लोक को) **प्रयान्ति** (प्राप्त करते हैं।)

अनुवादः जो लोग विशुद्ध मन से सर्वदा श्रीहरि को स्मरण करते हैं वे लोग संसार के जन्म मृत्यु इत्यादि भय को छोड़कर सकल दोषों से रहित भगवान् के वैकुण्ठ-लोक को प्राप्त करते हैं।

गर्भजन्मजरारोगदुःखसंसारबन्धनैः।
न बाध्यते नरो नित्यं वासुदेवमनुस्मरन्॥४१॥

अन्वयः वासुदेवं (वसुदेवपुत्र श्रीकृष्ण को) **नित्यं** (प्रतिदिन) **अनुस्मरन्** (स्मरण करनेवाला) **नरः** (मनुष्य) **गर्भ-जन्म-जरा-रोग-दुःख-संसार-बन्धनैः** (गर्भवास-जन्म-वार्धक्य-रोग-दुःख इत्यादिरूप संसार के अनेक बन्धनों से) **न बाध्यते** (बाधित नहीं होता है।)

अनुवादः वसुदेव-पुत्र (अर्थात् नन्दनन्दन) श्रीकृष्ण का प्रतिदिन स्मरण करनेवाला मनुष्य गर्भवास-जन्म-वार्धक्य-रोग-दुःख इत्यादिरूप संसार के अनेक बन्धनों से बाधित नहीं होता है।

यममार्गं महाघोरं नरकाणि यमं तथा।
स्वप्नेऽपि नैव पश्येत यः स्मरेद्गरुडध्वजम्॥४२॥

अन्वयः यः (जो पुरुष) **गरुडध्वजं** (गरुड-वाहन श्रीकृष्ण का) **स्मरेत्** (स्मरण करता है, वह पुरुष) **स्वप्नेपि** (सपनों में भी) **महाघोरं यममार्गं** (अत्यन्त भयंकर यमलोक के रास्ते को) **नरकाणि** (नरकों को) **तथा** (उसी प्रकार) **यमं** (यमजी को भी) **नैव पश्येत्** (नहीं देखता है।)

अनुवादः जो पुरुष गरुड-वाहन श्रीकृष्ण का स्मरण करता है, वह पुरुष सपने में भी अत्यन्त भयंकर यमलोक के रास्ते का, नरकों का और उसी प्रकार यमराज का दर्शन नहीं करता है।

(विशेष व्याख्या श्लोक संख्या ४०-४२): शंकर जी फिर बोल रहे हैं कि जो लोग शुद्ध-मन से परिशुद्ध भक्ति से सर्वदा श्रीहरि का स्मरण करते हैं, वे लोग संसार के सारे भय से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त करेंगे। श्रीहरि को प्रति दिन स्मरण करनेवाले पुरुष को इस संसार में कोई भी वस्तु से भय नहीं होता है। वह पुरुष गर्भवास-जन्म-बूढ़ापन (वार्धक्य)-रोग इत्यादि से उत्पन्न होनेवाले दुःखों से तथा अनेक प्रकार के सांसारिक बन्धनों से बाधित नहीं होता है। श्रीहरि के वाहन गरुडजी हैं। गरुडजी को हरिका ध्वज भी कहा गया है। उस गरुड-ध्वज वासुदेव का स्मरण करने पर उस पुरुष के सपनों में भी यम-धर्मराज दिखाई नहीं देंगे। वह पुरुष नरक को छोडिये, नरक के रास्तों को भी कभी अपने स्वप्नों में नहीं देखेगा।

वह पुरुष अच्छे स्वप्नों को ही देखेगा। उस मनुष्य को कभी भी यम का भय नहीं होगा।

हृदि रूपं मुखे नाम नैवेद्यमुदरे हरेः।
पादोदकं च निर्माल्यं मस्तके यस्य सोऽच्युतः॥४३॥

अन्वयः यस्य (जिस पुरुष के) **हृदि** (हृदय में) **हरेः रूपं** (परमात्मा का रूप होगा) **मुखे** (मुख में) **हरेः नाम** (हरि का नाम होगा,) **उदरे** (पेट में) **हरेः नैवेद्यं** (हरि का नैवेद्य होगा,) **तथा मस्तके** (सिर पर) **हरेः पादोदकं** (हरि का चरणामृत और निर्माल्य होगा) **सः** (वह पुरुष) **अच्युतः** (मुक्त होगा।)

अनुवादः जिस पुरुष के हृदय में भगवान् श्रीकृष्ण का रूप होगा, मुख में हरि का नाम होगा, पेट में हरि का नैवेद्य होगा, तथा सिर पर हरि का चरणामृत और निर्माल्य होगा, वह पुरुष मुक्त होगा।

गोविन्दस्मरणं पुंसां पापराशिमहाचलम्।
असंशयं दहत्याशु तूलराशिमिवानलः॥४४॥

अन्वयः अनलः (आग) **तूलराशिम् इव** (रूई की राशि को जैसे) **दहति** (भस्म करती है,) [उसी प्रकार] **गोविन्दस्मरणं** (श्रीहरि का स्मरण) **पुंसां** (मनुष्यों की) **पापराशिं** (पापराशि को) **असंशयं** (निस्संशय रूप से) **आशु** (अत्यन्त शीघ्र) **दहति** (भस्म करता है।)

अनुवादः आग रूई की राशि को जैसे भस्म करती है, उसी प्रकार श्रीहरि का स्मरण मनुष्यों की पापराशि को निस्संशय रूप से अत्यन्त शीघ्र भस्म करता है।

(विशेष व्याख्या श्लोक संख्या ४३-४४): शंकरजी फिर बोल रहे हैं कि जैसे बहुत बड़ी रूई-राशि को आग क्षणमात्र में जलाकर भस्म करती है। उसी प्रकार मनुष्य अनन्त जनमों में भले ही जितने पाप किये हो, परन्तु श्रीहरि का स्मरण करने पर क्षणमात्र में सारे पाप भस्म हो जाते हैं, मनुष्य पापमुक्त हो जाता है। अतः जीवन के प्रतिक्षण हरि का स्मरण करते रहना चाहिए।

उसी प्रकार शुद्ध-हृदय से हरि का स्मरण, सर्वदा मुख से हरि नाम संकीर्तन, उदर में हरि को समर्पित भोग, सिर में हरि का पादोदक तथा हरि को समर्पित तुलसी पुष्प इत्यादि निर्माल्य, इन पांच वस्तुओं का धारण जो पुरुष करता है वह पुरुष

निश्चितरूप से मुक्त हो जाता है। भागवत में भी 'उच्छिष्टभोजिनो दासास्तव मायां जयेमहि' (हे हरे! तुम को समर्पित भोग के अवशिष्ट भाग का भोजन कर हम लोग तुम्हारी माया को पराजित कर लेंगे) ऐसा कहा गया।

कौशिकः–

अनाराधितगोविन्दा ये नरा दुःखभागिनः।
आराध्य वासुदेवं स्युर्नित्यानन्दैकभागिनः॥४५॥

अन्वयः अनाराधितगोविन्दाः (गुरूपदेश न होने के कारण गोविन्द जी की आराधना न किये हुए) **ये नराः** (जो लोग) **दुःखभागिनः** (दुःख का अनुभव कर रहे हैं वही लोग) **वासुदेवं** (वसुदेवपुत्र श्रीकृष्ण जी की) **आराध्य** (आराधना कर) **नित्यानन्दैकभगिनः स्युः** (वैकुण्ठलोक में नित्य आनन्द का अनुभव करेंगे।)

अनुवादः गुरूपदेश न होने के कारण गोविन्द जी की आराधना न करने वाले जो लोग दुःख का अनुभव कर रहे हैं, वही लोग वसुदेव–पुत्र (अर्थात् नन्दनन्दन) श्रीकृष्ण जी की आराधना कर वैकुण्ठ–लोक में नित्य आनन्द का अनुभव करेंगे।

विशेष व्याख्याः कौशिक–ऋषि कह रहे हैं कि कभी कभी योग्य सज्जन लोग भी सही मार्गनिर्देशन–गुरूपदेश के बिना भक्तिमार्ग से च्युत होते हैं। परन्तु सुयोग्य भगवन्मार्गोपदेशक गुरु मिलने से वही लोग भक्तिमार्ग में प्रवृत्त होकर मोक्ष प्राप्त करेंगे।

अगस्त्यः–

स्मरणादेव कृष्णस्य पापसंघातपञ्जरः।
शतधा भेदमायाति गिरिर्वज्रहतो यथा॥४६॥

अन्वयः यथा (जिस प्रकार) **व्रजहतः** (इन्द्र के वज्रायुध से आहत) **गिरिः** (पर्वत गिर जाता है) [उसी प्रकार] **कृष्णस्य** (भगवान् श्रीकृष्ण के) **स्मरणादेव** (स्मरणमात्र से) **पापसंघातपञ्जरः** (हमारे द्वारा किये गये पापों के समूहरूपी पिंजरा) **शतधा** (सैकडों टुकड़ों में) **भेदम् आयाति** (टूट जाता है।)

अनुवादः जिस प्रकार इन्द्र के **व**ज्रायुध से आहत पर्वत गिर जाता है, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण के स्मरण–मात्र से हमारे द्वारा किये गये पापों के समूह–रूपी पिंजरा सैकडों टुकड़ों में टूट जाता है।

विशेष व्याख्याः अगस्त्य ऋषि कह रहे हैं कि कृष्ण का नामस्मरण इन्द्र के वज्रायुध जैसा अत्यन्त प्रभावशाली हैं। केवल एक बार कृष्ण के स्मरण करने से ही हमारे सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। इन्द्र के वज्रायुध से मारने पर जैसे पर्वत टुकड़े टुकड़े हो जाते हैं, उसी प्रकार हमारे पाप हरिनामस्मरण से ध्वस्त हो जाते हैं।

कृष्णे रताः कृष्णमनुस्मरन्तः
तद्भावितास्तद्गतमानसाश्च।
भिन्नेपि देहे प्रविशन्ति कृष्णं
हविर्यथा मन्त्रहुतं हुताशे॥४७॥

अन्वयः यथा (जिस प्रकार मन्त्रपूर्वक आहुति दिया गया पुरोडाश इत्यादि) **हुताशे** (आहवनीयादि अग्नि में प्रविष्ट होता है, उसी प्रकार) **कृष्णे रताः** (भगवान् श्रीकृष्ण में भक्ति–युक्त,) **कृष्णम् अनुस्मरन्तः** (सर्वदा श्रीकृष्ण का स्मरण करनेवाले,) **तद्भाविताः** (श्रीकृष्ण के द्वारा स्वकीयत्वेन अनुगृहीत) **तद्गतमानसाश्च** (और उस श्रीकृष्ण में एकाग्रचित्त होकर लोग) **देहे भिन्ने अपि** (लिङ्ग–देह–भङ्ग के बाद) **कृष्णं** (भगवान् में) **प्रविशन्ति** (प्रविष्ट होते हैं।)

अनुवादः जिस प्रकार मन्त्रपूर्वक आहुति दिया गया पुरोडाश इत्यादि आहवनीयादि अग्नि में प्रविष्ट होता है, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण में भक्ति–युक्त, सर्वदा श्रीकृष्ण का स्मरण करनेवाले, श्रीकृष्ण के द्वारा स्वकीयत्वेन अनुगृहीत और उस श्रीकृष्ण में एकाग्रचित्त होकर लोग लिङ्ग–देह के भङ्ग होने के बाद भगवान् में प्रविष्ट होते हैं।

सा हानिस्तन्महच्छिद्रं सा चान्धजडमूकता।
यन्मुहूर्तं क्षणं वाऽपि वासुदेवो न चिन्त्यते॥४८॥

अन्वयः मुहूर्तं (एक मुहूर्त काल तक) **क्षणं व अपि** (एक क्षणकाल तक भी) **वासुदेवः न चिन्त्यते** (वसुदेवपुत्र श्रीकृष्ण का स्मरण नहीं किया जाता है) **यत्** (यह जो है) **सा हानिः** (वह हानिप्रद है।) **तत् महच्छिद्रं** (वह महापाप है।) **सा अन्ध–जड–मूकता च (**वह अन्धता, जडता और मूकता है।)

अनुवादः एक मुहूर्त्त काल तक या एक क्षण–काल तक भी वसुदेव–पुत्र (नन्दनन्दन) श्रीकृष्ण का स्मरण नहीं किया जाता है, तो वह हानिप्रद है। वह महापाप है। वह अन्धता, जडता और मूकता है।

(विशेष व्याख्या श्लोक संख्या ४७–४८): सर्वदा कृष्ण जी में अनुरक्त होकर सर्वदा भगवान् के द्वारा स्वकीय–भक्त के रूप में स्वीकृत होकर जो लोग एकाग्र–मन से हरि–नाम–स्मरण करते हैं, वे लोग लिङ्ग–देह नष्ट होने के बाद कृष्ण–लोक में प्रविष्ट होंगे। हमारे शरीर चार प्रकार के होते हैं। बाहर दिखाई देनेवाला चर्म मांस मज्जादि–रूप बाह्य–शरीर पहलेवाला है। उसके अन्दर सृष्टिकाल में भगवान् के द्वारा दिया गया अनिरुद्ध–शरीर है। उसके अन्दर लिङ्ग–देह होता है। जैसे यव इत्यादि धान्य के बाहर शूक (छिलका) होता है, उसी प्रकार जीव–स्वरूप के आवरण के रूप में लिङ्ग–देह होता है। उस के अन्दर स्वरूप–देह होता है। भगवान् के बारे में सुनना (श्रवण), तन्मय होकर उसी का चिन्तन करना (मनन) अन्त में समाधिमग्न होकर ध्यान करना (निदिध्यासन)––इस प्रकार की साधना से भगवान् का दर्शन प्राप्त हो जाता है। भगवान् को साक्षात् देखने के बाद उस शरीर में तथा अगले जन्मों में कर्मशेष का भोग करने के बाद कल्पान्त में जीव अर्चिरादि–मार्ग से चल कर विरजा नदी में स्नान करता है। उस समय लिङ्ग–देह उस विरजा नदी में ही प्रवाहित हो जाता है। इस प्रकार लिङ्ग–देह को छोड़ने के बाद जीव भगवान् के लोक में प्रवेश करता हैं। कुछ देवताओं का तो भगवान् के शरीर में ही प्रवेश होता हैं। इस प्रक्रिया को ध्यान में रखकर कहा गया है

कि लिङ्ग–देह भङ्ग होने के बाद जीव वैकुण्ठ में प्रवेश करता है।

अतः आयुष्य के प्रत्येक क्षण में भगवान् का चिन्तन करना चाहिए। एक भी क्षण भगवान् का स्मरण छोड़ दिया तो वही महा–हानिप्रद होता है, बहुत बड़ा दोष बन जाता हैं। एक क्षण, एक मुहूर्त्त तक भी भगवत्स्मरण छोड़ने पर वह अन्धे के समान है, पुरुष को पत्थर जैसा जड़ समझना चाहिए। भगवन्नाम–कीर्तन न करने पर उस को मूक समझना चाहिए। अतः इन सारे दोषों के निवारण हंतु सर्वदा हरिनामस्मरण तथा कीर्तन करते रहना चाहिए।

नारायणो नाम नरो नराणां
प्रसिद्ध चोरः कथितः पृथिव्याम्।
अनेकजन्मार्जितपापसंचयं
हरत्यशेषं स्मृतमात्र एव॥४९॥

अन्वयः पृथिव्यां (इस भूमि पर) **नारायणः नाम** (नारायण इस नाम के) **नरः** (परमपुरुष को) **प्रसिद्धचोरः कथितः** (अत्यन्त प्रसिद्ध चोर कहा गया है क्यों कि) **स्मृतमात्र एव** (केवल उन का स्मरण करने से ही) **अनेक–जन्मार्जित–पाप संचयं** (अनेक जन्मों से संपादित पापराशि को) **हरति** (वह चुरा लेते है।)

अनुवादः इस भूमि पर **नारायण** इस नाम के परमपुरुष को अत्यन्त प्रसिद्ध चोर कहा गया है क्यों कि केवल उन का स्मरण करने से ही अनेक जन्मों से संपादित पापराशि को वह चुरा लेते है।

यस्य संस्मरणादेव वासुदेवस्य चक्रिणः।
कोटिजन्मार्जितं पापं तत्क्षणादेव नश्यति॥५०॥

अन्वयः चक्रिणः (चक्रधारी) **यस्य वासुदेवस्य** (वसुदेव–पुत्र श्रीकृष्ण के) **संस्मरणादेव** (केवल स्मरणमात्र से) **कोटिजन्मार्जितं** (अनेक करोडों जन्मों में किया गया) **पापं** (पापराशि तत्क्षणात्)

एव (उसी क्षण में ही) **नश्यति** (नष्ट हो जाता है) [ऐसे श्रीकृष्ण भगवान् की उपासना सर्वदा करना चाहिए।]

अनुवादः चक्रधारी वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण के केवल स्मरणमात्र से अनेक करोडों जन्मों में की गई पापराशि तत्क्षणात् उसी क्षण में ही नष्ट हो जाती है, ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण की उपासना सर्वदा करना चाहिए।

(विशेष-व्याख्या श्लोक-संख्या ४९-५०): श्लोक ४७ में कहा गया है कि भगवान् के स्मरण से अनेक जन्मों में किया गया पाप नष्ट हो जाते हैं। उसी विषय को यहां भी प्रतिपादन किया जा रहा है। *'किम् अलभ्यं भगवति प्रसन्ने श्रीनिकेतने'* (भगवान् प्रसन्न होने पर इस जगत् में सारे पदार्थ सुलभ होंगे) इस उक्ति के अनुसार भगवान् अमित-शक्ति-संपन्न होने के कारण भक्तों के ऊपर अनुग्रह कर उन के सो पापों को भस्मसात् करते हैं। जैसे नन्हें बच्चों के ऊपर प्रसन्न होकर माता उन बच्चों को प्यार से अपनाती है, उसी प्रकार भक्तलोगों के द्वारा भक्तिपूर्वक पुकारे गये भगवान् भक्तों की सारी मनोकामनाएं पूर्ण करते हैं। उन के पाप राशि का नाश करते हैं। अतः उन को प्रसिद्ध चोर कहा गया है, जो सारे पापों की चोरी करते हैं, परन्तु भगवान् इतनी बडी पापराशि को चुरा लेते हैं।

किं तस्य बहुभिस्तीर्थैः किं तपोभिः किमध्वरैः।
यो नित्यं ध्यायते देवं नारायणमनन्यधीः॥५१॥

अन्वयः यः (जो पुरुष) **अनन्यधीः** (एकाग्रचित्त होकर) **नित्यं** (प्रतिदिन) **नारायणं देवं** (भगवान् नारायण का) **ध्यायते** (ध्यान करता है) **तस्य** (उस पुरुष को) **बहुभिः तीर्थैः** (गङ्गा यमुना इत्यादि अनेक तीर्थों से क्या प्रयोजन है?) **तपोभिः** (कृछ्र-चान्द्रायण व्रत इत्यादि तपस्याओं से) **किं** (क्या प्रयोजन है?) **अध्वरैः** (सोमयाग इत्यादि बडे-बडे यज्ञों से) **किं** (प्रयोजन है?)

अनुवादः जो पुरुष एकाग्रचित्त होकर प्रतिदिन भगवान् नारायण का ध्यान करता है, उस पुरुष को गङ्गा, यमुना इत्यादि

अनेक तीर्थों से क्या प्रयोजन है? कृछ्र-चान्द्रायण व्रत इत्यादि तपस्याओं से क्या प्रयोजन है? सोमयाग इत्यादि बडे-बडे यज्ञों से प्रयोजन है?

ये मानवा विगतरागपरावरज्ञा
नारायणं सुरगुरुं सततं स्मरन्ति।
ध्यानेन तेन हतकिल्बिषचेतनास्ते
मातुः पयोधररसं न पुनः पिबन्ति॥५२॥

अन्वयः विगतरागपरावरज्ञाः (वैराग्य प्राप्त कर तथा सभी पदार्थों के तारतम्य जानकर) **ये मानवाः** (जो लोग) **सुरगुरुं** (देवताओं के गुरु) **नारायणं** (नारायण को) **सततं** (सर्वदा) **नमन्ति** (नमस्कार करते हैं,) **ते** (वे लोग) **तेन ध्यानेन** (सतत नाम-स्मरण-रूप ध्यान से) **हतकिल्बिषचेतनाः** (दुर्बुद्धि-रहित होकर) **मातुः पयोधररसं** (माता के स्तन्य को) **पुनः** (फिर) **न पिबन्ति** (नहीं पीते हैं।)

अनुवादः वैराग्य प्राप्त कर तथा सभी पदार्थों का तारतम्य जानकर जो लोग देवताओं के गुरु नारायण को सर्वदा नमस्कार करते हैं, वे लोग सतत नामस्मरणरूप ध्यान से दुर्बुद्धि-रहित होकर माता के स्तन्य को फिर नहीं पीते हैं।

(विशेष व्याख्या, श्लोक संख्या ५१-५२): जो पुरुष सर्वदा एकाग्रचित्त होकर भगवान् का स्मरण करते हैं, वह पुरुष भगवत्स्मरण से ही सारे तीर्थक्षेत्रों की यात्रा का फल प्राप्त करते हैं। अतः उस पुरुष को तीर्थ-यात्रा से कुछ भी प्रयोजन नहीं है, न वा कृच्छ्र, चान्द्रायण इत्यादि कठिन तपस्याओं से, और नहीं यज्ञ-यागों से। कलियुग में कठिन तपस्या का अनुष्ठान और यज्ञ-यागादि अनुष्ठान करना भी दुष्कर है। अतः केवल हरिनामस्मरण ही कलियुग में अत्यन्त श्रेष्ठ मोक्ष-साधन है। इस प्रकार सतत हरिनामस्मरण करनेवाले लोग पुनः इस संसार में नहीं आयेंगे। 'परावरज्ञाः' शब्द से पदार्थों का विवेकपूर्ण तारतम्य ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक बताया गया हैं। कौन सा पदार्थ नित्य है? कौन

सा अनित्य है?--यह जानना आवश्यक है। उसी प्रकार देवताओं में भी क्रमशः कौन सी देवता से कौन सी देवता उत्कृष्ट है। इन्द्र-रुद्र-प्राण-चतुर्मुख ब्रह्मा-लक्ष्मी-विष्णु इस क्रम से देवताओं में तारतम्य ज्ञान प्राप्त कर सभी देवताओं से विष्णु को ही उत्तम समझ कर हरि-स्मरण करना चाहिए।

हे चित्त चिन्तयस्वेह वासुदेवमहर्निशम्।
नूनं यश्चिन्तितः पुंसां हन्ति संसारबन्धनम्॥५३॥

अन्वयः हे चित्त (हे मनोऽभिमानिदेवता शंकर जी!) **चिन्तितः** (चिन्तन मनन करने पर) **यः** (जो वासुदेव कृष्ण) **पुंसां** (मनुष्यों के) **संसारबन्धनं** (संसार के बन्धन को) **नूनं** (निश्चित-रूप से) **हन्ति** (नष्ट कर देते हैं उन) **वासुदेवं** (भगवान् श्रीकृष्ण का) **इह** (अभी) **अहर्निशम्** (दिन रात निरन्तर) **चिन्तयस्व** (मेरे द्वारा का चिन्तन कराइए।)

अनुवादः हे मनोऽभिमानिदेवता शंकर जी! चिन्तन एवं मनन करने पर जो वासुदेव कृष्ण मनुष्यों के संसार के बन्धन को निश्चित-रूप से नष्ट कर देते हैं, उन भगवान् श्रीकृष्ण का अभी दिन-रात निरन्तर मेरे द्वारा चिन्तन कराइए।

आलोड्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः।
इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा॥५४॥

अन्वयः सर्व-शास्त्राणि (सारे शास्त्रों को) **आलोड्य** (पुनः पुनः परामर्श कर) **पुनः पुनः** (बार बार) **विचार्य च** (विचार करने पर) **इदम् एकं** (यही एक विषय) **सुनिष्पन्नं** (सिद्ध होता है कि) '**नारायणः** (भगवान् नारायण का) **सदा** (सर्वदा) **ध्येयः** (ध्यान करना चाहिए'।)

अनुवादः सारे शास्त्रों का पुनः पुनः परामर्श (अन्वेषण) कर और बारबार विचार करने पर यही एक विषय सिद्ध होता है कि भगवान् नारायण का सर्वदा ध्यान करना चाहिए।

विशेष व्याख्याः भगवान् वेद-व्यास जी अनेक बार यह बात लिख चुके हैं। इस संसार में मुख्य कर्त्तव्य क्या हैं? इस

विषय में विचार करने हेतु सारे शास्त्रों का बार बार मंथन कर, बार बार विचार करने पर सर्व शास्त्रों का निर्णय यह निकला है कि “सर्वदा नारायण–विष्णु का स्मरण करना चाहिए”। वेद–पुराण–महाभारत–रामायण–धर्मशास्त्र इत्यादि सभी धर्म–ग्रन्थों का निर्णय एक ही है। इस में अणुमात्र भी मतभेद नहीं है। अतः वर्ण–जाति भेद के बिना सब सभी धर्मावलम्बी मनुष्यों को हरि–स्मरण करना चाहिए।

हमारा मन सर्वदा भगवान् में एकाग्र होने हेतु मनस् तत्त्व के अभिमानी देवता शंकर जी से प्रार्थना करना चाहिए कि हे भगवान् शंकर जी! आप मेरे मन में रहकर मन को सदा भगवच्चिन्तनपर बनाइए। इस प्रार्थना से संतुष्ट शंकर जी हमारे मन को भगवच्चिन्तन के अनुकूल बनायेंगे।

स्मृते सकलकल्याणभाजनं यत्र जायते।
पुरुषस्तमजं नित्यं व्रजामि शरणं हरिम्॥५५॥

अन्वयः यत्र स्मृते (जिस श्रीकृष्ण का स्मरण करने पर) **पुरुषः** (स्मरण करनेवाला मनुष्य) **सकल–कल्याण–भाजनं** (सब प्रकार के मङ्गलों का पात्र) **जायते** (बन जाता है,) **नित्यं** (प्रतिदिन) **तम्** (उस) **अजं** (जन्मरहित) **हरिं** (श्रीहरि के) **शरणं वज्रामि** (शरण में जाता हूं।)

अनुवादः जिस श्रीकृष्ण का स्मरण करने पर स्मरण करनेवाला मनुष्य सब प्रकार के मङ्गलों का पात्र बन जाता है, प्रतिदिन उन जन्म–रहित श्रीहरि के शरण में जाता हूं।

वेदेषु यज्ञेषु तपस्सु चैव दानेषु तीर्थेषु व्रतेषु यच्च।
इष्टेषु पूर्तेषु च यत्प्रदिष्टं पुण्यं स्मृते तत्खलु वासुदेवे॥५६॥

अन्वयः वेदेषु (वेदाध्ययन से,) **यज्ञेषु** (यज्ञानुष्ठान से,) **तपस्सु च एव** (उपवास इत्यादि तपस्याओं से भी,) **दानेषु** (दान देने से,) **तीर्थेषु** (तीर्थयात्राओं से,) **व्रतेषु च** (चान्द्रायणादि व्रतों से भी,) **यत्** (जो पुण्य बताया गया है, तथा) **इष्टेषु** (वैश्वदेव इत्यादि यागों से) **पूर्तेषु च** (अन्नदान, वापी, कूप, तटाक इत्यादि के

निर्माण से) **यत् पुण्यं प्रदिष्टं** (जो भी पुण्य बताया गया है) **तत्** (वह सारा पुण्य) **वासुदेवे स्मृते खलु** (श्रीकृष्ण का स्मरण करने पर ही होता है,) (अन्यथा नहीं।)

अनुवादः वेदाध्ययन से, यज्ञानुष्ठान से, उपवास इत्यादि तपस्याओं से भी, दान देने से, तीर्थयात्राओं से, चान्द्रायणादि व्रतों से भी, जो पुण्य बताया गया है, तथा वैश्वदेव इत्यादि यागों से अन्नदान, वापी, कूप, तटाक इत्यादि के निर्माण से जो भी पुण्य बताया गया है वह सारा पुण्य श्रीकृष्ण का स्मरण करने पर ही होता है, अन्यथा नहीं।

आराध्यैव नरो विष्णुं मनसा यद्यदिच्छति।
फलं प्राप्नोति विपुलं भूरि स्वल्पमथापि वा॥५७॥

अन्वयः नरः (मनुष्य) **मनसा** (मन से) **भूरि** (बहुत बड़ा) **अथवा** (अथवा) **स्वल्प अपि** (छोटा भी) **यत् यत्** (जो कुछ भी) **फलं** (फल को) **इच्छति** (प्राप्त करने की इच्छा करता है) **विष्णुं** (विष्णु की) **आराध्य एव** (आराधना करने से ही) **विपुलं** (अधिक मात्रा में) **फलं** (उस फल को) **प्राप्नोति** (प्राप्त करता है।)

अनुवादः मनुष्य मन के द्वारा जो कुछ भी बहुत बड़ा अथवा छोटा फल प्राप्त करने की इच्छा करता है, सिर्फ भगवान् विष्णु की आराधना करने से ही अधिक मात्रा में उस फल को वह प्राप्त करता है।

(विशेष-व्याख्या श्लोक-संख्या ५५-५७): शास्त्रों में पुण्य-संपादन हेतु अनेक प्रकार का साधन बताया गया हैं। वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान, उपवासादि तपस्या, दान, तीर्थयात्रा, चान्द्रायणादि व्रत, प्रतिदिन विहित वैश्वदेव, सन्ध्या-वन्दनादि, परोपकारर्थ किये जानेवाले अन्न-दान, जलदान, पान्थ-गृह-निर्माण, कूप-तटाकादि-निर्माण--इन सारे सत्कर्मों को हरि-स्मरणपूर्वक करने पर ही उस से पुण्य-प्राप्ति होती है, अन्यथा नहीं। अतः सर्वदा हरिस्मरण अत्यन्त आवश्यक है। उस हरि के स्मरण करने पर उस पुरुष के गृह में मङ्गल

होता है। पुत्र-पौत्रादि-सन्तान, ज्ञान, पशु, वाहन, गृह इत्यादि-रूप सकल अभीष्ट-वस्तु वह पुरुष प्राप्त करता है।

इस प्रकार सतत हरिस्मरण करने से उस पुरुष का मन में कोई भी छोटी बडी वस्तुओं के प्रति कामना करता है तो उस वस्तु को प्राप्त कर लेता है।

अब तक ध्यान के बारे में कहा गया है। अगले श्लोकों में भगवन्नाम-कीर्तन का फल का प्रतिपादन कर रहे हैं।

यन्नामकीर्तन भक्त्या विलापनमनुत्तमम्।
मैत्रेयाशेषपापानां धातूनामिव पावकः॥५८॥

अन्वयः मैत्रेय (हे मैत्रेय ऋषि!) **धातूनां** (सोना इत्यादि धातुओं के लिये) **पावकः इव** (अग्नि जैसे शुद्धि-कारक होता है, उसी प्रकार) **अशेषपापानां** (हमारे द्वारा किये गये पापों के लिये) **भक्त्या यन्नामकीर्तनं** (भक्ति-पूर्वक भगवन्नाम-कीर्तन) **अनुत्तमं** (अत्यन्त श्रेष्ठ) **विलापनं** (नाशक है।)

अनुवादः हे मैत्रेय ऋषि! सोना इत्यादि धातुओं के लिये अग्नि जैसे शुद्धि-कारक होता है, उसी प्रकार हमारे द्वारा किये गये पापों के लिये भक्ति-पूर्वक भगवन्नाम-कीर्तन अत्यन्त श्रेष्ठ नाशक है।

कलिकल्मषमत्युग्रं नरकार्तिप्रदं नृणाम्।
प्रयाति विलयं सद्यः सकृत्संकीर्तितेच्युते॥५९॥

अन्वयः नृणाम् (मनुष्यों को) **नरकार्ति-प्रदम्** (नरक-दुःख देनेवाले) **अत्युग्रं** (अत्यन्त भयंकर) **कलि-कल्मषं** (कलियुग के काम-क्रोध इत्यादि-रूप दोष) **सकृत्** (एक बार) **अच्युते संकीर्तिते** (भगवान् कृष्ण का नाम संकीर्तन करने पर) **सद्यः** (तुरन्त) **निलयं प्रयाति** (विनष्ट हो जाते है।)

अनुवादः मनुष्यों को नरक-दुःख देनेवाले अत्यन्त भयंकर कलियुग के काम-क्रोध इत्यादि-रूप दोष एक बार भगवान् कृष्ण का नाम संकीर्तन करने पर तुरन्त विनष्ट हो जाते है।

(विशेष–व्याख्या श्लोक–संख्या ५८–५९): सोना इत्यादि धातुओं को आग में डालकर उन की अशुद्धि निकालते हैं। उसी प्रकार भगवन्नाम–कीर्तन एक अग्नि हैं। उस अग्नि का संपर्क होने पर हम लोगों के सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। तथा हम लोग शुद्ध हो जाते हैं। अतः सर्वदा भगवन्नाम–कीर्तन करना चाहिए। कलियुग के अत्यन्त भयंकर दोष है—काम, क्रोध और लोभ। यह तीनों नरक के मार्ग (द्वार–स्वरूप) हैं। इन तीनों दोषों को विनष्ट करने का एकमात्र उपाय है भगवन्नाम–कीर्तन। एक बार भी संकीर्तन करने पर कलियुग के यह दोष नष्ट हो जाते हैं।

अनायासेन चायान्ति मुक्तिं केशवसंश्रिताः।
तद्विघाताय जायन्ते शक्राद्याः परिपन्थिनः॥६०॥

अन्वयः केशवसंश्रिताः (भगवान् श्रीकृष्ण के आश्रित लोग) **अनायासेन** (परिश्रम के बिना) **मुक्तिं च आयान्ति** (मुक्ति को भी प्राप्त करते हैं। परन्तु) **शक्राद्याः** (इन्द्र इत्यादि देवताएं) **तद्विघाताय** (मोक्ष में विघ्न उत्पन्न करने हेतु) **परिपन्थिनः जायन्ते** (विरोधी बन जाते हैं।)

अनुवादः भगवान् श्रीकृष्ण के आश्रित लोग परिश्रम के बिना मुक्ति को भी प्राप्त करते हैं। परन्तु इन्द्र इत्यादि देवताएं मोक्ष में विघ्न उत्पन्न करने हेतु विरोधी बन जाते हैं।

चतुः सागरमासाद्य जम्बूद्वीपोत्तमे कश्चित्।
न पुमान्केशवादन्यः सर्वपापचिकित्सकः॥६१॥

अन्वयः जम्बूद्वीपोत्तमे (अत्युत्तम जम्बूद्वीप में) **चतुस्सागरम् आसाद्य** (चारों समुद्रों के मध्य में रहनेवाले मनुष्य के) **सर्वपापचित्सकः** (सब पापों का नाश करनेवाले) **पुमान्** (पुरुष) **केशवात् अन्यः** (श्रीकृष्ण के अलावा दूसरा कोई) **न** (नहीं है।)

अनुवादः अत्युत्तम जम्बूद्वीप में चारों समुद्रों के मध्य में रहनेवाले मनुष्य के सब पापों का नाश करनेवाले पुरुष श्रीकृष्ण के अलावा दूसरा कोई नहीं है।

(विशेष–व्याख्या, श्लोक–संख्या ६०–६१): जो लोग भगवन्नाम संकीर्तन से मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं, वह लोग कीर्तन से अवश्य अनायास मोक्ष प्राप्त करते हैं। परन्तु श्रीहरि के परिवार देवताओं को भी अवश्य प्रसन्न करना चाहिए। अन्यथा इन्द्रादि देवताएं मोक्ष–मार्ग में विघ्न पैदा करते हैं। अतः उन देवताओं को अवश्य ही प्रसन्न करना चाहिए। परन्तु यह विषय भूलना नहीं चाहिए कि इन देवताओं की शक्ति परिमित है। ये देवताएं मोक्ष दे नहीं सकती है। हमारे सब पाप नष्ट नहीं कर सकती हैं। अतः इन देवताओं को उन की योग्यता के अनुरूप ही पूजा करना चाहिए तथा सर्वोत्तम श्रीहरि का भजन–कीर्तन सर्वदा करते रहना चाहिए। उस को कभी नहीं छोड़ना चाहिए।

यदभ्यर्च्य हरिं भक्त्या कृते वर्षशतैरपि।
फलमाप्नोति विपुलं कलौ संकीर्त्य केशवम्॥६२॥

अन्वयः कृते (कृतयुग में) **वर्णशतैः अपि** (एक सौ सालों तक) **भक्त्या** (भक्तिपूर्वक) **हरिं** (श्रीहरि की) **अभ्यर्च्य** (अर्चना कर) **यत्** (जो) **विपुलं** (बहुत) **फलं** (फल को) **आप्नोति** (प्राप्त होता है, वही फल) **कलौ** (कलियुग में) **केशवं** (श्रीकृष्ण का) **संकीर्त्य** (कीर्तन करने से) **आप्नोति** (प्राप्त होता है।)

अनुवादः कृतयुग में एक सौ सालों तक भक्तिपूर्वक श्रीहरि की अर्चना कर जो बहुत फल को प्राप्त होता है, उस फल को कलियुग में श्रीकृष्ण का कीर्तन करने से प्राप्त होता है।

विशेष–व्याख्याः एक बार वेदव्यास जी स्नान कर रहे थे। उसी समय अनेक ऋषि लोग उनके दर्शनार्थ वहां पधारे। वेदव्यासजी सरोवर में डुबकी लगा कर ऊपर उठते हुए कहे कि “कलियुग ही धन्य है।” सारे ऋषिजन विस्मित होकर पूछे कि “क्यों कलियुग धन्य है?” वेदव्यास जी ने कहा कृतयुग इत्यादि अन्य तीनों युगों में साधना बहुत कठिन होती है। हजारों सालों तब एक अंगूठे पर खड़े होकर तपस्या करने पर भगवान् प्रसन्न

होते थे। परन्तु कलियुग में केवल भगवन्नाम-कीर्तन से ही भगवान् प्रसन्न होते हैं। अतः कलियुग ही इतर युगों से श्रेष्ठ है।

इसी प्रसङ्ग का स्मरण दिलाता है यह श्लोक। सत्ययुग में सौ साल तक भगवान् की अर्चना कर जो फल प्राप्त करते हैं, वह पुण्य-फल कलियुग में केवल भगवन्नाम-कीर्तन से ही प्राप्त होता है। अतः इस सदवकाश का लाभ उठाते हुए हम लोग सर्वदा भगवान् को नाम से पुकारें। इस से भगवान् संतुष्ट हो जाते हैं।

क्षयते तु यदा धर्मः प्राप्ते घोरे कलौ युगे।
तदा न कीर्तयेत्कश्चिन्मुक्तिदं देवमच्युतम्॥६३॥

अन्वयः घोरे (अत्यन्त भयंकर) **कलौ युगे** (कलियुग) **प्राप्ते** (आने पर) **यदा** (जब) **धर्मः** (धर्ममार्ग) **क्षीयते** (क्षीण हो जाता है) **तदा** (उस समय) **कश्चित्** (कोई भी पुरुष) **मुक्तिपदं** (मुक्ति देनेवाले) **देवं** (देवोत्तम) **अच्युतं** (श्रीहरि का) **न कीर्तयेत्** (कीर्तन नहीं करता है।)

अनुवादः अत्यन्त भयंकर कलियुग आने पर जब धर्ममार्ग क्षीण हो जाता है ,उस समय कोई भी पुरुष मुक्ति देनेवाले देवोत्तम श्रीहरि का कीर्तन नहीं करता है।

विशेष-व्याख्याः हरि-कीर्तन का फल इतना अपरिमेय (अपरिमित, अपार) होने पर भी इस अत्यन्त घनघोर कलियुग में श्रीहरि का नाम-संकीर्तन कोई पुरुष नहीं करता हैं। अतः ऐसे संसारासक्त लोग सर्वदा संसार-चक्र में पतित होकर कष्ट का अनुभव प्राप्त करते हैं।

अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्वपातकैः।
पुमान्विमुच्यते सद्यः सिंहस्तैर्मृगैरिव॥६४॥

अन्वयः सिंहत्रस्तैः (सिंह से भयभीत) **मृगैः इव** मृग जैसे) [सिंहके हाथसे छुटकारा पा लेता हैं] **अवशेन अपि** (स्वप्रयत्न के बिना) **यन्नाम्नि** (श्रीहरिनाम का) **कीर्तिते** (कीर्तन करने पर) **पुमान्**

(नाम-संकीर्तन करने वाला पुरुष) **सर्वपातकैः** (सभी पापों से) **सद्यः** (तुरन्त) **विमुच्यते** (मुक्त हो जाता है।)

अनुवादः जो व्यक्ति अनजानमें भी श्रीनारायणका कीर्त्तन करता है, वह तत्क्षण समस्त प्रकारके पापोंसे छुटकारा पा लेता है। हरिनाम-कीर्त्तन करनेसे पापी व्यक्ति पापके हाथोंसे ठीक उसी प्रकारसे छुटकारा पा लेता है, जैसे मृग एक भयानक सिंहके हाथसे छुटकारा पा ले।

ब्रह्माः-

नारायणेति मन्त्रोऽस्ति वागस्ति वशवर्तिनी।
तथाऽपि नरके घोरे पतन्तीत्येतदद्भुतम्॥६५॥

अन्वयः नारायण इति मन्त्रः अस्ति ("नारायण" यह चार अक्षर का मन्त्र सब को विदित है।) **वशवर्तिनी** (हमारी इच्छा से काम करने वाली) **वाक् अस्ति** (वागिन्द्रिय है।) **तथपि** (यह दोनों होने पर भी लोग) **घोरे नरके** (अत्यन्त भयंकर नरक में) **पतन्ति** (गिर पड़ते हैं) **इति एतत्** (यह विषय) **अद्भुतं** (आश्चर्यजनक हैं।)

अनुवादः "नारायण" यह चार अक्षर का मन्त्र सब को विदित है। हमारी इच्छा से काम करने वाली वागिन्द्रिय है। यह दोनों होने पर भी लोग अत्यन्त भयंकर नरक में गिर पड़ते हैं यह विषय आश्चर्यजनक हैं।

(विशेष-व्याख्या श्लोक-संख्या ६४-६५): कोई पुरुष अरण्य में जाते हुए भालू बाघ इत्यादि जानवरों के आक्रमण से त्रस्त होता है। परन्तु उसी समय वहाँ पर सिंह आने पर सिंह के डर से बाकी सब जानवर उस पुरुष को छोड़ कर भाग जाते हैं। उसी प्रकार हरि-नाम-कीर्तन करने पर सारे पाप नष्ट हो जाते हैं।

ब्रह्माजी को बहुत आश्चर्य होता हैं। ब्रह्माजी पूछते हैं कि नरक में लोग क्यों आ रहे हैं? नरक से बचने के लिये इन लोगों के पास अत्यन्त सुलभ उपाय है। हमारी वाणी किसी भी शब्द का उच्चारण करने के लिये सक्षम है। "नारायण" यह चार

अक्षर–वाला मन्त्र सब को विदित है। लोग नारायण मन्त्रोच्चारण क्यों करते नहीं हैं?

आर्ता विषण्णाः शिथिलाश्च भीता
घोरेषु च व्याधिषु वर्तमानाः।
संकीर्त्य नारायण–शब्दमात्रं
विमुक्तदुःखाः सुखिना भवन्ति॥६६॥

अन्वयः आर्ताः (पीडित) **विषण्णाः** (दुःखी) **शिथिलाः** (शिथिल अवयव वाले) **भीताश्च** (भयभीत लोग भी) **घोरेषु व्याधिषु** (अत्यन्त घोर रोगों से) **वर्तमानाः च** (पीडित लोग भी) **नारायणशब्दमात्रं** (केवल नारायण शब्द का) **संकीर्त्य** (संकीर्तन कर) **विमुक्तदुःखाः** (दुःख से दूर होकर) **सुखिन भवन्ति** (सुखी होते हैं।)

अनुवादः पीडित, दुःखी, शिथिल अवयव वाले, भयभीत और अत्यन्त घोर रोगों से पीडित लोग भी केवल 'नारायण' शब्द का संकीर्तन कर दुःख से मुक्त होकर सुखी होते हैं।

कौशिकः–

सकृदुच्चरितं यैस्तु कृष्णेति न विशन्ति ते।
गर्भागारगृहं मातुर्यमलोकं च दुःसहम्॥६७॥

अन्वयः [जिन लोगों ने] **सकृत** (एक बार भी) **कृष्ण इति** ("कृष्ण" यह शब्द का) **उच्चरितं** (उच्चारण किया है) **ते** (वे लोग) **मातुः गर्भागार–गृहं** (माता के गर्भ रूपी बन्धन–कक्ष में तथा) **दुःसहं** (अत्यन्त कठिन) **यमलोकं च** (यमलोक में) **न विशन्ति** (प्रवेश नहीं करते हैं।)

अनुवादः जिन लोगों ने एक बार भी "कृष्ण" इस शब्द का उच्चारण किया है, वे लोग माता के गर्भ–रूपी बन्धन–कक्ष में तथा अत्यन्त कठिन यमलोक में प्रवेश नहीं करते हैं।

(विशेष–व्याख्या श्लोक–संख्या ६६–६७): श्लोक ६६ अत्यन्त प्रसिद्ध है। इस संसार के नानाविध क्लेश से पीडित, दुःखी, भयभीत, अपङ्ग, नानाविध–रोग–ग्रस्त—ये सारे तरह के लोग

केवल नारायण–शब्द के संकीर्तन से दुःख–विमुक्त होकर वैकुण्ठ–लोक में नित्य–सुख प्राप्त करेंगे। जो लोग “कृष्ण” इस दो अक्षर के मन्त्र का एक बार भी उच्चारण करते हैं, उन लोगों को फिर गर्भावास दुःख का अनुभव नहीं करना होगा। वे लोग फिर से कभी भी यमलोक का दर्शन नहीं करेंगे।

क्व नाकपृष्ठगमनं पुनरावृत्तिलक्षणम्।
क्व जपो वासुदेवेति मुक्तिबीजमनुत्तमम्॥६८॥

अन्वयः पुनरावृत्ति–लक्षणं (संसार में पुनरावृत्ति–दायक) **नाक–पृष्ठ–गमनं** (स्वर्ग–लोक प्राप्ति) **क्व** (कहां?) **अनुत्तमं मुक्तिबीजं** (मुक्ति का मुख्य साधन) **वासुदेव इति जपः** (“वासुदेव” इस चार अक्षर का मन्त्र जाप) **क्व** (कहाँ)?

अनुवादः संसार में पुनरावृत्ति–दायक स्वर्ग–लोक की प्राप्ति कहाँ? मुक्ति का मुख्य साधन “वासुदेव” इस चार अक्षर का मन्त्र जाप कहाँ?

बुद्ध्वा बुद्ध्वा वदस्वैनं हरिरित्पक्षरद्वयम्।
स्मरणात्कीर्तनाद्यस्य न पुनर्जायते क्वचित्॥६९॥

अन्वयः यस्य (जिस श्रीहरि के) **स्मरणात्** (स्मरण से) [तथा] **कीर्तनात्** (नाम–कीर्तन से) [पुरुष] **क्वचित्** (कहीं भी) **पुनः** (फिर) **न जायते** (उत्पन्न नहीं होता है) **एनं** (श्रीहरि को) **बृद्ध्वा** (बुद्धि से) **बुद्ध्वा** (अच्छे तरह से समझ कर) **हरिः इति अक्षरद्वयं** (“हरि” इस दो अक्षर के मन्त्र को) **वदस्व** (उच्चारण करो।)

अनुवादः जिन श्रीहरि के स्मरण से तथा नाम–कीर्तन से पुरुष को कहीं भी फिर जन्म नहीं लेना पडता है। श्रीहरि को अपने बुद्धि द्वारा अच्छे तरह से समझ कर “हरि” इस दो अक्षर के मन्त्र का उच्चारण करो।

(विशेष–व्याख्या श्लोक–संख्या ६८–६९): भगवान् के नाम–स्मरण नाम–संकीर्तन से निश्चित–रूप से मुक्त हो जाता है। उस जीव का फिर जन्म नहीं होगा। अन्य देवताओं की उपासना–

अर्चना से वह पुरुष स्वर्ग-सुख को प्राप्त कर सकता हैं, परन्तु स्वर्ग-सुख अनित्य है। जब तक पुण्य होता है तब तक पुरुष स्वर्ग में आनंद प्राप्त करता हैं। पुण्य समाप्त होने के बाद वह मनुष्य फिर इसी भूमि पर जन्म लेकर सब दुःखों का भागी होता है। अतः अन्य-देवताओं की उपासना से शाश्वत सुख नहीं मिलेगा। केवल विष्णु-हरि-वासुदेव इत्यादि भगवन्नाम-कीर्तन से और भगवान् श्रीकृष्ण की उपासना से ही वह पुरुष वैकुण्ठ में नित्य-सुख प्राप्त कर सकता है। अतः कहा गया है कि स्वर्गसुख कहां? मुक्ति-साधन वासुदेव-मन्त्र कहां? दोनों में तुलना नहीं हो सकती है।

हे जिह्वे मम निस्नेहे हरि किं नानुभाषसे।
हरि वदस्व कल्याणि संसारोदधिनौर्हरिः॥७०॥

अन्वयः निःस्नेहे (प्रेमरहित) **हे मम जिह्वे** (हे मेरी जीभ) **किम्** (क्यों) **हरिं न अनुभाषसे** (हरि-कीर्तन कर नहीं रहीं हो?) **हरिः** (श्रीहरि) **संसारोदधिनौः** (संसार-सागर के लिये नौका जैसा हैं।) **कल्याणी** (मङ्गल-रूपवालि) **हरिं वदस्व** (हरिनाम कीर्तन करो।)

अनुवादः हे मेरी प्रेमरहित जीभ! क्यों हरि-कीर्तन कर नहीं रहीं हो? श्रीहरि संसार-सागर के लिये नौका जैसे हैं। मङ्गल-रूपवालि जीभ! हरिनाम कीर्तन करो।

असारे खलु संसारे सारात्सारतरो हरिः।
पुण्यहीना न विन्दन्ति सारङ्गाश्च यथा जलम्॥७१॥

अन्वयः असारे (सार-विहीन) **संसारे** (इस संसार में) **हरिः** (केवल श्रीहरि) **सारात् सारतरः खलुः** (श्रेष्ठ-ब्रह्मादि देवताओं से भी श्रेष्ठ हैं।) **सारङ्गाः** (चातक-पक्षी) **जलं** (पानी को) **यथा न विन्दन्ति** (जिस प्रकार प्राप्त नहीं करते हैं उसी प्रकार) **पुण्यहीनाः** (पापी लोग) **न विन्दन्ति** (भगवान् कृष्ण को प्राप्त नहीं करेंगे।)

अनुवादः सार-विहीन इस संसार में केवल श्रीहरि ही श्रेष्ठ-ब्रह्मादि देवताओं से भी श्रेष्ठ हैं। जिस प्रकार चातक-पक्षी पानी

को प्राप्त नहीं करते हैं, उसी प्रकार पापी लोग भगवान् कृष्ण को प्राप्त नहीं करेंगे।

कुरुक्षेत्रेण किं तस्य किं काश्या पुष्करेण किम्।
जिह्वाग्रे वर्तते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम्॥७२॥

अन्वयः यस्य (जिस पुरुष के) **जिह्वाग्रे** (जीभ के अग्र में) **हरिः इति अक्षर–द्वयं** ("हरि" इस प्रकार के दो अक्षर विराजमान हैं) **तस्य** (उस पुरुष को) **कुरुक्षेत्रण किम्** (कुरुक्षेत्र से क्या प्रयोजन है?) **काश्या किं** (काशी क्षेत्र से क्या प्रयोजन है?) **पुष्करेण किं** (पुष्कर–क्षेत्र से क्या प्रयोजन है?

अनुवादः जिस पुरुष के जीभ के अग्र में "हरि" इस प्रकार के दो अक्षर विराजमान हैं, उस पुरुष को कुरुक्षेत्र से क्या प्रयोजन है? काशी–क्षेत्र से क्या प्रयोजन है? पुष्कर–क्षेत्र से क्या प्रयोजन है?

(विशेष–व्याख्या श्लोक–संख्या ७०–७२): जो पुरुष सर्वदा "हरि हरि" इस प्रकार से हरिनाम–कीर्तन करता रहता है, उस पुरुष को सारे तीर्थ–क्षेत्रों से कोई प्रयोजन नहीं है। कुरुक्षेत्र, काशी, पुष्कर इत्यादि क्षेत्रों से भी उत्तम हरिनाम उस पुरुष को सकल पुरुषार्थ प्रदान करता हैं। परन्तु कलियुग अत्यन्त घोर होने के कारण कलियुग में लोग श्रीहरिनाम के महत्त्व को समझ नहीं पाते हैं। इस संसार में श्रीहरि के बिना कोई सारभूत पदार्थ नहीं है। अतः ऋषि जी अपनी जीभ को संबोधित कर पूछ रहे हैं कि "हे जीभ! तुम हरिनामस्मरण नहीं कर रही हो। तुम भक्तिरहित हो। संसार–सागर को पार करने हेतु आयी हुई नौका स्वयं श्रीहरि हैं। अतः श्रीहरि का नाम–स्मरण कर के तुम भी मङ्गलमयी बनो।"

ब्रह्माः–

असारे खलु संसारे सारमेकं निरूपितम्।
समस्तलोकनाथस्य सारमाराधनं हरेः॥७३॥

अन्वयः असारे (सुख–रहित) **संसारे** (इस संसार में) **एकं खलु** (एक ही) **सारं** (सार–तत्त्व निरूपित हुआ है।) **समस्त–लोक–नाथस्य** (सकल लोकों के संरक्षक) **हरेः** (श्रीहरि की) **आराधनं** (उपासना) [एक ही] **सारं** (सारतत्त्व है।)

अनुवादः सुखरहित इस संसार में एक ही सारतत्त्व निरूपित हुआ है। सकल लोकों के संरक्षक श्रीहरि की उपासना एक ही सारतत्त्व है।

सा जिह्वा या हरिं स्तौति तच्चित्तं यत्तदर्पणम्।
तावेव केवलौ श्लाघ्यो यौ तत्पूजाकरौ करौ॥७४॥

अन्वयः या (जो जीभ) **हरिं** (श्रीहरि की) **स्तौति** (स्तुति करती है) **सा जिह्वा** (वही असली जीभ है।) **यत्** (जो मन) **तदर्पणम्** (श्रीहरि को अर्पित है) **तत् चित्तम्** (वही असली मन है।) **तत्पूजाकरौ** (श्रीहरि की पूजा करने वाले) **यौ** (जो) **करौ** (हाथ है,) **कैवलौ तौ एव श्लाघ्यौ** (केवल वही हाथ सराहनीय हैं।)

अनुवादः जो जीभ श्रीहरि की स्तुति करती है, वही असली जीभ है। जो मन श्रीहरि को अर्पित है, वही असली मन है। श्रीहरि की पूजा करने वाले जो हाथ है, केवल वही हाथ सराहनीय हैं।

यस्तु विष्णुपरो नित्यं दृढभक्तिर्जितेन्द्रियः।
स्वगृहेऽपि वसन् याति तद्विष्णोः परमं पदम्॥७५॥

अन्वयः यः तु (जो पुरुष) **नित्यं** (प्रतिदिन) **दृढभक्तिः** (अत्यन्त अचल भक्ति–संपन्न हो कर) **जितेन्द्रियः** (इन्द्रियों को अपने वश में रखता है) [तथा] **विष्णुपरः** (अपने को विष्णु का दास मानता है, वह पुरुष) **स्वगृहे** (अपने गृह में) **वसन्** (वास करने पर भी) [अर्थात् किसी भी तीर्थ–क्षेत्र की यात्रा न करने पर भी] **विष्णोः** (श्रीहरि का) **तत् परमं पदं** (वह प्रसिद्ध धाम) [अर्थात् वैकुण्ठ को] **याति** (प्राप्त करता है।)

अनुवादः जो पुरुष प्रतिदिन अत्यन्त अचल भक्ति-संपन्न हो कर इन्द्रियों को अपने वश में रखता है तथा अपने को विष्णु का दास मानता है, वह पुरुष अपने गृह में वास करने पर भी अर्थात् किसी भी तीर्थ-क्षेत्र की यात्रा न करने पर भी श्रीहरि का वह प्रसिद्ध धाम अर्थात् वैकुण्ठ को प्राप्त करता है।

(विशेष-व्याख्या श्लोक-संख्या ७३-७५) पूर्व में नाम-संकीर्तन की महत्ता को प्रतिपादित किया गया। अगले श्लोकों में श्रीहरि की आराधना के बारे में विस्तृत रूप में वर्णन किया गया है। इस संसार के सारे पदार्थ व्यर्थ ही हैं। सब दुःखमय हैं, सब क्षणिक हैं, सब अशाश्वत हैं। अतः इहलोक में सारे वस्तुओं से श्रेष्ठ श्रीहरि की सेवा एकमात्र सार-तत्त्व है। श्रीहरि की आराधना करने पर ही मनुष्य असली कर्त्तव्य निभाता है। जिह्वा का मुख्य कर्त्तव्य श्रीहरि का स्तोत्र गाना अर्थात् उनकी स्तुति करना है। श्रीहरि का ध्यान करना ही मन का असली कर्त्तव्य है। श्रीहरि-पूजा करना ही दोनों हातों का मुख्य कर्त्तव्य है। जो मन-जिह्वा-हाथ यह काम नहीं करते है वे सब इन्द्रिय व्यर्थ हैं। अतः सर्वदा अपने सारे इन्द्रियों से भगवान् की आराधना करना चाहिए। ऐसी नित्य-आराधना करने पर उस मनुष्य को कहीं तीर्थक्षेत्र की यात्रा करने की आवश्यकता नहीं होगी।

शंकरः-

साधु साधु महाभाग साधु दानवनाशन।
यन्मां पृच्छसि धर्मज्ञ केशवाराधनं प्रति॥७६॥

अन्वयः धर्मज्ञ (धर्म के ज्ञानी) **दानवनाशन** (दानवों के विनाशक) **महाभाग** (भाग्यवान् स्कन्द!) **मां प्रति** (मेरे से) **केशवाराधनं** (श्रीहरि की आराधना के बारे में) **पृच्छसि** (पूछ रहे हों)।) **साधु-साधु** (तुमने बहुत अच्छा विषय लिया है।)

अनुवादः धर्म के ज्ञानी, दानवों के विनाशक, भाग्यवान् स्कन्द! मेरे से श्रीहरि की आराधना के बारे में पूछ रहे हों। तुमने बहुत अच्छा विषय लिया है।

निमिषं निमिषार्धं वा मुहूर्तमपि भार्गव।
नादग्धाशेषपापानां भक्तिर्भवति केशवे॥७७॥

अन्वयः भार्गव (हे भार्गव!) **अदग्धाशेष-पापानां** (अर्चन एवं पूजा से सारे पापों का नाश न होने पर उन लोगों को) **निमिषं** (एक क्षण) **निमिषार्धं वा** (अर्धक्षण तक भी) **मुहूर्तम् अपि** (एक मुहूर्त काल तक भी) **केशवे** (श्रीहरि में) **भक्तिः** (भक्ति) **न भवति** (नहीं होती है।)

अनुवादः हे भार्गव! अर्चना एवं पूजा से सारे पापों का नाश न होने पर उन लोगों को एक क्षण, अर्ध-क्षण तक या एक मुहूर्त्त काल तक भी श्रीहरि में भक्ति नहीं होती है।

(विशेष-व्याख्या श्लोक-संख्या ७६-७७): भगवान् श्रीहरि के विषय में भक्ति उत्पन्न होना साधारण विषय नहीं है। लाखों-करोडों लोगों में एक-दो असली भक्त होते हैं, जो पूर्णरूप से भगवान् के प्रति समर्पित होते हैं। अन्य लोग साधारण रूप से भक्ति करते हैं। परन्तु वहाँ भी पूर्व-जन्मों के सुकृती के कारण ही उन को भक्ति उत्पन्न हुई है। जन्म-जन्मान्तर में भी यदि भगवान् की अर्चना-पूजा कि है, तभी इस जन्म में उसी पुण्य-कर्म के कारण भक्ति उत्पन्न होती है। परन्तु पूर्णरूप से भक्ति नहीं होती है। एक क्षण, आधा-क्षण या एक मुहूर्त तक भक्ति होती है, तो वह बहुत बड़ी बात होती हैं। अतः शंकर जी अपने पुत्र स्कन्दजी (कार्त्तिकेय) को बोल रहे हैं कि—भगवान् श्रीहरि की आराधना के बारे में पूछना बहुत अच्छा काम है। क्यों कि भगवान् में भक्ति हुए बिना उस विषय में पूछा ही नहीं जा सकता। भक्ति उत्पन्न होना बहुत बड़े भाग्य का फल है।

किं तेन मनसा कार्यं यन्न तिष्ठति केशवे।
मनो मुक्तिफलावाप्तिकारणं सुप्रयोजितम्॥७८॥

अन्वयः सुप्रयोजितं (सही दिशा में उपयोग किया गया) **मनः** (मन) **मुक्ति-फलावाप्तिकारणं** (मुक्तिरूप फल की प्राप्ति का कारण बनता है।) **यत्** (जो मन) **केशवे** (श्रीहरि के विषय में)

न तिष्ठति (स्थिर नहीं होता है) **तेन मनसा** (उस मन से) **किं कार्यम्** (क्या प्रयोजन हैं?) [अर्थात् कुछ भी प्रयोजन नहीं है]।

अनुवादः सही दिशा में उपयोग किया गया मन मुक्तिरूप फल की प्राप्ति का कारण बनता है। जो मन श्रीहरि के विषय में स्थिर नहीं होता है, उस मन से क्या प्रयोजन हैं? कुछ भी प्रयोजन नहीं है।

रोगो नाम न सा जिह्वा यया न स्तूयते हरिः।
गर्तौ नाम न तौ कर्णौ याभ्यां तत्कर्म न श्रुतम्॥७९॥

अन्वयः यया (जिस जीभ के द्वारा) **हरिः** (श्रीहरि की) **न स्तूयते** (स्तुति नहीं की जाती है,) **सा** (वह जीभ) **जिह्वा न** (जीभ नहीं हैं।) [वह जीभ] **रोगः नाम** (रोग ही है।) **याभ्यां** (जिन कानों से) **तत्कर्म** (उस श्रीहरि की लीला को) **न श्रुतं** (नहीं सुना हों) **तौ** (वे कान) **न कर्णौ** (कान नहीं हैं।) **वे गर्तौ नाम** (केवल छिद्र हैं।)

अनुवादः जिस जीभ के द्वारा श्रीहरि की स्तुति नहीं की जाती है, वह जीभ तो जीभ ही नहीं हैं। वह जीभ रोग ही है। जिन कानों ने उस श्रीहरि की लीला नहीं सुनी हैं, वे कान तो कान ही नहीं हैं। **वे** केवल छिद्र हैं।

नूनं तत्कण्ठशालूकमथवाऽप्युपजिह्विका।
रोगो नाम न सा जिह्वा या न वक्ति हरेर्गुणान्॥८०॥

अन्वयः या (जो जीभ) **हरेर्गुणान्** (श्रीहरि के गुणों का) **न वक्ति** (स्तोत्र उच्चारण नहीं करती है वह जीभ) नूनं (निश्चित–रूप से) **तत् कण्ठ–शालूकं** (कण्ठ में रहने वाले कन्द [अर्बुद, गांठ] के समान होगी,) **अथवा उपजिह्विका अपि** (अथवा वह जीभ उपजिह्विका रोग के समान होगी,) [अथवा] **रोगो नाम** (गलरोग ही है।) **सा** (वह जीभ) **जिह्वा न** (जीभ नहीं है।)

अनुवादः जो जीभ श्रीहरि के गुणों की स्तुति नहीं करती है, वह जीभ निश्चितरूप से कण्ठ में रहने वाले कन्द (अर्बुद,

गांठ) के समान है, अथवा वह जीभ उपजिह्विका रोग के समान है, अथवा गल-रोग ही है। वह जीभ जीभ नहीं है।

(विशेष-व्याख्या, श्लोक-संख्या ७८-८०): मनुष्यों के बन्धन या मुक्ति दोनों के लिये मन ही साधन है, अतः उस मन को भगवान् के विषय में अनुरक्त कराना अत्यन्त आवश्यक है। मन भगवान् के विषय में एकाग्र होने पर मुक्ति सर्वथा प्राप्त होती है। यदि मन भगवान् के विषय में संलग्न नहीं हैं, तब उस मन से कोई प्रयोजन नहीं है। उसी तरह वाणी जो सारे विषयों के बारे में बात करती रहती है, उस का उपयोग श्रीहरि के गुण-वर्णन में तथा हरिनाम-कीर्तन में होना चाहिए। वाणी यदि भगवन्नाम-कीर्तन नहीं करती हैं, तब वह वास्तविक वाणी (जीभ) नहीं होगी, किन्तु कण्ठ में रहनेवाले एक सामान्य कन्द (गांठ)) के समान होगी अथवा उपजिह्विका रोग के समान होगी। अथवा गल-रोग के समान होगी। वह जिह्वा नहीं होगी।

जो कान भगवान् के गुण सुनते नहीं है, वह कान कान नहीं है, किन्तु केवल खाली जगह है। वह कान सार्थक नहीं हैं।

उपजिह्विका एक रोग है जिससे जिह्वा के नीचे के भाग में स्थूलता आती है। रोग=गल-रोग है, जिस से कण्ठ में स्थूलता होती है।

भारभूतैः करैः कार्यं किं तस्य नृपशोर्द्विजाः।
यैर्हि न क्रियते विष्णोर्गृहसंमार्जनादिकम्॥८१॥

अन्वयः यैः (जो हाथों के द्वारा) **विष्णोः गृह-संमार्जनादिकं** (हरि-मन्दिर की सफाई इत्यादि) **न क्रियते** (नहीं किया जाती है) **तस्य नृपशोः** (उस नररूपी जानवर के) **भारभूतैः** (केवल वजन बोझ देनेवाले) **करैः** (हाथों से) **किं कार्यं** (क्या कार्य है।)

अनुवादः जो हाथों के द्वारा हरि-मन्दिर की सफाई इत्यादि नहीं की जाती है, उस नररूपी जानवर के केवल वजन (वृथा बोझ) देने वाले हाथों से क्या कार्य है।

चरणौ तौ तु सफलौ केशवालयगामिनौ।

ते च नेत्रे महाभागे याभ्यां संदृश्यते हरिः॥८२॥

अन्वयः केशवालजयगामिनौ (हरिमन्दिर तक जाने वाले) **तौ चरणौ तु** (वह पाद ही) **सफलौ** (सफल हैं।) **याभ्यां** (जिन के द्वारा) **हरिः** (श्रीहरि का) **संदृश्यते** (दर्शन किया जाता है,) **ते च नेत्रे** (वह नेत्र ही) **महाभागे** (महाभाग्यशाली हैं।)

अनुवादः हरि के मन्दिर तक जाने वाले वह पाद ही सफल हैं। जिन के द्वारा श्रीहरि का दर्शन किया जाता है, वह नेत्र ही महाभाग्यशाली हैं।

किं तस्य चरणैः कार्यं वृथासंचरणैर्द्विजाः।
यैर्हि न व्रजते जन्तुः केशवालयदर्शने॥८३॥

अन्वयः द्विजाः (हे ब्राह्मणों!) **जन्तुः** (पुरुष) **यैः** (जिन पादों या पैरों से) **केशवालय-दर्शने** (हरिमन्दिर का दर्शन हेतु) **न व्रजते** (नहीं जाता है) **तस्य** (उस पुरुष का) **वृथासंचरणैः** (व्यर्थ संचार करने वाले) **चरणैः** (पादों या पैरों से) **किं कार्यं** (क्या कार्य है?)

अनुवादः हे ब्राह्मणों! यदि कोई पुरुष अपने पैरों से चलकर श्रीविग्रह के दर्शन हेतु भगवान् के मंदिर में नहीं जाता है, तो उस पुरुष को व्यर्थ संचार करने वाले अपने पैरों से क्या प्रयोजन है?

(विशेष-व्याख्या श्लोक-संख्या ८१-८२): हमारे सभी अवयव तो भगवत्कार्य करने से ही सफल होंगे। हमें हमारे हाथों से प्रतिदिन श्रीहरि-मन्दिर की सफाई करना चाहिए। कार्य के बिना हमारे हाथ सर्वथा व्यर्थ हो जायेंगे। हमारे पादों का कार्य हैं हमें हरिमन्दिर ले जाना। उस के बिना व्यर्थ संचरण करनेवाले उन पैरों से कोई प्रयोजन नहीं है। हमारे नेत्रों का उपयोग हरि के श्रीविग्रह का दर्शन करने के लिए होना चाहिए। भगवद्दर्शन के बिना टेलिविजन या सिनेमा देखने हेतु आँखों का उपयोग करने से आंखें व्यर्थ ही साबित होंगी। अतः इन अवयवोंका सदुपयोग करना चाहिए, जिस से हमारा जीवन सार्थक होगा।

वेदवेदाङ्गविदुषां मुनीनां भावितात्मनाम्।
ऋषित्वमपि धर्मज्ञ विज्ञेयं तत्प्रसादजम्॥८४॥

अन्वयः धर्मज्ञ (धर्म का ज्ञानी) [हे ऋषे!] **वेद-वेदाङ्ग-विदुषां** (वेद और वेदाङ्गों के ज्ञाता) **भावितात्मनां** (भगवान् के ध्यान करनेवाले) **मुनीनां** (मुनियों को) **ऋषित्वम् अपि** (जो ऋषि-पदवी प्राप्त हुई है वह भी) **तत्प्रसादजं** (भगवान् के प्रसाद से ही प्राप्त हुई है) **विज्ञेयं** (ऐसे समझना चाहिए।)

अनुवादः हे धर्म के ज्ञानी ऋषि! भगवान् का ध्यान करनेवाले और वेद और वेदाङ्गों के ज्ञाता मुनियों को जो ऋषि-पदवी प्राप्त हुई है, वह भी भगवान् के प्रसाद से ही प्राप्त हुई है, ऐसे समझना चाहिए।

विचित्ररत्नपर्यङ्के महाभोगे च भोगिनः।
रमन्ते नाकिरामाभिः केशवस्मरणात् फलम्॥८५॥

अन्वयः [भगवान् के भक्त] **भोगिनः** (नानाविध सुख कर अनुभव करते हुए) **महाभोगे** (अतीव सुखसाधन) **विचित्र-रत्न-पर्यङ्के** (नाना प्रकार के रत्नों से निर्मित पलंग में) **नाकिरामाभिः** (स्वर्ग के ऊर्वशी इत्यादि कामिनियों के साथ) **रमन्ते** (सुखानुभव प्राप्त करते हैं।) [यह सुखानुभव तो] **केशवस्मरणात् फलं** (निरन्तर हरिनाम-स्मरण का फल ही है।)

अनुवादः भगवान् के भक्त नानाविध सुखकर अनुभव करते हुए महाभोग, अतीव सुखसाधन, नाना प्रकार के रत्नों से निर्मित पलंग पर स्वर्ग के ऊर्वशी इत्यादि कामिनियों के साथ सुखानुभव प्राप्त करते हैं। यह सुखानुभव तो निरन्तर हरि-नाम-स्मरण का फल ही है।

अश्वमेधसहस्त्राणां यः सहस्त्रं समाचरेत्।
नासौ तत्फलमाप्नोति तद्भक्तैर्यदवाप्यते॥८६॥

अन्वयः यः (जो पुरुष) **अश्वमेध-सहस्त्राणां** (हजारों लाखों अश्वमेध-यागों का) **समाचरेत्** (अनुष्ठान करता है) **असौ** (वह पुरुष भी) **तद्भक्तैः** (हरि-भक्तों को) **तत् फलं आप्यते** (जो फल

प्राप्त होता है,) **तत्फलं** (उस फल को) **न प्राप्नोति** (प्राप्त नहीं करता हैं।)

अनुवादः जो पुरुष हजारों-लाखों अश्वमेध-यागों का अनुष्ठान करता है, वह पुरुष भी हरि-भक्तों को जो फल प्राप्त होता है, उस फल को प्राप्त नहीं करता हैं।

(विशेष-व्याख्या श्लोक-संख्या ८४-८६): श्रीहरि सेवा-आराधना का फल अनेक प्रकार का होता है। हरि-भक्त जो कुछ भी पदार्थ को चाहते हैं, वह पदार्थ उन को प्राप्त होता है। कुछ ज्ञानी-लोग निरन्तर हरि-भक्ति से हरिनाम-कीर्तन कर श्रीहरि के प्रसाद से ऋषि बन जाते हैं। ज्ञान का संपादन करना ही उन का मुख्य उद्देश्य होता है। परन्तु अन्य मध्यम-स्तर के लोग यदि स्वर्गसुख चाहते हैं, तो वे स्वर्गसुख को प्राप्त करते हैं। स्वर्ग तो हरिस्मरण का मुख्य प्रयोजन नहीं है, किन्तु मोक्ष-प्राप्ति ही है। तथापि हरिस्मरण से यह स्वर्गवास इत्यादि अल्प-फल भी इच्छा के अनुरूप प्राप्त होता ही है। अनेक सहस्र अश्वमेध-यज्ञों से जो फल मिलता है, उस से भी अधिक फल हरिस्मरण से प्राप्त होता है।

अगले श्लोकों में श्लोक संख्या ९४ तक हरि-नमस्कार और परिक्रमा का फल का निरूपण कर रहे हैं।

रे रे मनुष्याः पुरुषोत्तमस्य
करौ न कस्मान्मुकुलीकुरुध्वम्।
क्रियाजुषां को भवतां प्रयासः
फलं हि यत्तत्पदमच्युतस्य॥८७॥

अन्वयः रे रे मनुष्याः (अरे नीच-मनुष्यों!) **पुरुषोत्तमस्य** (श्रीहरि के सामने) **कस्मात्** (क्यों) **करौ न मुकुलीकुरुध्वं** (हाथ नहीं जोड़ रहे हैं?) **क्रियाजुषां** (नानाविध कार्य करने में सक्षम) **भवतां** (आप लोगों को हाथ जोड़ने में) **कः प्रयासः** (क्या श्रम होता है?) **यत्** (जो) **अच्युतस्य पदं** (श्री हरि का स्थान है) **तत्** (वही) **फलं** (हाथ जोड़ने का फल है।)

अनुवादः अरे नीच-मनुष्यों! श्रीहरि के सामने क्यों हाथ नहीं जोड़ रहे हो? नानाविध कार्य करने में सक्षम आप लोगों को हाथ जोड़ने में क्या श्रम होता है? जो श्रीहरि का स्थान है, वही हाथ जोड़ने का फल है।

विष्णोर्विमानं यः कुर्यात्सकृद्भक्त्या प्रदक्षिणम्।
अश्वमेघसहस्रस्य फलमाप्नोति मानवः॥८८॥

अन्वयः यः (जो) **मानवः** (पुरुष) **सकृत्** (एकबार) **भक्त्या** (भक्ति से) **विष्णोर्विमानं** (श्रीहरि मन्दिर के विमान की) **प्रदक्षिणं कुर्यात्** (परिक्रमा करता है,) [वह पुरुष] **अश्वमेध-सहस्रस्य** (हजारों अश्वमेध-यज्ञों के) **फलं** (फल को) **आप्नोति** (प्राप्त करता है।)

अनुवादः जो पुरुष एक बार भक्ति से श्रीहरि-मन्दिर के विमान की परिक्रमा करता है, वह पुरुष हजारों अश्वमेध-यज्ञों के फल को प्राप्त करता है।

प्रदक्षिणं तु यः कुर्याद्धरि भक्त्या समन्वितः।
हंसयुक्तविमानेन विष्णुलोकं स गच्छति॥८९॥

अन्वयः यः (जो पुरुष) **भक्त्या** (भक्ति से) **समन्वितः** (युक्त होकर) **हरिं** (हरि की) **प्रदक्षिणं कुर्यात् तु** (परिक्रमा करता है) **सः** (वह पुरुष) **हंस-युक्त-विमानेन** (हंस-पक्षियों के विमान से) **विष्णुलोकं** (विष्णु-लोक वैकुण्ठ को) **गच्छति** (प्राप्त करता है।)

अनुवादः जो पुरुष भक्ति से युक्त होकर हरि की परिक्रमा करता है, वह पुरुष हंस-पक्षियों के विमान से विष्णु-लोक अर्थात् वैकुण्ठ को प्राप्त करता है।

(विशेष-व्याख्या श्लोक-संख्या ८७-८९): हरि-आराधना का मुख्य अङ्ग हैं परिक्रमा तथा नमस्कार। अतः श्लोक संख्या ९४ तक के श्लोंकों में परिक्रमा-नमस्कार इन दोनों की महत्ता को प्रतिपादित कर रहे हैं। शंकर जी मनुष्यों से पूछ रहे हैं कि अरे नीचों! श्रीहरि का नमस्कार करने में आप को क्या कष्ट होता है? आप लोग प्रतिदिन अनेक प्रकार का कार्य करते रहते हैं। दोनों हाथों को जोड़ना, जिस से दोनों हाथ कमल-मुकुल जैसे

प्रतीत होंगे। क्या यह बडा काम है? श्रीहरि को प्रतिदिन नमस्कार करना चाहिए। एक भी बार जो पुरुष विष्णु-मन्दिर के गर्भगृह की परिक्रमा करता है, वह पुरुष हजारों अश्वमेध-यज्ञों का फल प्राप्त करता है। वह पुरुष हंस-पक्षियों से चलने वाले विमान में बैठकर वैकुण्ठ-लोक में चला जाता है। अतः प्रतिदिन हरिमन्दिर की परिक्रमा करना अत्यन्त आवश्यक है।

तीर्थकोटिससहस्त्राणि व्रतकोटिशतानि च।
नारायणप्रणामस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥९०॥

अन्वयः तीर्थ-कोटि-सहस्त्राणि (अनेक करोडों हजारों तीर्थ) **व्रत-कोटि-शतानि च** (करोडों, सैकडों व्रत--यह सब मिलकर भी) **नारायण-प्रणामस्य** (श्रीहरि का प्रणाम का) **षोडशीं कलां** (सोलहवें भाग के महत्त्व को भी न) **अर्हन्ति** (प्राप्त नहीं करते हैं।)

अनुवाद: अनेक करोडों, हजारों तीर्थ और करोडों, सैकडों व्रत--यह सब मिलकर भी श्रीहरि के प्रणाम के सोलहवें भाग के महत्त्व को भी प्राप्त नहीं करते हैं।

उरसा शिरसा दृष्ट्या मनसा वचसा तथा।
पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यां प्राणामोऽष्टाङ्ग ईरितः॥९१॥

अन्वयः उरसा (छाती से), **शिरसा** (सिर से), **दृष्ट्या** (आँखों से), **मनसा** (मन से), **तथा** (उसी प्रकार) **वचसा** (वाणी से), **पद्भ्यां** (दोनों हाथों से), **जानुभ्यां** (घुटनों से), इस प्रकार से **प्रणामः** (नमस्कार) **अष्टाङ्गः** (आठ अंग-वाला) **ईरितः (**कहा गया है)।

अनुवाद: छाती से, सिर से, आँखों से, मन से, उसी प्रकार वाणी से, दोनों हाथों से, घुटनों से, इस प्रकार किया गया नमस्कार आठ अंगवाला कहा गया है।

शाठ्येनापि नमस्कारं कुर्वतः शार्ङ्गपाणये।
शतजन्मार्जितं पापं नश्यत्येव न संशयः॥९२॥

अन्वयः शार्ङ्गपाणये (शार्ङ्ग-नामक धनुष को धारण करनेवाले श्रीहरि को) **शाठ्ये अपि** (कुटिल रीति से भी) **नमस्कारं**

कुर्वतः (नमस्कार करने वाले पुरुष का) **शत-जन्मार्जितं** (सौ जन्मों में किया गया) **पापं** (पापराशि भी) **नश्यति एव** (नष्ट हो ही जाती है।) **न संशयः** (इस में कोई संशय नहीं है।)

अन्वयः शार्ङ्ग-नामक धनुष को धारण करनेवाले श्रीहरि को कुटिल रीति से भी नमस्कार करने वाले पुरुष की सौ जन्मों में कि गई पाप-राशि भी नष्ट हो ही जाती है। इस में कोई संशय नहीं है।

विशेष-व्याख्याः केवल हाथ जोड़कर नमस्कार करना सामान्य है। परन्तु श्रीहरि के सामने धरती पर दण्डवत् होकर आठ अवयवों से पूर्ण प्रणाम करने का फल तो अलग ही है। छाती, सिर, आंखें, मन, वाणी, हाथ, पैर तथा घुटनें इन आठों अंगो को धरती पर रखकर जो नमस्कार किया जाता है, वह साष्टांग प्रणाम है। इस प्रकार से साष्टांग प्रणाम करने पर जो पुण्य प्राप्त होता है, उस पुण्य का एकदेश भाग हजारों करोडों तीर्थक्षेत्रों से और अनेक करोड व्रतों से भी प्राप्त नहीं होगा। जो पुरुष भक्ति के बिना दुर्बुद्धि से, किसी बहाने से भी श्रीहरि को दण्डवत् प्रणाम करता है, तो उस पुरुष के सैकडों जन्मों का पाप नष्ट हो जाता है।

संसारार्णवमग्नानां नराणां पापकर्मणाम्।
नान्योद्धर्ता जगन्नाथं मुक्त्वा नारायणं परम्॥९३॥

अन्वयः संसारर्णवमग्नानां (संसार सागर में डूबे हुए) **पाप-कर्मणां** (पाप-कर्म करनेवाले) **नराणां** (इन हीन मनुष्यों के) **उद्धर्ता** (उद्धार करनेवाला पुरुष) **परं** (अत्यन्त श्रेष्ठ) **नारायणं** (श्रीहरि को) **मुक्त्वा** (छोड़कर) **न अन्यः** (कोई नहीं है।)

अनुवादः अत्यन्त श्रेष्ठ श्रीहरि को छोड़कर अन्य कोई भी पुरुष संसार-सागर में डूबे हुए पाप-कर्म करनेवाले इन हीन मनुष्यों का उद्धार नहीं कर सकता हैं।

रेणुकुण्ठितगात्रस्य कण यावन्ति भारत।
तावद्वर्षसहस्राणि विष्णुलोके महीयते॥९४॥

अन्वयः भारत (हे युधिष्ठिर!) **रेणु–कुण्ठित–गात्रस्य** (प्रणाम करते समय भूमि के धूलि से शरीर रंजित होता है। उस शरीर का) **कणाः** (धूलि–कण) **यावन्ति** (जितने हज़ार हैं) **तावद्वर्षसहस्राणि** (उतने हज़ार सालों तक) **विष्णुलोके** (वैष्णव जनता में) **महीयते** (पूजित किया जाता है।)

अनुवादः हे युधिष्ठिर! प्रणाम करते समय भूमि के धूलि से शरीर रंजित होता है। उस शरीर के धूलि–कण जितने हजार हैं, उतने हज़ार सालों तक वैष्णव जनता में पूजित किया जाता है।

(विशेष–व्याख्या श्लोक–संख्या ९३–९४): इस संसार में पड़े हुए हम लोगों की रक्षा करनेवाले उद्धारक पुरुष श्रीहरि ही हैं। श्रीहरि को छोड़कर दूसरा कोई पुरुष हमारी रक्षा नहीं कर सकता है। अतः विष्णु को प्रसन्न करना अत्यन्त आवश्यक है। उस श्रीहरि को प्रतिदिन प्रणाम करना चाहिए। प्रणाम करते समय हमारा शरीर हरिमन्दिर की मिट्टी का धूलि–कणों से लिप्त होना चाहिए। उसी प्रकार प्रणाम करना चाहिए। उस पुरुष की पूजा होती रहेगी।

पावनं विष्णुनैवेद्यं सुभोज्यमृषिभिः स्मृतम्।
अन्यदेवस्य नैवेद्यं भुत्तवा चान्द्रायणं चरेत्॥९५॥

अन्वयः विष्णु–नैवेद्यां (भगवान् श्रीहरि को अर्पित भोग) **पावनं** (अत्यन्त पवित्र है।) **अतः** (प्रतिदिन उस भोग को) **सुभोज्यं** (प्रसाद के रूप में खाना चाहिए। इस प्रकार) **ऋषिभिः** (ऋषियों के द्वारा) **स्मृतं** (स्मृतियों में कहा गया है।) **अन्यदेवस्य (**रुद्र, इन्द्र इत्यादि दूसरी देवताओं का) **नैवेद्यां** (समर्पित भोग को) **भुक्त्वा** (भोजन करने पर प्रायश्चित्त–हेतु) **चान्द्रायणं वरेत्** (चान्द्रायण–व्रत का अनुष्ठान करना चाहिए।)

अनुवादः भगवान् श्रीहरि को अर्पित भोग अत्यन्त पवित्र है। प्रतिदिन उस भोग को प्रसाद के रूप में खाना चाहिए। इस प्रकार ऋषियों के द्वारा स्मृतियों में कहा गया है। रुद्र, इन्द्र इत्यादि दूसरी देवताओं को समर्पित भोग (नैवेद्य) को भोजन करने से प्रायश्चित्त–हेतु चान्द्रायण–व्रत का अनुष्ठान करना चाहिए।

कोट्यैन्दवसहस्रैस्तु मासोपोषणकोटिभिः।
यत्फलं लभ्यते पुम्भिर्विष्णोर्नैवेद्यभक्षणात्॥९६॥

अन्वयः कोट्यैन्दवसहस्रैः (हज़ारों-करोड़ों चान्द्रायण-व्रतों से तथा मासोपोषण) **कोटिभिः** (करोडों मास उपवासों से) **पुंभिः** (मनुष्यों को) **यत्फलं** (जो फल) **लभ्यते** (प्राप्त होता है वह फल) **विष्णोर्नैवेद्य-भक्षणात्** (विष्णु को निवेदित भोग को खाने से मिल जाता है।)

अनुवादः हज़ारों-करोड़ों चान्द्रायण-व्रतों से तथा करोडों-मास उपवासों से मनुष्यों को जो फल प्राप्त होता है, वह फल विष्णु को निवेदित भोग (अर्थात् प्रसाद) को खाने से मिल जाता है।)

विष्णोर्नैवेद्यशेषेण यो भुनक्ति दिने दिनो।
सिक्थे सिक्थे भवेत्पुण्यं चान्द्रायणशताधिकम्॥९७॥

अन्वयः विष्णोः (श्रीहरि का) **नैवेद्यशेषेण** (निवेदित अन्न को) **यः** (जो पुरुष) **दिने दिने** (प्रतिदिन) **भुनक्ति** (भोजन करता है उस पुरुष को) **सिक्थे सिक्थे** (हर ग्रास में भी) **चान्द्रायण-शताधिकं** (सैकडों चान्द्रायण व्रतों के फल से शत गुणा) **अधिकं पुण्यं** (पुण्यफल) **भवेत्** (प्राप्त होता है।)

(विशेष-व्याख्या श्लोक-संख्या ९५-९७): इन तीनों श्लोकों में हरि को निवेदित अन्नशेष भक्षण के फल का निरूपण है। सारे स्मृतिग्रन्थों में ऋषियों के द्वारा बताया गया है कि प्रतिदिन विष्णु को निवेदित अन्न ही खाना है। विष्णुनैवेद्य प्रतिदिन खाने से करोडों चान्द्रायणव्रत, मासोपवास इत्यादि से जो फल प्राप्त होता है उस से अधिक फल प्राप्त होता है। विष्णु-निवेदित अन्न का एक एक ग्रास के भक्षण से सैकडों चान्द्रायण व्रतों के फल से भी अधिक पुण्यफल प्राप्त होता है। अतः प्रतिदिन श्रीहरि को भोग लगाकर ही उसे खाना चाहिए। श्रीहरि को निवेदित अन्न-भक्षण का मुख्य सार यह है कि "सब परमात्मा के अधीन है। इन के द्वारा जो वस्तु दी जाती है, उस वस्तु का ही उपभोग

करना चाहिए।" श्रीहरि नैवेद्य के भक्षण से ही श्री हरि के द्वारा रची गयी इस माया से बच सकते हैं।

चान्द्रायण–व्रत में शुक्ल–पक्ष में पूर्णिमा तक प्रतिदिन एक एक ग्रास ज्यादा कर भोजन करते हैं। कृष्ण–पक्ष में अमावस्या तक प्रतिदिन एक एक ग्रास कम करते हैं। अमावस के दिन पूर्ण निराहार होते हैं।

मासोपवास में पूरे मास उपवास करते हैं।

विष्णु को छोड़कर दूसरे रुद्र इत्यादि देवताओं को समर्पित भोग को प्रसाद के रूप में नहीं खाना चाहिए। क्यों कि विष्णुभक्त होने पर भी इन देवताओं में कभी–कभी कलि का प्रभाव दिखाई देता है। अतः कदाचित् शंकर भी भगवान् से लड़ते है। असुरों को वर देते हैं। अतः ये देवताएं संपूर्णरूप से शुद्ध नहीं होती हैं। परन्तु हनुमान जी अत्यन्त शुद्ध विष्णुभक्त हैं। उन में कभी भी कलि का प्रभाव नहीं दिखाई देता है। बालाजी कभी भी भगवान् के विरुद्ध कार्य नहीं करते हैं। अतः हनुमान जी के भी प्रसाद को स्वीकार करते हैं। यह मध्वाचार्य जी का संप्रदाय है। मध्वाचार्य जी साक्षात् वहीं प्राणदेव के अवतार हैं। अतः मध्वाचार्य जी को निवेदित अन्न का ग्रहण संप्रदाय में करते हैं।

अगले श्लोकों में हरिपादोदक की महिमा का प्रतिपादन है।

त्रिरात्रफलदा नद्यो याः काश्चिदसमुद्रगाः।
समुद्रगाश्च पक्षस्य मासस्य सरिता पतिः॥९८॥
षण्मासफलदा गोदा वत्सरस्य तु जाह्नवी।
विष्णुपादोदकस्यैताः कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥९९॥

अन्वयः समुद्रगाः (समुद्र में साक्षात् प्रवाहित न होने वाली) **याः काश्चित्** (ये जो) **नद्यः** (नदियां है, वे नदियाँ) **त्रिरात्रफलदाः** (तीन दिन के उपवास से जो भी उत्पन्न होता है, इन नदियों में स्नान करने से उस फल को देती है।) **समुद्रगाः तु** (समुद्र में साक्षात् प्रवाहित होने वाली नर्मदा इत्यादि नदियाँ तो) **पक्षस्य फलदाः** (पन्द्रह दिन के उपवास के फल को देती है।) **सरितां**

(नदियों के) **पतिः** (भर्ता समुद्रराज तो) **मासस्य फलदाः** (एक मास के उपवास का फल देते हैं।) [लेकिन] **एताः** (ये नदियाँ) **विष्णुपादोदकस्य** (शालिग्राम शिला से निकला हुआ चरणामृत के) **षोडशीं** (सोलहवीं कलां भाग को भी न) **अर्हन्ति** (प्राप्त नहीं कर सकती है।)

अनुवादः समुद्र में साक्षात् प्रवाहित न होने वाली ये जो नदियां है, वे नदियाँ तीन दिन के उपवास से जो भी उत्पन्न होता है, इन नदियों में स्नान करने से उस फल को देती है। समुद्र में साक्षात् प्रवाहित होने वाली नर्मदा इत्यादि नदियाँ तो पन्द्रह दिन के उपवास के फल को देती है। नदियों के भर्ता समुद्रराज तो एक मास के उपवास का फल देते हैं। लेकिन ये नदियाँ शालिग्राम शिला से निकले हुआ चरणामृत के सोलहवे भाग को भी न प्राप्त नहीं कर सकती है।

विशेषार्थ—पूर्वश्लोक तक विष्णु निवेदित अन्न की महिमा को बताया है आगे से शालिग्रामदि विष्णुप्रतिमा से निकला हुआ चरणामृत का फल को विशिष्ट रीति से प्रतिपादित किया जा रहा है। तीन दिन के उपवास से जो फल होता है उस को देती है समुद्र तक प्रवाहित न होने वाली क्षुद्र नदियाँ क्यों कि नदियाँ तो समुद्र की भार्याएं हैं। अतः अपने पति को जो नदी साक्षात प्राप्त करती है उसको श्रेष्ठ माना है अतः समुद्र–गामिनी गङ्गा, सिन्धु, नर्मदा, गोदावरी, कावेरी इत्यादि नदियाँ अत्यन्त श्रेष्ठ हैं। बाकी नदियों को इतना उत्कृष्ट नहीं माना गया है। तथापि यमुना इत्यादि समुद्र में न जानेवाली नदियों में स्नान करने से तीन दिन के उपवास का फल प्राप्त होता है, नर्मदा कावेरी इत्यादि समुद्र–गामिनी नदियों में स्नान करने से तो एक महीना उपवास का फल प्राप्त होता है, गोदावरी स्नान करने से छह माह उपवास का फल होता हैं। सब नदियों से उत्कृष्ट जो गङ्गाजी है उस में स्नान करने से एक साल उपवास करने से उत्पन्न होनेवाला फल प्राप्त होगा। परन्तु विषय प्रतिमा से निकला हुआ हरिपादोदक (शालिग्राम

शिला तीर्थ) को पीने से जो फल होगा उस फल को सोलहवां अंश भी इन नदियों में स्नान करने से प्राप्त नहीं होगा। अतः इन सब नदी समुद्रों से हरिचरणामृत ही उत्कृष्ट है प्रतिदिन शालिग्राम इत्यादि विष्णुप्रतिमा को अभिषेक कर उस चरणामृत व पीने से गङ्गाजी इत्यादि नदियों में स्नान करने से भी अत्यधिक फल प्राप्त होता है। प्रतिदिन विष्णु पादोदक सेवन से बारह सालों के उपवास का फल प्राप्त होता है इस प्रकार स्कन्द पुराण में लिखा है।

गङ्गाप्रयागगयपुष्करनैमिषाणि
संसेवितानि बहुशः कुरुजाङ्गलानि।
कालेन तीर्थसलिलानि पुनन्ति पापं
पादोदकं भगतः प्रपुनाति सद्यः॥१००॥

अन्वयः गङ्गाप्रयागमयपुष्करनैमिषाणि (गङ्गा–नदी–प्रयाग क्षेत्र–गया, क्षेत्र–पुष्कर, तीर्थ–नैमिषारण्य क्षेत्र इत्यादि तीर्थ क्षेत्र तथा) **कुरुजाङ्गलानि** (कुरुक्षेत्र इत्यादि क्षेत्र भी) **बहुशः** (अनेक बार) **संसेवितानि** (सेवित किए गये हैं। किन्तु) **तीर्थसलिलानि** (इन क्षेत्रों में बहने वाली गङ्गा इत्यादियों के जलराशियां) **कालेन** (लम्बे समय तक सेवन करने पर ही) **पापं** (हमारे पापराशि को) **पुनन्ति** (नाश करते हैं। परन्तु) **भगवतः** (भगवान् श्रीकृष्ण का) **पादोदकं** (चरणामृत तो) **सद्यः** (तत्काल प्रभाव से) **प्रपुनाति** (पापराशि को नष्ट करता है।)

अनुवादः गङ्गा–नदी–प्रयाग क्षेत्र–गया, क्षेत्र–पुष्कर, तीर्थ–नैमिषारण्य क्षेत्र इत्यादि तीर्थक्षेत्र तथा कुरुक्षेत्र इत्यादि क्षेत्र भी अनेक बार सेवित किए गये हैं। किन्तु इन क्षेत्रों में बहने वाली गङ्गा इत्यादियों के जलराशियां लम्बे समय तक सेवन करने पर ही हमारे पापराशि को नाश करत हैं। परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण का चरणामृत तो तत्काल प्रभाव से पापराशि को नष्ट करता है।

विशेषार्थः विष्णुपादोदक न केवल पुण्यप्रद है। अपि तु पापराशियों का भी अविलम्ब दूर करता है। प्रयाग, गया–क्षेत्र,

नैमिषारण्य इत्यादि क्षेत्रों में बहने वाली गङ्गा इत्यादि नदियों में बहुत समय तक स्नान करने से ही पाप-राशि नष्ट होती है, परन्तु भगवत्पादोदक को पीने से तुरन्त ही पाप नष्ट होता है।

यानि कानि च तीर्थानि ब्रह्माण्डान्तर्गतानि च।
विष्णुपादोदकस्यैते कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥१०१॥

अन्वयः ब्रह्माण्डान्तर्गतानि (इस ब्रह्माण्ड में) **यानि कानि च** (जितने भी) **तीर्थानि** (तीर्थ और क्षेत्र हैं) **एते** (ये सब) **विष्णुपादोदकस्य (**हरिचरणाभिषेक जल का) **षोडशीं** (सोलहवी) **कलां** (कला को भी) **अर्हन्ति** (प्राप्त कर नहीं पाते हैं।)

अनुवादः इस ब्रह्माण्ड में जितने भी तीर्थ और क्षेत्र हैं, ये सब हरिचरणाभिषेक जल के सोलहवी कला को भी प्राप्त कर नहीं पाते हैं।

विशेषार्थः न केवल पूर्व-श्लोक में वर्णित नदी-समद्र-क्षेत्र जो पृथ्वी में हैं, किन्तु पूरे ब्रह्माण्ड में जितने भी नद-नदियां तथा क्षेत्र हैं, वे सब मिलके भी शालिग्राम-शिला-तीर्थ के सोलहवें भाग की महत्ता को भी प्राप्त नहीं करेंगे।

स्नात्वा पादोदकं विष्णोः पिबन् शिरसि धारयेत्।
सर्वपापविनिर्मुक्तो वैष्णवीं सिद्धिमाप्नुयात्॥१०२॥

अन्वयः स्नात्वा (स्नान करने के बाद) **विष्णोः** (विष्णु भगवान् का) **पादोदकं** (चरण से निर्गलित चरणामृत को) **पिबन्** (पीकर) **शिरसि** (सिर में) **धारयेत् (**उस चरणामृत को धारण करना चाहिए। ऐसे करने पर) **सर्व-पाप-विनिर्मुक्तः** (सब प्रकार के पापों से मुक्त होकर) **वैष्णवीं सिद्धिं** (भगवान् विष्णु के ज्ञान को) **आप्नुयात्** (प्राप्त करेगा।)

अनुवादः स्नान करने के बाद भगवान् विष्णु के चरण से निर्गलित चरणामृत को पीकर उस चरणामृत को सिर में धारण करना चाहिए। ऐसे करने पर सब प्रकार के पापों से मुक्त होकर भक्त भगवान् विष्णु के ज्ञान की प्राप्ति करेगा।

विशेषार्थः स्नान करने के बाद भगवच्चरणामृत को पीकर शिर में धारण करने से सब पापों से मुक्ति मिल जाती है। तथा भगवान् के ज्ञान की प्राप्ति भी हो जाती हैं।

यथा पादोदकं पुण्यं निर्माल्यं चानुलेपनम्।
नैवेद्यं धूपशेषं च आरार्तिश्च तथा हरेः॥१०३॥

अन्वयः हरेः (भगवान् के) **पादोदकं** (चरणामृत) **यथा** (जिस प्रकार से) **पुण्यं** (अत्यन्त पुण्यप्रद है।) **तथा** (उसी प्रकार से) **निर्माल्यम्** (पूर्वदिन में भगवान् समर्पित निर्माल्य तुलसीदल) **अनुलेपनं** (भगवान् के समर्पित श्री गन्ध) **नैवेद्यं** (भगवान् के लिए लगाया गया भोग) **धूपशेषः च** (भगवान् के लिए समर्पित सुवासित धूप) **आरार्तिः च** (भगवान् के मङ्गल आरती ये सब पदार्थ) **तथा** (अत्यन्त पुण्यप्रद हैं।)

अनुवादः भगवान् के चरणामृत जिस प्रकार से पुण्यं अत्यन्त पुण्यप्रद है, उसी प्रकार से पूर्वदिन में भगवान् को समर्पित निर्माल्य तुलसीदल, भगवान् को समर्पित श्री गन्ध, नैवेद्य (भगवान् के लिए लगाया गया भोग), भगवान् के लिए समर्पित सुवासित धूप, भगवान् की मङ्गल–आरती ––ये सब पदार्थ अत्यन्त पुण्यप्रद हैं।

विशेषार्थः भगवान् के लिए समर्पित वस्तुओं का सेवन हम लोगों को करना चाहिए—इस सिद्धान्त का यह श्लोक प्रतिपादन कर रहा है। पूर्वदिन में भगवान् को समर्पित तुलसीदल फूल इत्यादि, घिसा हुआ गन्ध, भगवान् के निवेदित किया गया सब प्रकार के अन्न, तथा अभिषेचन के बाद भगवान् को समर्पित सुवासित धूप के शेष कोयला, मङ्गलारति यह सब अत्यन्त ही पवित्र वस्तु होने के कारण इन्ही वस्तुओं का उपयोग करना चाहिए।

तुलस्यास्तु रजोजुष्टनैवेद्यस्य च भक्षणम्।
निर्माल्यं शिरसा धार्यं महापातकनाशनम्॥१०४॥

अन्वयः तुलस्याः तु (तुलसी जी के) **रजोजुष्ट नैवेद्यस्य** (कण से सम्बन्ध रखने वाला भगवन्निवेदित भोग अन्न इत्यादि को) **भक्षणम्** (खाना चाहिए तथा भगवान् को पूर्व दिन में समर्पित निर्माल्य शेष को) **शिरसा** (सिर में) **धार्यम्** (धारण करना चाहिए यह दोनों ही) **महापातकनाशनम्** (सब तरह के महापापों को नाश करेंगे।)

अनुवादः तुलसी जी के कण से सम्बन्ध रखने वाला भगवन्निवेदित भोग अन्न इत्यादि को खाना चाहिए तथा भगवान् को पूर्व दिन में समर्पित निर्माल्य शेष को सिर में धारण करना चाहिए--यह दोनों ही सब तरह के महापापों को नाश करेंगे।

विशेषार्थः इस श्लोक में तुलसी जी के महत्त्व को प्रतिपादन कर रहे हैं। जब भी भगवान् को भोग लगायेंगें तब अवश्य भोग में तुलसी पत्र को डालना चाहिए। उस प्रकार से लगाया गया भोग (भगवद्-प्रसाद) को खाना अत्यन्त पवित्र होता है। तथा पूर्वदिन में भगवान् को समर्पित तुलसी-पुष्प इत्यादि निर्माल्य शेष को सिर में धारण करना चाहिए।

भक्त्या वा यदि वाऽभक्त्या चक्राङ्कितशिलां प्रति।
दर्शनं स्पर्शनं वाऽपि सर्वपापप्रणाशनम्॥१०५॥

अन्वयः भक्त्या वा (भक्तिपूर्वक) **यदि वा** (अथवा) **अभक्त्या** (भक्तिके बिना भी) **चक्राङ्कित-शिलां प्रति** (चक्र से अङ्कित शालिग्राम शिला को) **दर्शनं** (देखना) **अपि वा** (अथवा) **स्पर्शनं (**स्पर्श करना—) [ये दोंनों] **सर्वपापप्रणाशनम्** (सब पापों को नाश कर देतें हैं।)

अनुवादः भक्तिपूर्वक अथवा भक्तिके बिना भी चक्र से अङ्कित शालिग्राम-शिला को देखना अथवा स्पर्श करना—ये दोनों कार्य सब पापों को नाश कर देतें हैं।

विशेषार्थः पूर्व-श्लोक में भगवान् के चरणामृत का महत्त्व प्रतिपादित किया है। अब उस का कारण बताया जा रहा है, क्योंकि यदि कोई पुरुष भक्तिसे या भक्ति के बिना भी शालिग्राम-

शिला (ठाकुर जी) को देखता है अथवा स्पर्श करता है, उतने मात्र से ही उस के सब पाप नष्ट हो जायेंगे। अतः शालिग्राम-शिला अत्यन्त पवित्र होती है। उस शिला से निर्गलित होने के कारण ही भगवान् का चरणामृत भी अत्यन्त महत्त्व प्राप्त करता है। अतएव भगवान् का चरणामृत गङ्गा इत्यादि नदियों से भी उत्कृष्ट होता है।

शालग्रामोद्भवो देवो देवो द्वारवतीभवः।
उभयोः स्नानतोयेन ब्रह्महत्यां व्यपोहति॥१०६॥

अन्वयः शालग्रामोद्भवः (दामोदर कुण्ड से उद्भूत जो शालिग्राम शिला है वह) **देवः** (भगवान् का आवास-स्थान है तथा भगवान् की प्रतिमा-स्वरूप है।) **उभयोः** (इन दोनों शिलाओं के) **स्नानतोयेन** (अभिषेक जल से) **ब्रह्महत्यां** (ब्राह्मण-वध जैसे महापातक को भी) **व्यपोहति** (दूर कर सकते हैं।)

अनुवादः दामोदर-कुण्ड से उद्भूत जो शालिग्राम-शिला है, वह भगवान् का आवास-स्थान है तथा भगवान् की प्रतिमा-स्वरूप है। इन दोनों शिलाओं का अभिषेक-जल ब्राह्मण-वध जैसे महापातक को भी दूर कर सकता हैं।

विशेषार्थः नेपाल-देश के गण्डकी-नदी के तीर में स्थित दामोदर-कुण्ड से निर्गमित जो शालिग्राम-शिला है तथा द्वारका (द्वारिका) में समुद्र से पैदा होने वाली चक्राङ्क-शिला है—यह दोनों के अभिषेक जल से अबुद्धिपूर्वक किया गया ब्रह्महत्या-दोष भी नष्ट होता है। परन्तु यह ब्रह्महत्या यदि बुद्धिपूर्वक की गई हो, तो कभी भी नष्ट नहीं होगी।

म्लेच्छदेशेऽशुचौ वाऽपि चक्राङ्को यत्र तिष्ठति।
योजनानि तथा त्रीणि मम क्षेत्रं वसुंधरे॥१०७॥

अन्वयः वसुन्धरे (हे भूदेवी!) **म्लेच्छदेशे** (वर्णाश्रम-व्यवस्था-रहित म्लेच्छ-देश में) **वा** (अथवा) **अशुचै अपि** (दूसरे अशुद्ध प्रदेशों में भी) **यत्र** (जिस जगह में) **चक्राङ्कः** (शालिग्राम-शिला) **तिष्ठति** (रहती है, वह जगह तथा उसके पास वाला) **त्रीणि**

योजनानि (तीन योजन तक का परिसर) **मम** (मेरा [भगवान् का]) **क्षेत्रं** (क्षेत्र मानना चाहिए।)

अनुवादः हे भूदेवी! वर्णाश्रम-व्यवस्था-रहित म्लेच्छ-देश में अथवा दूसरे अशुद्ध प्रदेशों में भी जिस जगह में शालिग्राम-शिला रहती है, वह जगह तथा उसके पास वाली तीन योजन तक की जगह मेरा (भगवान् का) क्षेत्र मानना चाहिए।

विशेषार्थः भगवान् वराह-देव भूदेवी को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि भारत-भूमि के बाहर वर्णाश्रम-व्यवस्था रहित जो भी भूभाग है, उसको म्लेच्छ-देश कहा गया है। वह वास योग्य नहीं है। तथा भारत-भूमि में भी अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग इत्यादि देशों को अशुचि माना गया है। परन्तु इस तरह की जगह में भी यदि शालिग्राम-शिला होती है, तो उसको तथा उस के चारों दिशाओं में तीन योजन तक (नौ कोस तक) के जगह को भी भगवत्क्षेत्र ही माना जाता है। वह पुण्यक्षेत्र है।

शालग्रामोद्भवो देवो शैलं चक्राङ्कमंडितम्।
यत्रापि नीयते तत्र वाराणस्याः शताधिकम्॥१०८॥

अन्वयः शालिग्रामोद्भवः (दामोदर कुण्ड से निर्गलित) **देवः** (देव-प्रतिमा स्वरूप शालिग्राम-शिला तथा) **चक्राङ्कमण्डितम्** (चक्र जैसे अङ्कित) **शैलम्** (शिलारूपी देव प्रतिमा [चक्राङ्कित-शिला] को) **यत्रापि** (जहाँ कहीं भी) **नीयते** (लेकर के जाते है) **तत्र** (उस जगह में रहने वाले लोगों को) **वाराणस्याः** (वाराणसी क्षेत्र से) **शताधिकं** (सौ गुना अधिक पुण्य प्राप्त होता है।)

अनुवादः दामोदर-कुण्ड से निर्गलित देव-प्रतिमा स्वरूप शालिग्राम-शिला तथा चक्र जैसे अङ्कित शिलारूपी देव प्रतिमा (चक्राङ्कित-शिला) को जहाँ कहीं भी लेकर के जाते है, उस जगह में रहने वाले लोगों को वाराणसी क्षेत्र से सौ गुना अधिक पुण्य प्राप्त होता है।

विशेषार्थः अशुचि क्षेत्रों में शालिग्राम-शिला तथा चक्राङ्क-शिला यदि स्वतः ही रहती है अथवा किसी के द्वारा ले गयी

जाती है, तब भी वह क्षेत्र वाराणसी से सौ गुना अधिक पवित्र माना जाता है।

शालिग्रामोद्भवो देवो देवो द्वारवतीभवः।
उभयोः संगमो यत्र मुक्तिस्तत्र न संशयः॥१०९॥

अन्वयः शालिग्रामोद्भवः (शालिग्राम शिलारूपी) **देवः** (देवप्रतिमा तथा) **द्वारवतीभवः** (द्वारका में उद्भूत चक्राङ्करूपी) **देवः** (देवप्रतिमा) **उभयोः** (इन दोनों का) **संगमः** (समागम) **यत्र** (जिस जगह पर होता है) **तत्र** (उस जगह में) **मुक्तिः** (मुक्ति ही प्राप्त होगी। इस विषय में) **संशयः** (कोई संशय) **न** (नहीं है।)

अनुवादः शालिग्राम शिलारूपी देव-प्रतिमा तथा द्वारका में उद्भूत चक्राङ्क-रूपी देव-प्रतिमा--इन दोनों का समागम जिस जगह पर होता है, उस जगह में मुक्ति ही प्राप्त होगी। इस विषय में कोई संशय नहीं है।

विशेषार्थः शालिग्राम शिला तथा चक्राङ्क शिला जो द्वारिका में मिलती है, दोनों एक जगह में होने पर वह जगह मुक्तिदायक ही होती है।

हरिणा मुक्तिदानीह मुक्तिस्थानानि सर्वशः।
स यस्य सर्वभावेषु तस्य तैः किं प्रयोजनम्॥११०॥

अन्वयः इह (इस धरती पर जो जो) **मुक्ति-स्थानानि** (मुक्ति-प्रदायक दिव्य तीर्थ क्षेत्र हैं) **सर्वशः** (वे सब भी) **हरिणा** (उन तीर्थ क्षेत्रों में भगवान् के विशेष संन्निधि होने के कारण ही) **मुक्तिदानि** (मुक्ति-दायक है।) [जिस साधक की दृष्टि में] **सर्वभावेषु** (सभी पदार्थों में) **सः** (ऐसे भगवान् ही हैं) **तस्य** (उस साधक को) **तैः** (इन तीर्थ क्षेत्रों से) **किं प्रयोजन** (क्या लाभ है?)

अनुवादः इस धरती पर जो जो मुक्ति-प्रदायक दिव्य तीर्थ क्षेत्र हैं, वे सभी उन तीर्थ-क्षेत्रों में भगवान् की विशेष सन्निधि (निवास) होने के कारण ही मुक्ति-दायक है। यदि किसी साधक की दृष्टि में 'सभी पदार्थों में भगवान् का निवास हैं', तब उस साधक को इन तीर्थ क्षेत्रों से क्या लाभ है?

विशेषार्थः तीर्थक्षेत्र स्वयं महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। किन्तु उन में भगवान् श्रीविष्णुजी की विशेष अभिव्यक्ति होने के कारण ही उन की महत्ता बनी है। हम जैसे अनधिकारी या कनिष्ट–अधिकारी जो सर्वत्र भगवान् को देख नहीं पायेंगे, उन के लिए ही तीर्थ–क्षेत्रों की आवश्यकता होती है। जो उत्तमाधिकारी साधक सब वस्तुओं में भगवान् को देख पाता है, उस के लिए तीर्थ–क्षेत्र–यात्रा व्यर्थ ही होगी।

हरिर्याति हरिर्याति दस्युव्याजेन यो वदेत्।
सोऽपि सद्गतिमाप्नोति गतिं सुकृतिनो यथा॥१११॥

अन्वयः दस्युव्याजेन (वैर के कारण से भी) **यः** (जो भी पुरुष) **हरिः याति हरिः याति** (भगवान् जा रहा है', 'भगवान् जा रहा है') [ऐसा] **वदेत्** (बोलता है) **सः अपि** (वह भी) **यथा** (जिस प्रकार से) **सुकृतिनः** (पुण्यवान् लोग) **गतिं** (अच्छी गति) [को प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार से] **सद्गतिं** (अच्छी गति को) **आप्नोति** (प्राप्त करता है।)

अनुवादः वैर के कारण से भी जो भी पुरुष भगवान् जा रहा है', 'भगवान् जा रहा है' ऐसा बोलता है, वह भी जिस प्रकार से पुण्यवान् लोग अच्छी गति को प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार से अच्छी गति को प्राप्त करता है।

विशेषार्थः भगवान् को भक्तिपूर्वक पुकारने वाले लोग निःसंशय ही सद्गति को प्राप्त करते हैं। उसी प्रकार भक्ति के बिना द्वेष के बहाने भी जो पुरुष भगवान् का नामस्मरण करेगा, वह भी अच्छी गति को प्राप्त करेगा। शिशुपाल इत्यादि राक्षस लोग श्रीकृष्ण जी का द्वेष करते थे, परन्तु उस द्वेष के अन्दर भी नामाभास विराजमान था, उसी कारण उन को भी सद्गति प्राप्त हुई। 'द्वेषा–च्चैद्यादयो नृपाः' यह भागवत–वाक्य भी इस विषय को प्रतिपादन करता है।

वासुदेवं परित्यज्य योऽन्यं देवमुपासते।
त्यक्त्वाऽमृतं स मूढात्मा भुङ्क्ते हालाहलं विषम्॥११२॥

अन्वयः यः (जो पुरुष) **वासुदेवं** (भगवान् श्रीकृष्ण को) **परित्यज्य** (छोडकर) **अन्यं** (दूसरी) **दैवं** (देवता की) **उपासते** (उपासना करता है) **सः** (वह) **मूढात्मा** (मूर्ख पुरुष) **अमृतं** (क्षीरसागर से उत्पन्न अमृत को) **त्यक्त्वा** (छोड़कर) **हालाहलं विषं** (हालाहल विष को) **भुङ्क्ते** (भोग करता है।)

अनुवादः जो पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण को छोडकर दूसरी देवता की उपासना करता है, वह मूर्ख पुरुष क्षीरसागर से उत्पन्न अमृत को छोड़कर हालाहल विष को भोग करता है।

विशेष व्याख्याः अमृत को छोड़कर विष पीने वाले आदमी की स्थिति ही भगवान् श्रीकृष्ण को छोडकर दूसरी देवताओं की उपासना करने वाले आदमी की स्थिति है।

त्यक्त्वाऽमृतं यथा कश्चिदन्यपानं पिबेन्नरः।
तथा हरिं परित्यज्य योऽन्यं देवमुपासते॥११३॥

अन्वयः कश्चित् नरः (कोई पुरुष) **यथा** (जिस प्रकार से) **अमृतं** (अमृत को छोड़कर) **अन्यपानं** (मदिरा इत्यादि द्रव्य को) **पिबेत्** (पीता है) **तथा** (उसी प्रकार से) **यः (**जो पुरुष) **हरिं** (भगवान् को) **परित्यज्य** (छोड़कर) **अन्यं देवं** (दूसरे शिव, स्कन्द इत्यादि देवताओं की) **उपासते** (उपासना करता है) [वह पुरुष भी निन्दित है।]

अनुवादः कोई पुरुष जिस प्रकार से अमृत को छोड़कर मदिरा इत्यादि द्रव्य को पीता है, उसी प्रकार से जो पुरुष भगवान् को छोड़कर दूसरे शिव, स्कन्द (कार्तिकेय) इत्यादि देवताओं की उपासना करता है, तो वह पुरुष भी निन्दित है।

स्वधर्मं तु परित्यज्य परधर्मं यथा चरेत्।
तथा हरिं परित्यज्य योऽन्यं देवमुपासते॥११४॥

अन्वयः [कोई हिन्दू पुरुष] **यथा** (जिस प्रकार से **स्वधर्मं तु** (स्वकीय यज्ञ-दानादि हिन्दू आचरणों को) **परित्यज्य** (छोड़कर) **परधर्मं** (मुसलमान इत्यादि धर्मों का) **चरेत्** (आचरण करता है) **तथा** (उस प्रकार से) **यः** (जो पुरुष) **हरिं परित्यज्य** (भगवान्

श्रीकृष्ण जी को छोड़कर) **अन्यं देवं** (दूसरे देवताओं की) **उपासते** (उपासना करता है) [वह अत्यन्त निन्दित है।]

अनुवादः कोई हिन्दू पुरुष यदि स्वकीय यज्ञ-दानादि हिन्दू आचरणों को छोड़कर मुसलमान इत्यादि धर्मों का आचरण करता है, तो वह निन्दा का पात्र हैं। उसी प्रकार से जो पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण को छोड़कर दूसरे देवताओं की उपासना करता है, तो वह अत्यन्त निन्दित है।

यथा गङ्गोदकं त्यक्त्वा पिबेत् कूपोदकं नरः।
तथा हरिं परित्यज्य योऽन्यं देवमुपासते॥११५॥

अन्वयः नरः (कोई पुरुष) **यथा** (जिस प्रकार) **गङ्गोदकं** (साक्षात् गङ्गाजी के पानी को) **त्यक्त्वा** (छोडकर) **कूपोदकं** (अपने गांव के कुँए का पानी को) **पिबेत्** (पीता है) **तथा** (उसी प्रकार) **यः** (जो पुरुष) **हरिं परित्यज्य** (भगवान् श्रीकृष्ण जी को छोड़ कर) **अन्यं देवं** (दूसरी देवताओं की) **उपासते** (उपासना करता है,) [वह पुरुष अत्यन्त निन्दित है।]

अनुवादः यदि कोई पुरुष साक्षात् गङ्गाजी के पानी को छोडकर अपने गांव के कुएँ का पानी पीता है, तब वह गर्हित हैं। उसी प्रकार जो पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण जी को छोड़ कर दूसरी देवताओं की उपासना करता है, तो वह पुरुष अत्यन्त निन्दित है।

गां च त्यक्त्वा विमूढात्मा गार्दभीं वन्दते यथा।
तथा हरिं परित्यज्य योऽन्यं देवमुपासते॥११६॥

अन्वयः विमूढात्मा (जो मूर्ख व्यक्ति) **यथा** (जिस प्रकार) **गां च** (गोमाता को) **त्यक्त्वा** (छोड़कर) **गार्दभीं** (गधे को) **वन्दते** (नमस्कार करता है) **तथा** (उसी प्रकार) **यः** (जो पुरुष) **हरिं परित्यज्य** (भगवान् श्रीकृष्ण जी को छोड़कर) **अन्यं देवं** (दूसरी देवताओं की) **उपासते** (उपासना करता है।)

अनुवादः मूर्ख व्यक्ति जिस प्रकार गोमाता को छोड़कर गधे को नमस्कार करता है, उसी प्रकार जो पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण जी को छोड़कर दूसरी देवताओं की उपासना करता है, वह भी मूर्ख-शिरोमणि हैं।

स्वमातरं परित्यज्य श्वपाकीं वन्दते यथा।
तथा हरिं परित्यज्य योऽन्यं देवमुपासते॥११७॥

अन्वयः यथा (जिस प्रकार) [कोई मूर्ख-पुरुष] **स्वमातरं** (अपनी माताजी को) **परित्यज्य (**छोड़कर) **श्वपाकीं** (कुत्ते को पकाकर खानेवाली नीच महिला को) **वन्दते** (वन्दन करता है,) **तथा** (उस प्रकार) **यः** (जो पुरुष) **हरिं परित्यज्य** (भगवान् को छोड़कर) **अन्यं देवं** (दूसरी देवताओं की) **उपासते** (उपासना करता है) [वह अत्यन्त निन्दित है।]

अनुवादः जिस प्रकार कोई मूर्ख-पुरुष अपनी माताजी को छोड़कर कुत्ते के मांस को पकाकर खानेवाली नीच महिला को वन्दन करता है, उसी प्रकार जो पुरुष भगवान् को छोड़कर दूसरी देवताओं की उपासना करता है, वह अत्यन्त निन्दित है।

वासुदेवं परित्यज्य योऽन्यं देवमुपासते।
तृषितो जान्हवीतीरे कूपं खनति दुर्मतिः॥११८॥

अन्वयः यः (जो पुरुष) **वासुदेवं** (भगवान् श्रीकृष्ण जी को) **परित्यज्य** (छोड़कर) **अन्यं देवं** (दूसरे देवताओं की) **उपासते** (उपासना करता है) [वह पुरुष], **दुर्मतिः** (जो मूर्ख) **तृषितः** (अत्यन्त पिपासित होकर) **जाह्नवीतीरे** (गङ्गाजी के तटपर) **कूपं** (कुएँ की) **खनति** (खुदाई करनेवाले पुरुष जैसा है।)

अनुवादः जो पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण जी को छोड़कर दूसरे देवताओं की उपासना करते है, वह पुरुष उस मूर्ख व्यक्ति जैसा है जो अत्यन्त पिपासित होकर गङ्गाजी के तट पर कूप (कुआँ) खोदता हैं।

विशेषार्थः ११२ से ११८ तक के श्लोकों में अनेक उदाहरण देते हुए भगवान् श्रीकृष्ण जी की उपासना छोड़कर दूसरी

देवताओं की उपासना करने वाले व्यक्ति की निन्दा कर रहे हैं। अमृत को छोडकर मदिरा इत्यादि द्रव्यों को सेवन करनेवाला, गङ्गा–तीर में रहते हुए भी गङ्गाजी के पानी को छोड़कर कुएं का पानी पीनेवाला, गोमाता को छोड़कर गधे को पूजनेवाला, अपनी जननी को छोड़कर श्वपाकी (जाति–बहिष्कृत चांडालिनी) की उपासना करनेवाला, ब्राह्मण जन्मोचित यज्ञ–याग–स्नान–संध्या इत्यादि को छोड़कर मुसलमान धर्म का अनुसरण करने वाला पुरुष जिस प्रकार से अत्यन्त निन्दित है, उसी प्रकार भगवान् को छोड़कर दूसरी देवताओं की उपासना करनेवाला भी अत्यन्त निन्दित है।

यह सारे वचन साक्षात् शंकर जी के मुख से निकले हुए हैं।

यावत्स्वस्थमिदं पिण्डं निरुजं करणान्वितम्।
तावत्कुरुष्वात्महितं पश्चात्तापेन तप्यसे॥११९॥

अन्वयः इदं पिण्डं (यह पार्थिव शरीर) **यावत्** (जब तक) **स्वस्थं** (स्वास्थ्य से परिपूर्ण) **निरुजं** (रोगों के बिना) **करणान्वितं** (सब प्रकार ज्ञानेन्द्रिय–कर्मेन्द्रियों से संवलित होकर कार्य–समर्थ होता है,) **तावत्** (तब तक) **आत्महितं** (अपनी आत्मा के आवश्यक भगवत्पूजादि कर्म) **कुरुष्व** (करो।) [यदि ऐसा नहीं किया तो] **पश्चात्** (बाद में) [वार्धक्य अथवा मरणोपरान्त] **तापेन** (नरक से) **तप्यसे** (कष्ट भोगना पडेगा।)

अनुवादः यह पार्थिव शरीर जब तक स्वास्थ्य से परिपूर्ण रोगों के बिना (निरोग) सब प्रकार ज्ञानेन्द्रिय–कर्मेन्द्रियों से संवलित होकर कार्य समर्थ होता है, तब तक अपनी आत्मा के आवश्यक भगवत्पूजादि कर्म करो। यदि ऐसा नहीं किया तो बाद में वार्धक्य अथवा मरणोपरान्त नरक मे कष्ट भोगना पडेगा।

यावत्स्वास्थ्यं शरीरेषु करणेषु च पाटवम्।
तावदर्चय गोविन्दमायुष्यं सार्थकं कुरु॥१२०॥

अन्वय––यावत् (जब तक) **शरीरेषु** (देह में) **स्वास्थ्यं** (स्वस्थता होती है) [तथा] **करणेषु** (इन्द्रियों में) **पाटवं च** (बल

भी होता है) **तावत्** (तब तक) **गोविन्दं** (भगवान् श्रीकृष्ण जी) **अर्चय** (अर्चना करो।) **आयुष्यं** (अपने जीवित को) **सार्थकं कुरु** (सार्थक बनाओ।)

अनुवाद––जब तक देह में स्वस्थता होती है तथा इन्द्रियों में बल भी होता है, तब तक भगवान् श्रीकृष्ण जी का अर्चना करो। अपने जीवित को सार्थक बनाओ।

स्मर्यतां तु हृषीकेशो हृषीकेषु दृढेषु च।
अदृढेषु हृषीकेषु हृषीकेशं स्मरन्ति के॥१२१॥

हृषीकेषु च (इन्द्रियों के **दृढेषु** (दृढ होते हुऐ ही **अन्वयः हृषीकेशः तु** (भगवान् श्रीकृष्ण जी का) **स्मर्यतां** (स्मरण किया जाए। क्यों कि) **हृषीकेषु** (इन्द्रियों के) **अदृढेषु** (बल हीन होने पर) **हृषीकेशं** (भगवान् को) **के** (कौन) **स्मरन्ति (**स्मरण कर सकते हैं?) (कर नहीं सकते हैं)

अनुवाद––भगवान् श्रीकृष्ण जी का स्मरण किया जाए। क्यों कि इन्द्रियों के बल हीन होने पर भगवान् को कौन स्मरण कर सकते हैं? अर्थात् कर नहीं सकते हैं।

यावच्चिन्तयते जन्तुर्विषयान् विषसंनिभान्।
तावच्चेत्स्मरते विष्णुं को न मुच्येत् बन्धनात्॥१२२॥

अन्वयः जन्तुः (जन्तुसदृश यह पुरुष) **यावत्** (जिस समय में) **विषसंनिभान्** (विष के सदृश) **विषयान्** (विषय पदार्थों को) **चिन्तयते** (चिन्तन करता रहता है) **तावत्** (उसी समय में) **विष्णुं** (भगवान् का) **स्मरते चेत्** (स्मरण करेगा तो) **कः** (कौन) **बन्धनात्** (इस संसारबन्धन से) **न मुच्येत** (मुक्त नहीं होगा?) (अवश्य ही मुक्त होगा)।

अनुवादः जन्तुसदृश यह पुरुष जिस समय में विष के सदृश विषय पदार्थों का चिन्तन करता रहता है, उसी समय में भगवान् कृष्ण का स्मरण करेगा तो कौन इस संसारबन्धन से मुक्त नहीं होगा? (अवश्य ही मुक्त होगा)।

यावत्प्रलपते जन्तुर्लोकवार्तादिभिः सदा।
तावच्चेद्वदते विष्णु को न मुच्येत बन्धनात्॥१२३॥

अन्वयः जन्तुः (जन्तुसदृश यह पुरुष) **सदा** (सर्वदा) **यावत्** (जिस काल तक) **लोकवार्तादिभिः** (सांसारिक विचारों के) **प्रलपते** (प्रलाप करता रहता है) **तावत्** (उसी समय में) **विष्णुं** (भगवान् श्रीकृष्ण को) **वदते चेत्** (पुकारेगा तो) **कः** (कौन) **बन्धनात्** (संसारबन्धन से) **न मुच्यते** (मुक्त नहीं होगा?) (अवश्य ही मुक्त हो जाता है)

अनुवादः जन्तु-सदृश यह पुरुष सर्वदा जिस काल तक सांसारिक विचारों के प्रलाप करता रहता है, उसी समय में भगवान् श्रीकृष्ण को पुकारेगा, तो कौन संसार-बन्धन से मुक्त नहीं होगा? (अवश्य ही मुक्त हो जाता है)।

विशेषार्थः ११९ से १२३ तक का एक ही विषय हैं जब तक हमारे दस इन्द्रिय कार्य करने हेतु सक्षम है तब तक सर्वदैव भगवान् श्रीकृष्ण जी का स्मरण अवश्य करना चाहिए। जब वार्धक्य में सारे इन्द्रिय दुर्बल हो जायेंगे नामस्मरण करने में भी सक्षम न होगा, तब भगवान् के स्मरण अर्चना पूजा कैसे हो सकती है? मरण के बाद जब यमलोक में जायेंगे उस समय क्या उपासना कर सकता है? अतः शरीर जब तक सुस्थिर रहता है तब तक भगवदाराधना करते रहना चाहिए।

टेलिविजन, रेडियो, अखबार, नाच गाना, खेल कूद, राजनीति इत्यादि लौकिक वार्ता में पूरे समय बीत जाता है। परन्तु भगवान श्रीकृष्ण जी के स्मरण करने हेतु समय समय मिल नहीं पाता हैं अतः स्वकीय शक्त्यनुसार सर्वदा भगवन्नास्मरण करना चाहिए। भगवन्नामस्मरण ही मुक्ति का कारण है।

अब १६९ श्लोक तक एकादशी की महत्ता को सूत जी वचनों के द्वारा प्रतिपादन करते है।

सूतः-

ज्ञात्वा विप्रास्तिथिं सम्यग् दैवज्ञैः समुदीरिताम्।
कर्तव्य उपवासस्तु ह्यन्यथा नरकं व्रजते॥१२४॥

अन्वयः विप्राः (हे शौनकादि ऋषियों!) **दैवज्ञैः** (ज्योतिःशास्त्र के पण्डितों से) **समदीरितां** (निर्णीत की गयी) **तिथिं** (एकादशी तिथि को) **सम्यक्** (अच्छे तरह से) **ज्ञात्वा** (समझ कर) **उपवासः तु (**उपवास) **कर्तव्यः** (करना चाहिए।) **अन्यथा हि** (तिथि का ज्ञान गलत होने से गलत तिथि में उपवास करने पर) **नरकं** (नरक को) **व्रजेत्** (प्राप्त करेगा।)

अनुवादः हे शौनकादि ऋषियों! ज्योतिःशास्त्र के पण्डितों से निर्णीत की गयी एकादशी तिथि को अच्छे तरह से समझ कर उपवास करना चाहिए। तिथि का ज्ञान गलत होने से गलत तिथि में उपवास करने पर नरक की प्राप्ति होगी।

विशेषः एकादशी के दिन उपवास करना प्रत्येक विष्णुभक्त का अत्यन्त मुख्य कर्त्तव्य हैं। परन्तु जिस दिन अरुणोदय काल में दशमी तिथि रहती है और बाद में एकादशी तिथि आती है, वह विद्धा एकादशी होगी। उस दिन उपवास करने से नरक प्राप्त होगा। अतः अच्छे ज्योतिषियों से एकादशी तिथि का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। यह शौनकादि ऋषियों को संबोधित कर सूत गोस्वामी जी कह रहे हैं।

क्षये वाऽप्यथवा वृद्धौ संप्राप्ते वा दिनक्षये।
उपोष्या द्वादशी पुण्या पूर्वविद्धां परित्यजेत्॥१२५॥

अन्वयः क्षये वा (नवमी दशमी एकादशी इन तिथियों का क्रमशः उत्तरोत्तर ह्रास होने पर) **अथवा** (अथवा) **वृद्धौ** (क्रमशः तिथियों के बढ़ने पर) **वा** (अथवा) **दिनक्षये** (दिनक्षय) **संप्राप्ते** (प्राप्त होने पर) **पुण्या** (पुण्यकर) **द्वादशी** (द्वादशी तिथि में) **उपोष्या** (उपवास करना चाहिए। **पूर्वविद्धां** (दशमी से संस्पृष्ट एकादशी को) **परित्यजेत्** (छोड़ना चाहिए)।

अनुवादः नवमी-दशमी-एकादशी इन तिथियों का क्रमशः उत्तरोत्तर ह्रास होने पर, अथवा क्रमशः तिथियों के बढ़ने पर,

अथवा दिन-क्षय प्राप्त होने पर पुण्यकर द्वादशी तिथि में उपवास करना चाहिए। दशमी से संस्पृष्ट एकादशी को छोडना चाहिए।

विशेषः तिथियों में कभी कभी वृद्धि अथवा ह्रास होता है। जैसे नवमी अट्ठावन घटिका (५८), दशमी छप्पन घटिका (५६), एकादशी पचास (५०) होने पर तिथियों का क्षय माना गया है। नवमी चौव्वन (५४), दशमी छप्पन (५६), एकादशी अट्ठावन (५८) घटिका होने पर वृद्धि माना गया है। एक ही दिन में अरुणोदय काल में दशमी, तदनन्तर एकादशी उसके बाद फिर प्रभात-समय में द्वादशी होने पर एक ही दिन में तिथियों का संगम होता हैं। इसको दिनक्षय माना गया हैं। इन तीनों परिस्थितियों में एकादशी के दिन अरुणोदय काल में दशमी का प्रवेश होने के कारण उन एकादशी तिथि को छोड़कर द्वादशी के दिन ही उपवास करना चाहिए।

पूर्वविद्धां प्रकुर्वाणो नरो धर्मान् निकृन्तति।
सन्ततेस्तु विनाशाय संपदो हरणाय च॥१२६॥

अन्वयः पूर्वविद्धां (दशमीविद्ध एकादशी के दिन) **प्रकुर्वाणः** (उपवास करनेवाला) **नरः** (पुरुष) **धर्मान्** (धर्म को **निकृन्तति** (नष्ट करता है।) [इस दिन किया जानेवाला उपवास] **सन्ततेः तु** (अपने बाल बच्चों के) **विनाशाय** (नाश का कारण बनेगा, तथा) **संपदः** (स्थिर-चर संपत्ति के) **हरणाय च** (नाश के लिये भी कारण बनेगा।)

अनुवादः दशमी-विद्धा एकादशी के दिन उपवास करनेवाला पुरुष धर्म को नष्ट करता है। इस दिन किया जानेवाला उपवास अपनों बाल बच्चों के नाश का कारण बनेगा, तथा स्थिर एवं चर संपत्ति के नाश के लिये भी कारण बनेगा।

कलोवेधेऽपि विप्रेन्द्र दशम्येकादशीं त्यजेत्।
सुराया बिन्दुना स्पृष्टं गङ्गाम्भ इव संत्यजेत्॥१२७॥

अन्वयः हे विप्रेन्द्र (हे ब्राह्मण!) **दशम्या (**दशमी तिथि का) **कलावेधे तु** (एक कला [घटिका का एक भाग] से वेध होने पर

भी) **एकादशी** (उस एकादशी तिथि को) **त्यजेत्** (छोड़ना चाहिए।) **सुरायाः** (मदिरा के) **बिन्दुना** (एक बूंद से) **स्पृष्टं** (स्पर्श होने पर) गङ्गाम्भः (गङ्गाजी के पानी को) **इव** (जैसे) **संत्यजेत्** (छोड़ा जाता है, उसी प्रकार दशमीविद्ध एकादशी को भी छोड़ना चाहिए।)

अनुवादः हे ब्राह्मण! दशमी तिथि का एक कला (घटिका का एक भाग) से वेध होने पर भी उस एकादशी तिथि को छोडना चाहिए। मदिरा (मद्य) के एक बूंद से स्पर्श होने पर गङ्गाजी के जल का जैसे त्याग किया जाता है, उसी प्रकार दशमी-विद्धा एकादशी का भी पूर्णतः त्याग करना चाहिए।

श्वदृतौ पश्वगव्यं च दशम्या दूषितां त्यजेत्।
एकादशीं द्विजश्रेष्ठाः पक्षयोरुभयोरपि॥१२८॥

अन्वय: द्विजश्रेष्ठाः (पण्डितश्रेष्ठों!) **श्वदृतौ** (कुत्ते की चमड़ी में रखा) **पञ्चगव्यं** (पंचगव्य को जिस प्रकार से) **त्यजेत्** (छोड़ते है, उसी प्रकार) **उभयोः अपि** (शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षों में भी) **दशम्या** (दशमी से) **दूषितां** (विद्ध होने के कारण अपवित्र की गयी) **एकादशीं** (एकादशी तिथि को) **त्यजेत्** (छोड़ना चाहिए) (उस दिन उपवास नहीं करना चाहिए)।

अनुवाद: पण्डित-श्रेष्ठों! कुत्ते की चमड़ी में रखे पंचगव्य को जिस प्रकार से छोड़ते है, उसी प्रकार शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षों में भी दशमी से विद्ध होने के कारण अपवित्र की गयी एकादशी तिथि को छोड़ना चाहिए (उस दिन उपवास नहीं करना चाहिए)।

तस्माद्विप्रा न विद्धा हि कर्तव्यैकादशी क्वचित्।
विद्धा हन्ति पुरा पुण्यं श्राद्धं च वृषलीपतिः॥१२९॥

अन्वयः विप्राः (हे ब्राह्मणों!) **तस्मात्** (पूर्वोक्त कारणों से) **क्वचित्** (कभी भी) **विद्धा** (दशमी से विद्ध) **एकादशी** (एकादशी उपवास को) **न कर्तव्या** (नहीं करना चाहिए। क्यों कि जैसे) **वृषलीपतिः** (शूद्र स्त्री से विवाहित ब्राह्मण) **श्राद्धं** (श्राद्ध को) **हन्ति** (नाश करता हे वैसे ही) **विद्धा** (दशमी विद्ध एकादशी तिथि)

पुरापुण्यं (पूर्व में किया गया पुण्यफल को) **हन्ति** (नाश करती है।)

अनुवादः हे ब्राह्मणों! पूर्वोक्त कारणों से कभी भी दशमी से विद्ध एकादशी उपवास को नहीं करना चाहिए। क्यों कि जैसे वृषलीपति (शूद्र-स्त्री से विवाहित-ब्राह्मण) श्राद्ध को नाश करता हे वैसे ही दशमी-विद्धा-एकादशी तिथि पूर्व में किया गया पुण्यफल को नाश करती है।

जप्तं दत्तं हुतं स्नातं तथा पूजा कृता हरेः।
तत्सर्वं विलयं याति तमः सूर्योदये यथा॥१३०॥

अन्वयः यथा (जिस प्रकार) **सूर्योदये (**सूर्य भगवान् के उदय होने पर) **तमः (**अन्धकार) **विलयं याति** (नष्ट हो जाता है) **तथा** (उसी प्रकार से दशमीविद्धा एकादशी उपवास करने पर) **जप्तं** (हमारे द्वारा किया गया जाप) **दत्तं** (दिया गया दान) **हुतं** (होम) **स्नानं** (पुण्यतीर्थों में किया गया स्नान **हरेः** (भगवान् को) **कृता** (की गयी) **पूजा** (अर्चनादि सेवा) **तत् सर्वं** (यह प्रकार का पुण्य) **विलयं याति** (नष्ट हो जाता है।)

अनुवादः जिस प्रकार सूर्य भगवान् के उदय होने पर अन्धकार नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार से दशमी-विद्धा एकादशी उपवास करने पर हमारे द्वारा किया गया जाप, दिया गया दान, होम, पुण्य-तीर्थोंमें किया गया स्नान, भगवान् को की गयी अर्चनादि सेवा--यह सब प्रकार का पुण्य नष्ट हो जाता है।

विशेषार्थः १२६ से १३० तक श्लोकों में दशमी विद्ध एकादशी उपवास की निन्दा कर रहे हैं। गङ्गाजल अत्यन्त पवित्र होने पर भी उस में मदिरा का एक बूंद गिरने पर उस को छोड़ देते है। देहशुद्धि हेतु दूध, दही, घी, गोमूत्र, गोमय से बनाया हुआ पञ्चगव्य पिया जाता है। परन्तु कुत्ते की चमड़ी से बनायी थैली में पञ्चगव्य डालने पर वह अशुद्ध हो जाता हैं। उस को छोड़ दिया जाता है। श्राद्ध में शूद्र स्त्री से विवाहित ब्राह्मण को भोजन

करवाने पर श्राद्ध का नाश होता है। उसी प्रकार एकादशी के दिन अरुणोदय काल में दशमी तिथि होने पर विद्ध एकादशी होती है। विद्ध (संस्पृष्ट)। दशमी तिथि से संस्पृष्ट। उस दिन उपवास करने पर हमारे द्वारा किये गये पूरे ही पुण्य, जो जाप, दान, होम, स्नान, भगवत्पूजन इत्यादि से उत्पन्न हुए है, वे नष्ट हो जाते हैं। अतः दशमी विद्ध एकादशी तिथि में उपवास नहीं करना चाहिए।

एकादश्यां यदा ब्रह्मन् दिनक्षयतिथिर्भवेत्।
उपोष्या द्वादशी शुद्धा त्रयोदश्यां तु पारणम्॥१३१॥

अन्वयः ब्रह्मन् (हे ब्राह्मण!) **यदा** (जब) **एकादश्यां** (एकादशी के दिन) **दिन-क्षय-तिथिः भवेत्** (दिन-क्षय-तिथि आने पर) **तत्र** (वहां) **द्वादशी** (द्वादशी के दिन) **उपोष्या** (उपवास करना चाहिए,) **तथा त्रयोदश्यां** (द्वादशी के अनन्तर त्रयोदशी के दिन) **पारणं** (उपवास-समाप्ति का भोजन करना चाहिए।)

अनुवादः हे ब्राह्मण! जब एकादशी के दिन दिन-क्षय-तिथि आने पर वहां द्वादशी के दिन उपवास करना चाहिए, द्वादशी के अनन्तर त्रयोदशी के दिन उपवास-समाप्ति का भोजन करना चाहिए।

विशेषार्थः जिस एकादशी के दिन दशमी-एकादशी-द्वादशी-- इन तीन तिथियों का संयोग होने के कारण दिनक्षय तिथि होती है, उस एकादशी के दिन उपवास नहीं करना चाहिए। किन्तु द्वादशी के दिन उपवास तथा त्रयोदशी में पारण करना चाहिए।

प्रतिपत्प्रभृतयः सर्वा उदयादुदयाद्रवेः।
संपूर्णा इति विज्ञेया हरिवासरवर्जिताः॥१३२॥

अन्वयः प्रतिपत्यप्रभृतयः (प्रतिपत् तिथि से लेकर) **हरि-वासर-वर्जिताः** (एकादशी को छोड़कर) **सर्वाः** (सब तिथियां) **रवेः** (सूर्य के) **उदयात्** (पूर्व-दिन में उदय से) **उदयात्** (दूसरे दिन उदय तक रहने पर) **संपूर्णाः** (पूर्ण-तिथि होंगी—) **इति** (ऐसा) **विज्ञेयाः** (मानना चाहिए।)

अनुवादः प्रतिपत् तिथि से लेकर एकादशी को छोड़कर सब तिथियां सूर्य के पूर्व-दिन में उदय से दूसरे दिन उदय तक रहने पर पूर्ण-तिथि होंगी—ऐसा मानना चाहिए।

विशेषार्थः एकादशी को छोड़कर बाकी तिथियां पूर्व दिन सूर्योदय से दूसरे दिन सूर्योदय तक होने पर संपूर्ण तिथि होंगी। परन्तु अरुणोदय काल से होने पर ही एकादशी को पूर्ण-तिथि मानी जाती हैं। अतः जिस दिन अरुणोदय-काल में एकादशी होती है, उसी दिन उपवास करना चाहिए।

अरुणोदयवेलायां दशमी यदि दृश्यते।
न तत्रैकादशी कार्या धर्मकामार्थनाशिनी॥१३३॥

अन्वयः यदि (कभी भी, यदा-कदाचित्) **अरुणोदयवेलायां** (अरुणोदय काल में) **दशमी** (दशमी तिथि) **दृश्यते** (दिखायी देती है तथा पश्चात् एकादशी तिथि होती है) **तत्र** (उस दिन) **एकादशी** (एकादशी उपवास) **न कार्या** (नहीं करना चाहिए।) (यदि ऐसी एकादशी के दिन उपवास किया जाता है, तो वह एकादशी-उपवास) **धर्म-कामार्थ-नाशिनी** (धर्म, अर्थ और काम-रूपी त्रिविध-पुरुषार्थों का नाश करता है।)

अनुवादः कभी भी, यदा-कदाचित् अरुणोदय-काल में दशमी-तिथि दिखायी देती है तथा पश्चात् एकादशी-तिथि होती है, उस दिन एकादशी-उपवास नहीं करना चाहिए। यदि ऐसी एकादशी के दिन उपवास किया जाता है, तो वह एकादशी-उपवास धर्म, अर्थ और काम-रूपी त्रिविध-पुरुषार्थों का नाश करता है।

अरुणोदयकालेतु दशमी यदि दृश्यते।
पापमूलं तदा ज्ञेयमेकादश्युपवासनम्।
न तत्रैकादशी कार्या धर्मकामार्थनाशिनी॥१३४॥

अन्वयः यदि (कभी भी) [यदा कदाचित] **अरुणोदयकाले** (अरुणोदय काल में) **दशमी** (दशमी-तिथि) **दृश्यते** (दिखायी देता है) **तदा** (उस एकादशी के दिन) **एकादश्युपवासनं** (एकादशी-प्रयुक्त उपवास करना) **पापमूलं** (पाप के कारण है, ऐसा) **ज्ञेयम्** (समझना

चाहिए। इसलिये) **धर्म–कामार्थ–नाशिनी** (धर्म, अर्थ और काम इन तीनों पुरुषार्थों को नाश करने वाला) **एकादशी** (ऐसे विद्धैकादशी उपवास) **न कार्या** (नहीं करना चाहिए।)

अनुवादः कभी भी यदा कदाचित अरुणोदय काल में दशमी–तिथि दिखायी देता है, उस एकादशी के दिन एकादशी–प्रयुक्त उपवास करना पाप के कारण है, ऐसा समझना चाहिए। इसलिये धर्म, अर्थ और काम इन तीनों पुरुषार्थों को नाश करने वाला ऐसे विद्धैकादशी उपवास नहीं करना चाहिए।

चतस्रो घटिकाः प्रातररुणोदय उच्यते।
यतीनां स्नानकालोऽयं गङ्गाम्भःसदृशं जलम्॥१३५॥

अन्वयः प्रातः (सूर्योदय से पहले) **चतस्रः** (चार) **घटिकाः** (घटिका समय को) **अरुणोदयः उच्यते** (अरुणोदय समय कहा गया हैं) **अयं** (यह काल) **यतीनां** (संन्यासियों के) **स्नानकालः** (स्नान के लिये विहित है। यह समय) **गङ्गाम्भः सदृशः** (गङ्गाजी के पानी के समान) **स्मृतः** (कहा गया है।)

अनुवादः सूर्योदय से पहले चार घटिका समय को अरुणोदय समय कहा गया हैं––यह काल संन्यासियों के स्नान के लिये विहित है। यह समय गङ्गाजी के पानी के समान कहा गया है।

विशेष व्याख्याः करीब चौबीस मिनट का समय को घटिका कहा गया हैं। सूर्योदय से पहले चार घटिका (करीब ९६ मिनट) का समय अरुणोदय काल कहलाया गया है॥ यह समय गङ्गाजल जैसे अत्यन्त पवित्र है। संन्यासी लोग इसी वक्त स्नान करते है। जिस एकादशी के दिन अरुणोदय।–काल में दशमी–तिथि होती है, उस दिन उपवास करने से धर्म, अर्थ और काम––यह तीनों पुरुषार्थ नष्ट हो जाते हैं। अतः उस दिन को छोड़कर दूसरे दिन द्वादशी में उपवास करना चाहिए।

उदयात्प्राग्यदा विप्रा मुहूर्तद्वयसंयुता।
संपूर्णैकादशी नाम तत्रैवोपवसेद्गृही॥१३६॥

अन्वयः विप्राः (हे ब्राह्मणों!) **यदा** (जिस एकादशी के दिन) **उदयात्** (सूर्योदय से) **प्राक्** (पूर्व में) **मुहूर्त–द्वय–संयुता** (दो मुहूर्त्त [चार घटिका] तक एकादशी तिथि होती है, उस एकादशी को) **संपूर्णैकादशी नाम** (संपूर्ण एकादशी कही गयी है।) **गृही** (गृहस्थ लोगों को) **तत्रैव** (उस एकादशी तिथि में ही) **उपवसेत्** (उपवास करना चाहिए।)

अनुवादः हे ब्राह्मणों! जिस एकादशी के दिन सूर्योदय से पूर्व में दो मुहूर्त्त [चार घटिका] तक एकादशी तिथि होती है, उस एकादशी को संपूर्ण एकादशी कही गयी है। गृहस्थ लोगों को उस एकादशी तिथि में ही उपवास करना चाहिए।

विशेष व्याख्याः दो घटिका समय समय को एक मुहूर्त्त माना गया है। अतः सूर्योदय से पूर्व में दो मुहूर्त्त (चार घटिका तक) यदि एकादशी–तिथि होती है, उसी दिन उपवास करना चाहिए। वही पूर्ण एकादशी है।

उदयात्प्राग्त्रिघटिकाव्यापिन्यैकादशी यदा।
संदिग्धैकादशी नाम वर्ज्या धर्मार्थकाङ्क्षिभिः॥१३७॥

अन्वयः यदा (जिस दिन) **उदयात् प्राक्** (सूर्योदय से पहले) **एकादशी** (एकादशी–तिथि) **त्रिघटिका–व्यापिनी** (तीन घटिका तक होती है, तो वह) **संदिग्धैकादशी नाम** (संदिग्ध एकादशी कही गयी है।) **धर्मार्थ–नाशिनी** (धर्म और अर्थ के नाश करनेवाली उस एकादशी को) **वर्ज्या** (छोडना चाहिए।)

अनुवादः जिस दिन सूर्योदय से पहले एकादशी–तिथि तीन घटिका तक होती है, तो वह संदिग्ध एकादशी कही गयी है। धर्म और अर्थ के नाश करनेवाली उस एकादशी को छोडना चाहिए।

पुत्रपौत्रविवृद्ध्यर्थं द्वादश्यामुपावसयेत्।
तत्र क्रतुशतं पुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणम्॥१३८॥

अन्वयः [संदिग्धैकादशी को छोड़कर] **पुत्र–पौत्र–विवृद्ध्यर्थं** (पुत्र–पौत्रादि–सन्तति की अभिवृद्धि हेतु) **द्वादश्यां** (उस के दूसरे द्वादशी के दिन) **उपवासयेत्** (उपवास करना चहिये।) **तत्र** (उस

द्वादशी दिन उपवास करने पर) **क्रतुशतं पुण्यं** (एक सौ सोम–यागों का पुण्य प्राप्त होता है।) [तथा] **त्रयोदश्यां तु** (त्रयोदशी दिनहीं) पारण (पारण [उपवास समाप्ति भोजन]) [करना चाहिए।]

अनुवादः संदिग्धैकादशी को छोड़कर पुत्र–पौत्रादि–सन्तति की अभिवृद्धि हेतु उस के दूसरे द्वादशी के दिन उपवास करना चहिये। उस द्वादशी दिन उपवास करने पर एक सौ सोम–यागों का पुण्य प्राप्त होता है। तथा त्रयोदशी दिनहीं पारण (उपवास समाप्ति–भोजन) करना चाहिए।

विशेष व्याख्याः सूर्योदय से पूर्व चार घटिका तक एकादशी होने पर ही उपवास करना चाहिए। यदि तीन घटिका पूर्व से ही एकादशी तिथि होती है तो उस को संदिग्धैकादशी कहा गया है। उस दिन भी उपवास नहीं करना चाहिए। किन्तु दूसरे दिन, जो द्वादशी हैं, में ही उपवास करना चाहिए। तथा त्रयोदशी दिन उपवास समाप्ति का पारणा करनी चाहिए। ऐसे करने से एक सौ सोमयाग करने का फल प्राप्त होता है तथा पुत्रपौत्रादियों की अभिवृद्धि होती है।

उदयात्प्राग्द्विघटिकाव्यापिन्यैकादशी यदा।
संकीर्णैकादशी नाम वर्ज्या धर्मार्थकाङ्क्षिभिः॥१३९॥

अन्वयः यदा (जिस दिन) **उदयात् प्राक्** (सूर्योदय से पूर्व में) **एकादशी** (एकादशी तिथि) **द्वि–घटिका–व्याापिनी** (दो घटिका तक व्याप्त होती है, वह) **संकीर्णैकादशी नाम** (संकीर्णैकादशी कही गयी है।) **धर्मार्थ–काङ्क्षिभिः** (धर्म और अर्थ की कामना करनेवाले लोगों को उसे) **वर्ज्या** (छोड़ना चाहिए।)

अनुवादः जिस दिन सूर्योदय से पूर्व में एकादशी तिथि दो घटिका तक व्याप्त होती है, वह संकीर्णैकादशी कही गयी है। धर्म और अर्थ की कामना करनेवाले लोगों को उसे छोड़ना चाहिए।

पुत्रराज्यविवृद्ध्यर्थं द्वादश्यामुपावसनम्।
तत्र क्रतुशतं पुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणम्॥१४०॥

अन्वयः पुत्रराज्यविवृद्ध्यर्थं (पुत्र-पौत्रादि-सन्तति की तथा राज्य इत्यादि की अभिवृद्धि हेतु) **द्वादश्यां** (द्वादशी के दिन) **उपवासनं** (उपवास करना चाहिए।) **तत्र** (ऐसे द्वादशी दिन उपवास करने पर) **क्रतुशतं पुण्यं** (एक सौ सोमयागों का पुण्य प्राप्त होता हैं) [तथा] **त्रयोदश्यां** (त्रयोदशी के दिन) **पारणं** (पारणा करनी चाहिए।)

अनुवादः पुत्र-पौत्रादि-सन्तति की तथा राज्य इत्यादि की अभिवृद्धि हेतु द्वादशी के दिन उपवास करना चाहिए। ऐसे द्वादशी दिन उपवास करने पर एक सौ सोम-यागों का पुण्य प्राप्त होता हैं तथा त्रयोदशी के दिन पारण करना चाहिए।

दशमीमेषसंयुक्ता गान्धार्या समुपोषिता।
तस्याः पुत्रशतं नष्टं तस्मात्तां परिवर्जयेत्॥१४१॥

अन्वयः गान्धार्या (गान्धारी ने) **दशमी-शेष-संयुक्ता** (अरुणोदय काल में दशमी के कुछ अंशों से संयुक्त एकादशी के दिन) **समुपोषिता** (उपवास किया था।) [इस कारण से उनके] **पुत्रशतं** (सौ पुत्र) **नष्टं** (नष्ट हो गये थे।) **अतः तां** (दशमी-विद्धा एकादशी को) **परवर्जयेत् (**छोडना चाहिए।)

अनुवादः गान्धारी ने अरुणोदय काल में दशमी के कुछ अंशों से संयुक्त एकादशी के दिन उपवास किया था। इस कारण से उनके सौ पुत्र नष्ट हो गये थे। दशमी-विद्धा एकादशी को छोडना चाहिए।

(विशेष-व्याख्या श्लोक-संख्या १३९-१४१): अरुणोदय काल में दशमी-तिथि से युक्त एकादशी के दिन गान्धारी ने उपवास किया था। अतः उनके सौ पुत्र युद्ध में मर गये। इस लिये अरुणोदय काल में तीन घटिका तक दशमी से संयुक्त संदिग्धैकादशी तथा दो घटिका तक दशमी से संयुक्त संकीर्णैकादशी के दिन उपवास नहीं करना चाहिए। किन्तु उसके बाद द्वादशी दिन उपवास कर त्रयोदशी के दिन पारण करना चाहिए। पारण शब्द का अर्थ हैं—"उपवास के बाद किये जानेवाला भोजन।"

अपीषद्दशमीविद्धा तदा तां परिवर्जयेत्।
सुराबिनदुसमायुक्तं प्रवदन्ति मनीषिणः॥१४२॥

अन्वयः (एकादशी तिथि) **ईषत्** (किंचित् भी) **दशमी-विद्ध** (दशमी से संयुक्त होने पर) **तदा** (उस दिन) **तां** (उस एकादशी तिथि को) **परिवर्जयेत्** (छोड़ना चाहिए।) [क्यों कि] **सुरा-बिन्दु-समायुक्तां** (मदिरा के एक बूंद से युक्त अमृत जैसी वह एकादशी त्याज्य है।) [इस प्रकार] **मनिषिणः** (ज्ञानी लोग) **प्रवदन्ति** (बोलते है।)

अनुवादः एकादशी तिथि किंचित् भी दशमी से संयुक्त होने पर उस दिन उस एकादशी तिथि को छोड़ना चाहिए। क्यों कि मदिरा के एक बूंद से युक्त अमृत जैसी वह एकादशी त्याज्य है। इस प्रकार ज्ञानी लोग बोलते है।

विशेष व्याख्याः अमृत-कलश में एक बूंद मदिरा गिरने पर उस को छोड़ देते हैं। वैसे ही दशमी-तिथि से अत्यन्त अल्प-मात्रा में संयुक्त होने पर भी एकादशी को छोड़ना चाहिए।

बह्वागमविरोधेषु ब्राह्मणेषु विवादिषु।
उपोष्पा द्वादशी पुण्या त्रयोदश्यां तु पारणम्॥१४३॥

अन्वयः बह्वागमविरोधेषु (एकादशी तिथि का निर्णय करनेवाले गणित-शास्त्रों में परस्पर विरोध होने पर) [तथा] **ब्राह्मणेषु** (संप्रदाय-प्रवर्तक ब्राह्मणों में) **विवादिषु** (विवाद होने पर उस एकादशी को छोड़कर) **पुण्या** (पुण्यकर) **द्वादशी** (द्वांदशी के दिन) **उपोष्पा** (उपवास करना चाहिए।) **त्रयोदश्यां तु** (त्रयोदशी के दिन) **पारणं** (पारण करना चाहिए।)

अनुवादः एकादशी तिथि का निर्णय करनेवाले गणित-शास्त्रों में परस्पर विरोध होने पर तथा संप्रदाय-प्रवर्तक ब्राह्मणों में विवाद होने पर उस एकादशी को छोड़कर पुण्यकर द्वांदशी के दिन उपवास करना चाहिए। त्रयोदशी के दिन पारण करना चाहिए।

विशेष व्याख्याः एकादशी तिथि के निर्णय विविध संप्रदायों में विविध रीतियों से किया जाता है। इन गणितीय सिद्धान्तों में

विरोध होने से किसी एकादशी के बारे में विवाद हो सकता हैं उन शास्त्रों के व्याख्यान करने में संप्रदायज्ञ–ब्राह्मणों में भी विवदा (विवाद) हो सकता है। ऐसे होने पर उस विवादित एकादशी को छोड़कर द्वादशी के दिनहीं उपवास कर त्रयोदशी दिन पारणा करना चाहिए।

एकादश्यां तु विद्धायां संप्राप्ते श्रवणे तथा।
उपोष्या द्वादशी पुण्या पक्षयोरुभयोारपि॥१४४॥

अन्वयः [जिस प्रकार] **श्रवणे** (द्वादशी के दिन श्रवण–नक्षत्र) **संप्राप्ते** (होने पर द्वादशी के दिन भी उपवास करते है) **तथा** (उसी प्रकार) **उभयोः अपि पक्षयोः** (शुक्ल और कृष्ण––दोनों पक्षों में भी) **एकादश्यां तु** (एकादशी दिन) **विद्धयां** (दशमी तिथि से संयुक्त होने पर) **पुण्या** (पुण्यकर) **द्वादशी** (द्वादशी के दिन) **उपोष्या** (उपवास करना चाहिए।)

अनुवादः जिस प्रकार द्वादशी के दिन श्रवण–नक्षत्र होने पर द्वादशी के दिन भी उपवास करते है उसी प्रकार शुक्ल और कृष्ण––दोनों पक्षों में भी एकादशी दिन दशमी तिथि से संयुक्त होने पर पुण्यकर द्वादशी के दिन उपवास करना चाहिए।

उपरागसहस्त्राणि व्यतीपातायुतानि च।
अमालक्षं द्वादश्याः कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥१४५॥

अन्वयः उपरागसहस्त्राणि (चन्द्र अथवा सूर्य के एक हज़ार ग्रहण) [तथा] **व्यतीपातायुतानि च** (दस हजार व्यतीपात योग और) **अमालक्षं तु** (एक लाख अमावस्या तिथि भी **द्वादश्याः** (द्वादशी तिथि के) **षोडशीं कलां** (सोलहवें भाग के फल को न) **अर्हन्ति** (प्राप्त नहीं करते हैं।)

अनुवादः चन्द्र अथवा सूर्य के एक हज़ार ग्रहण तथा दस हजार व्यतीपात योग और द्वादशी तिथि के सोलहवें भाग के फल को न प्राप्त नहीं करते हैं।

विशेष व्याख्याः द्वादशी के दिन यद्यपि पारण ही विहित है। परन्तु कभी कभी वेधरहित शुद्धैकादशी के बाद द्वादशी के श्रवण

नक्षत्र से युक्त होने पर उस दिन भी उपवास ही करना चाहिए। पारण नहीं करना चाहिए। उसी प्रकार एकादशी विद्धा होने पर द्वादशी के दिन हीं उपवास करना चाहिए। क्यों कि एक हज़ार ग्रहण, दस हज़ार व्यतीपात योग, एक लाख अमावस्या तिथि इन सब से ही द्वादशी तिथि अत्यन्त उत्कृष्ट है। द्वादशी दिन किये गये उपवास का जो फल प्राप्त होता है, उस का सोलहवें भाग भी हज़ारों ग्रहण, व्यतीपात, लाखों अमावास्याओं से प्राप्त नहीं होता है।

शुद्धाऽपि द्वादशी ग्राह्या परतो द्वादशी यदि।
विषं तु दशमी ज्ञेयाऽमृतं चैकादशीतिथिः।
विषप्रधाना वर्ज्या साऽमृता ग्रह्या प्रयत्नतः॥१४६॥

अन्वयः [कभी वेधरहित एकादशी तिथि होने पर भी यदि किसी भी प्रसङ्ग में] **परतः** (उस एकादशी तिथि के बाद आनेवाली) **द्वादशी** (दूसरी द्वादशी होती है, उस प्रसङ्ग में एकादशी दिन जैसे उपवास दिन जैसे उपवास करते हैं, उसी प्रकार शुद्धा द्वादशी अपि) **ग्राह्या** (दोनों द्वादशियों में पहली द्वादशी के दिन भी उपवास करना चाहिए।)

अनुवादः कभी वेधरहित एकादशी तिथि होने पर भी यदि किसी भी प्रसङ्ग में उस एकादशी तिथि के बाद आनेवाली दूसरी द्वादशी होती है, उस प्रसङ्ग में एकादशी दिन जैसे उपवास दिन जैसे उपवास करते हैं, उसी प्रकार शुद्धा द्वादशी अपि दोनों द्वादशियों में पहली द्वादशी के दिन भी उपवास करना चाहिए।

विशेष व्याख्याः जिस प्रकार एकादशी उपवास के बाद द्वादशी के दिन श्रवण–नक्षत्र होने पर उस द्वादशी दिन में उपवास होता है, उसी प्रकार से यदि शुद्धा एकादशी के बाद आयी हुई द्वादशी–तिथि के बाद भी तीसरे दिन यदि द्वादशी के कुछ अंश बचते हैं, तब एकादशी के दिन भी, तथा उसके अगले दिन (प्रथम द्वादशी के दिन) भी उपवास करना चाहिए। उस के बाद

के दिन जो द्वितीय द्वादशी दिन है उसी में ही पारण करना चाहिए।

सर्वथा दशमी–संयुक्त एकादशी को छोड़ना चाहिए। क्यों कि दशमी तिथि विष–तुल्य हैं। विष–संपृक्त एकादशी के दिन उपवास नहीं करना चाहिए।

द्वादश्यां भोजनं चैव विद्धायां हर्युपोषणम्।
यः कुर्यान्मन्दबुद्धित्वान्निरयं सोऽधिगच्छति॥१४७॥

अन्वयः यः (जो पुरुष) **मन्दबुद्धित्वात्** (मूर्ख होने के कारण) **विद्धायां** (दशमी विद्धा एकादशी के दिन) **हर्युपोषणं** (भगवान् के प्रति भक्ति से उपवास तथा) **द्वादश्यां** (द्वादशी के दिन) **भोजनं च एव** (भोजन भी) **कुर्यात्** (करता है) **सः** (वह पुरुष) **निरयं** (नरक को) **अधिगच्छति** (प्राप्त करता है।)

अनुवादः जो पुरुष मूर्ख होने के कारण दशमी विद्धा एकादशी के दिन भगवान् के प्रति भक्ति से उपवास तथा द्वादशी के दिन भोजन भी करता है वह पुरुष नरक को प्राप्त करता है।

विशेष व्याख्याः जो पुरुष विद्धैकादशी के दिन उपवास कर द्वादशी के दिन भोजन करेगा, वह मन्दबुद्धि पुरुष नरक में गिरेगा।

यानि कानि च वाक्यानि विद्धोपास्यापराणि तु।
धनदार्चापराणि स्युर्वैष्णवी न दशायुता॥१४८॥

अन्वयः विद्धोपास्यापराणि (विद्धैकादशी के दिन उपवास को बोधन करनेवाले) **यानि कानि च** (जो कुछ) **वाक्यानि** (वाक्य पुराणादियों में मिलते हैं, वे वाक्य) **धनदार्चापराणि स्युः** (अन्य देवताओं अर्चना–परक ही होंगे, क्यों कि) **दशायुता** (दशमी से युक्त एकादशी) **वैष्णवी न** (भगवान् विष्णु के प्रीतिकर नहीं हैं।)

अनुवादः विद्धैकादशी के दिन उपवास को बोधन करनेवाले जो कुछ वाक्य पुराणादियों में मिलते हैं, वे वाक्य अन्य देवताओं अर्चनापरक ही होंगे, क्यों कि दशमी से युक्त एकादशी विष्णु भगवान् के प्रीतिकर नहीं हैं।

अथवा मोहनार्थाय मोहिन्या भगवान् हरिः।

अर्थितः कारयामास व्यासरूपी जनार्दनः॥१४९॥

अन्वयः अथवा (अथवा) **मोहनार्थाय** (अयोग्य-जनताओं के वञ्चनार्थ) **मोहिन्या** (रुक्माङ्गद राजा की पत्नी मोहिनी से) **अर्थितः** (प्रार्थित) **व्यासरूपी जनार्दनः** (वेदव्यास जी के रूप धारण किये हुऐ भगवान् श्रीकृष्णजी ने ये विद्धोपवास-परक-वाक्यों को) **कारयामास** (बनवाया है।)

अनुवादः अथवा अयोग्य-जनताओं के वञ्चनार्थ रुक्माङ्गद राजा की पत्नी मोहिनी से प्रार्थित वेदव्यास जी के रूप धारण किये हुऐ भगवान् श्रीकृष्णजी ने ये विद्धोपवास-परक-वाक्यों को बनवाया है।

धनदार्चाविवृद्ध्यर्थं महावित्तलयस्य च।
असुराणां मोहनार्थं पाषण्डानां विवृद्धये।
आत्मस्वरूपाविज्ञप्त्यै स्वलोकाप्राप्तये तथा॥१५०॥

अन्वयः धनदार्चाविवृद्ध्यर्थं (अन्य देवताओं की उपासना को बढ़ावा देने हेतु) **महावित्तलयस्य च** (वास्तविक रूप में बड़ी मात्रा में धननाश के लिये ही और) **असुराणां** (राक्षसों को) **मोहनार्थं** (मोहित करने हेतु तथा) **पाखण्डानां विवृद्धये** (पाशुपत इत्यादि पाखण्डों को ज्यादा करने हेतु तथा) **आत्मस्वरूपाविज्ञाप्त्यै** (अपने निजस्वरूप को आवृत करने हेतु तथा) **स्वलोकाप्राप्तये** (अपने निजलोक वैकुण्ठ के मार्ग से असुरों को च्युत करने हेतु व्यासरूपी भगवान् ने ही विद्धोपवास परकवाक्यों को बनवा कर यत्र तत्र प्रचलित करवाया है।)

अनुवादः अन्य देवताओं की उपासना को बढ़ावा देने हेतु वास्तविक रूप में बड़ी मात्रा में धननाश के लिये ही और राक्षसों को मोहित करने हेतु, तथा पाशुपत इत्यादि पाखण्डों को ज्यादा करने हेतु, तथा अपने निजस्वरूप को आवृत करने हेतु, तथा अपने निजलोक वैकुण्ठ के मार्ग से असुरों को च्युत करने हेतु व्यास-रूपी भगवान् ने ही विद्धोपवास परकवाक्यों को बनवा कर यत्र तत्र प्रचलित करवाया है।

(विशेष-व्याख्या श्लोक-संख्या १४८-१५०): रुक्माङ्गद राजा ने सब प्रजाओं को एकादशी उपवास की शिक्षा प्रदान की थी। उस से अयोग्य असुर-राक्षस इत्यादि भी भगवद्भक्तिमार्ग में आ गये थे। रुक्माङ्गद राजा की पत्नी मोहिनी इस से चिन्तित होकर व्यास जी से प्रार्थना की कि हे प्रभो! दुष्ट लोगों को सन्मार्ग से भ्रष्ट करें। मोहिनी से प्रार्थित व्यासजी ने विद्धैकादशी उपवास परक वाक्यों को सर्वत्र प्रचलित किया ताकि दुष्ट लोग विद्धैकादशी उपवास कर दुर्गति प्राप्त कर लें।

ऐसे कई वाक्यों में यह बताया गया हे कि विद्धैकादशी उपवास करने से कुबेर इत्यादि देवताएं प्रसन्न हो जायेंगे। तथा उपवासी लोगों को बहुत धन की प्राप्ति होगी। अतः धनेच्छुक लोग विद्धैकादशी उपवास करने लग गये हैं। परन्तु वस्तुतः विद्धैकादशी उपवास करने से धन-क्षय ही होता है।

विद्धैकादशी उपवास करने से विष्णु-लोक-प्राप्ति-मार्ग से लोग भ्रष्ट होते हैं तथा कदापि भगवान् के स्वरूप को जान नहीं पायेंगे। अतः केवल पाशुपत इत्यादि पाखण्डी लोग ही विद्धैकादशी उपवास करते हैं। परन्तु विद्धैकादशी से कदाचित् भी भगवान् विष्णु की प्राप्ति नहीं होगी, किन्तु कोप ही होगा। अतः विद्धैकादशी उपवास को करना नहीं चाहिए।

एवं विद्धां परित्यज्य द्वादश्यामुपावासनात्।
कोटिजन्मार्जितं पापमेकयैव विनश्यति॥१५१॥
ततः कोटिगुणं वाऽपि निषिद्धस्पेतरैर्जनैः।

अन्वयः एवं (इस प्रकार) **विद्धां** (विद्धैकादशी को) **परित्यज्य** (छोडकर) **द्वादश्यां** (द्वादशी के दिन) **उपवासनात्** (उपवास करने से) **कोटिजन्मार्जितं पापं** (एक कोटि जन्मों से अर्जित किया गया) **पापं** (पापफल) **एकया एव** (एक ही द्वादशी से) **विनश्यति** (नष्ट हो जाता हे।) **इतरैः** (विद्धैकादशी के दिन उपवास करने वाले अलग) **जनैः** (लोगों से) **निषिद्धस्य** ('शुद्ध द्वादशी के दिन उपवास नहीं करना चाहिए' इस प्रकार निवारित

होने पर भी जो पुरुष विद्धैकादशी को छोड़कर द्वादशी के दिन उपवास करता है उस का) **ततः** (कोटिजन्मों में अर्जित पाप से भी) **कोटिगुणं वा अपि** (और कोटिगुण ज्यादा होने पर भी वह पाप नष्ट हो जाता है।)

अनुवादः इस प्रकार विद्धैकादशी को छोडकर द्वादशी के दिन उपवास करने से एक कोटि जन्मों से अर्जित किया गया पापफल एक ही द्वादशी से नष्ट हो जाता हे। विद्धैकादशी के दिन उपवास करने वाले अलग लोगों से 'शुद्ध द्वादशी के दिन उपवास नहीं करना चाहिए' इस प्रकार निवारित होने पर भी जो पुरुष विद्धैकादशी को छोड़कर द्वादशी के दिन उपवास करता है, उस का कोटिजन्मों में अर्जित पाप से भी और कोटिगुण ज़्यादा होने पर भी वह पाप नष्ट हो जाता है।

विशेष व्याख्याः दूसरे लोगों के द्वारा निवारित होने पर भी जिस पुरुष ने विद्धैकादशी को छोड़कर द्वादशी के दिन उपवास किया है, उस का कोटिजन्मों में संचित किया गया पाप या उस से और कोटि-गुण ज़्यादा पाप भी तत्क्षण नष्ट हो जाता है।

यदनादिकृतं पापं यदूर्ध्वं यत्करिष्यति॥१५२॥
तत्सर्वं विलयं याति परेषामुपवासनात्।
न च तस्मात्प्रियतमः केशवस्य ममापि वा॥१५३॥

अन्वयः यत् (जो) **अनादिकृतं पापं** (अनादिकाल से किया गया पाप है) **तत्** (वह पाप और) **ऊर्ध्वं** (अगले जन्मों में) **यत्** (जिस पाप को) **करिष्यति** (करता है) **तत् सर्वं** (वह सब पाप) **परेषाम् उपवासनात्** (दूसरे लोगों से उपवास करवाने से) **विलयं याति** (नष्ट हो जाता हैं) **केशवस्य** (विष्णु भगवान् को) **मम अपि वा** (मुझे [शंकर भगवान् को भी]) **तस्मात्** (उक्त पुरुष से) **प्रियतमः** (प्रिय पुरुष) [कोई] **न च** (नहीं है।)

अनुवादः जो अनादि-काल से किया गया पाप है, वह पाप और अगले जन्मों में जिस पाप को करता है, वह सब पाप दूसरे लोगों से उपवास करवाने से नष्ट हो जाता हैं। भगवान् विष्णु को

और मुझे (भगवान् शंकर को भी) उक्त पुरुष से प्रिय पुरुष कोई नहीं है।

विशेष व्याख्याः केवल स्वयं विद्धैकादशी छोड़ना ही नहीं, बल्कि अपने शिष्य-छात्र-बन्धु इत्यादि को भी उपदेश देकर विद्धैकादशी छुडवाकर द्वादशी के दिन उपवास करवाना अत्यन्त आवश्यक हैं। इस से पूर्व-जन्मों में किया गया पाप तथा उत्तर-जन्मों में किया जानेवाला पाप भी नष्ट हो जाता है। ऐसे उपदेष्टा पुरुष ही विष्णुजी तथा शंकरजी का अत्यन्त प्रिय होगा। उस से प्रिय कोई नहीं बनेगा।

एकादश्यां ह्यवेधे तु द्वादशीं न परित्यजेत्।
पारणे मरणे चैव तिथिस्तात्कालिकी स्मृता॥१५४॥

अन्वयः एकादश्यां हि (एकादशी के दिन) **अवेधे तु** (दशमी वेध न होने पर तो) **द्वादशीं** (द्वादशी को) **न परित्यजेत्** (छोड़ना नहीं चाहिए।) **क्यों कि पारणे** (व्रतसमाप्ति भोजन में) [तथा] **मरणे** (मरण काल में) **तात्कालिकी** (उसी समय में रहनेवाली तिथि को ही) **स्मृता** (ग्रहण करना चाहिए। यह स्मृतियों में कहा गया है।)

अनुवादः एकादशी के दिन दशमी वेध न होने पर तो द्वादशी को छोड़ना नहीं चाहिए। व्रतसमाप्ति भोजन में तथा मरण काल में उसी समय में रहनेवाली तिथि को ही ग्रहण करना चाहिए। यह स्मृतियों में कहा गया है।

विशेष व्याख्याः कुछ पुराणों में कहा गया है कि द्वादशी तिथि के दिन उपवास न करते हुए पारण ही करनी चाहिए। उन पुराणों का अभिप्राय यह है कि एकादशी के दिन दशमी-वेध न होने पर द्वादशी-पारण को छोड़ना नही चाहिए। अतः विद्धैकादशी को छोड़ने पर उन पुराणों का विरोध नहीं है।

हमेश मरण-काल में जैसे तात्कालिक तिथि को देखा जाता है, न तु सूर्योदय-व्यापिनी तिथि को, वैसे ही पारणा काल में तात्कालिक तिथि को ही देखते हुए पारण करना चाहिए।

ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थो यतिस्तथा।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो भर्तृमती तथा॥१५५॥
अभर्तृका तथाऽन्ये च सूतवैदेहिकादिकादयाः।
एकादश्यां न भुंञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि॥१५६॥

अन्वयः ब्रह्मचारी (ब्रह्मचारी) गृहस्थो वा (गृहस्थ भी हो) **वानप्रस्थः** (अरण्य में निवास करनेवाले वानप्रस्थाश्रमी हो) **तथा** (उसी प्रकार) **यतिः** (संन्यासी) — इस प्रकार चारों आश्रमी लोग **तथा ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रः** (ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों के लोग) **तथा भर्तृमती** (सुवासिनी स्त्री) **तथा** (और) **अभर्तृका** (विधवा स्त्री भी) **अन्ये** (इतर) **सूतवैदेहिकादयः** (वर्णबाह्य सूत वैदेहिक इत्यादि लोगों को भी) **उभयोः अपि पक्षयोः** (शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षों में भी) **एकादश्यां** (एकादशी के दिन) **न भुञ्जीत** (भोजन नहीं करना चाहिए।)

अनुवादः ब्रह्मचारी, गृहस्थ, अरण्य में निवास करनेवाले वानप्रस्थाश्रमी, तथा संन्यासी--इस प्रकार चारों आश्रमी लोग, तथा ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र--इन चारों वर्णों के लोग, तथा सुवासिनी स्त्री और विधवा स्त्री भी, इतर वर्ण-बाह्य सूत, वैदेहिक इत्यादि लोगों को भी, शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षों में एकादशी के दिन भोजन नहीं करना चाहिए।

विशेष व्याख्याः चारों वर्णों के तथा चारों आश्रमों के लोगों, तथा वर्णबाह्य क्षत्रिय से ब्राह्मण स्त्री में उत्पन्न सूत, वैश्य से ब्राह्मण स्त्री में उत्पन्न वैदेहिक, शूद्र से ब्राह्मण स्त्री में उत्पन्न चण्डाल इत्यादि लोगों को भी दोनों पक्षों एकादशी उपवास करना चाहिए। 'शुक्लपक्ष एकादशी को ही एकादशी उपवास करना चाहिए'—यह कुछ लोगों का मत है। परन्तु यह अभिप्राय गलत है। शंकरजी के इस वचन के अनुसार दोनों भी पक्षों में उपवास करना अनिवार्य है।

एकादश्यां तु यो भुङ्क्ते मोहेनावृतचेतसा।
शुक्लयामथ कृष्णायां निरयं याति स ध्रुवम्॥१५७॥

अन्वयः शुक्लायां (शुक्लैपक्षैकादशी के दिन) [अथवा] **कृष्णायां एकादश्यां** (कृष्णपक्षैकादशी के दिन) **मोहेन आवृतचेतसा** (मिथ्याज्ञान से ग्रसित मन से) **यः** (जो पुरुष) **भुङ्क्ते** (भोजन करता है) **सः** (वह पुरुष) **ध्रुवं** (निश्चितरूप से) **निरयं** (नरक को) **याति** (प्राप्त करता है।)

अनुवादः शुक्लैपक्षैकादशी के दिन अथवा कृष्णपक्षैकादशी के दिन मिथ्याज्ञान से ग्रसित मन से जो पुरुष भोजन करता है वह पुरुष निश्चितरूप से नरक को प्राप्त करता है।

विशेष व्याख्याः दोनों पक्षों का भी एकादशी तिथियों में यदि कोई भोजन करता हैं, तो निश्चित-रूप से नरक में गिरता हैं, अतः शुक्ल-कृष्ण-भेद न करते हुए दोनों एकादशियों में उपवास करना चाहिए।

विवेचयति यो मोहाच्छुक्ला कृष्णेति पापकृत्।
एकादशीं स वै याति निरयं नात्र संशयः॥१५८॥

अन्वयः यः पापकृत (जो पापी पुरुष) **मोहात्** (अज्ञान से) **एकादशीं** (एकादशी को) **शुक्ला कृष्णा इति** ('यह शुक्ला एकादशी है' 'यह कृष्ण एकादशी है' इस प्रकार से) **विवेचयति** (भेद करता है) **सः** (वह पुरुष) **वै** (निश्चितरूप से) **निरयं याति** (नरक को प्राप्त करता है।) **अत्रः** (इस विषय में) **न संशयः** (कोई संशय नहीं है।)

अनुवादः जो पापी पुरुष अज्ञान से एकादशी को 'यह शुक्ला एकादशी है', 'यह कृष्ण एकादशी है'--इस प्रकार से भेद करता है, वह पुरुष निश्चित-रूप से नरक को प्राप्त करता है। इस विषय में कोई संशय नहीं है।

यथा गौर्नैव हन्तव्या शुक्ला कृष्णेति भामिनी।
एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि॥१५९॥

शब्दार्थः हे भामिनि (हे पार्वती देवी!) **यथा** (जिस प्रकार) **शुक्ला गौः** (सफेद गाय को) **न हन्तव्या** (मारना नहीं चाहिए उसी

प्रकार) **कृष्णा गौः** (काली गाय को भी **न) हन्तव्या** (मारना नहीं चाहिए। उसी प्रकार शुक्ल-कृष्ण भेद न करते हुए) **उभयोः अपि पक्षयोः** (दोनों भी पक्षों में) **एकादश्यां** (एकादशी के दिन) **न भुञ्जीत** (भोजन नहीं करना चाहिए।)

अनुवादः हे पार्वती देवी! जिस प्रकार सफेद गाय को मारना नहीं चाहिए, उसी प्रकार काली गाय को भी मारना नहीं चाहिए। उसी प्रकार शुक्ल-कृष्ण भेद न करते दोनों भी पक्षों में एकादशी के दिन भोजन नहीं करना चाहिए।

शंकरः-

यानि कानि च वाक्यानि कृष्णैकादशिवर्जने।
भरण्यादिनिषेधे च तानि काम्यफलार्थिनाम्॥१६०॥

अन्वयः कृष्णैकादशिवर्जने (कृष्ण एकादशी उपवासनिषेधपरक) तथा **भरण्यादि-निषेधे** (भरणी नक्षत्र युक्त एकादशी निषेध-परक) **यानि कानि च वाक्यानि** (जो कुछ भी वाक्य उपलब्ध हैं) **तानि** (वे वाक्य) **काम्यकलार्थिनाम्** (किसी काम्य फल को उद्देश्य कर उपवास करनेवाले लोगों के लिये है।)

अनुवादः कृष्ण एकादशी उपवास-निषेध-परक तथा भरणी-नक्षत्र-युक्त एकादशी निषेध-परक जो कुछ भी वाक्य उपलब्ध हैं, वे वाक्य किसी काम्य फल को उद्देश्य कर उपवास करनेवाले लोगों के लिये है।

(विशेष-व्याख्या श्लोक-संख्या १५८-१६०): गोमाता अत्यन्त पूजनीय है। सफेद गाय या काली गाय--इस प्रकार से गोमाता में भेद नहीं किया जाता है। वैसे ही कृष्णैकादशी या शुक्लैकादशी इन दोनों में भेद करना उचित नहीं है। ऐसे भेद करनेवाला नरक में गिरता हैं। अतः दोनों एकादशी दिनों में उपवास अवश्य करना चाहिए।

कुछ लोग किसी फल की कामना करते हुए एकादशी उपवास करते हैं। 'गृहस्थ लोगों को कृष्णा एकादशी में उपवास नहीं करना चाहिए' इस प्रकार के जो कृष्णैकादशी तथा

भरणीयुक्त-एकादशी में उपवास निषेध-परक वाक्य मिलते हैं। वे सारे वाक्य केवल काम्यफलार्थी पुरुषों के लिये ही है। जो लोग किसी भी फल की कामना के बिना केवल विष्णुप्रीत्यर्थ उपवास करते हैं, इन लोगों को कृष्ण-शुक्ल भेद नहीं है।

कामिनोऽपि हि नित्यार्थं कुयुरेवोपवासनम्॥
प्रीणनाय हरेर्नित्यं न तु कामव्यवेक्षया॥१६१॥

अन्वयः कामिनः अपि (किसी कामना से उपवास करने वाले लोग भी) **नित्यार्थं** (कृष्ण एकादशी में उपवास न करने से संभावित पाप परिहार हेतु तथा) **नित्यं** (प्रतिदिन) **हरेः** (भगवान् की) **प्रीणनार्थं** (प्रीति हेतु ही) **उपवासनं कुर्युः** (उपवास करें,) **न तु कामव्यपेक्षया** (किसी कामना की अपेक्षा से उपवास नहीं करना चाहिए।)

अनुवादः किसी कामना से उपवास करने वाले लोग भी प्रतिदिन भगवान् की प्रीति हेतु ही उपवास करें, किसी कामना की अपेक्षा से उपवास नहीं करना चाहिए।

तस्माच्छुक्लमथो कृष्णां भरण्यादियुतामपि॥
प्रत्यवायनिषेधार्थमुपवासीत नित्यशः॥१६२॥

अन्वयः तस्मात् (पूर्वोक्त कारणों से) **प्रत्यवाय-निषेर्धार्थ** (पापपरिहारार्थ) **शुक्लां** (शुक्लैकादशी को) **कृष्णां** (कृष्णैकादशी को) **भरण्यादियुतामपि (**भरणी नक्षत्र से युक्त एकादशी के दिन भी) **नित्यशः** (अनिवार्यतया) **उपवासीत** (उपवास करना चाहिए।)

अनुवादः पूर्वोक्त कारणों से पापपरिहारार्थ शुक्लैकादशी को और कृष्णैकादशी को, भरणी-नक्षत्र से युक्त एकादशी के दिन भी, अनिवार्यतया उपवास करना चाहिए।

विशेष व्याख्याः जो लोग किसी कामना को उद्दिष्ट कर एकादशी उपवास करते हैं, उन लोगों को भी दोनो एकादशियों में उपवास करना चाहिए क्यों कि कृष्णैकादशी में उपवास न करने

पर पाप संचित होता है। इस पाप का परिहारार्थ विष्णुभगवान् के प्रीत्यर्थ दोनों एकादशियों में उपवास करना चाहिए।

कला वा घटिका वाऽपि परतो द्वादशी यदि॥
द्वादशद्वादशीर्हन्ति पूर्वेद्युः पारणे कृते॥१६३॥

अन्वयः यदि (किसी भी प्रसङ्ग में) **परतः** (द्वादशी के अगले दिन भी) **कला वा** (एक कला तक) **घटिका वा अपि** (एक घटिका तक भी द्वादशी तिथि अवशिष्ट होती है, उस प्रसङ्ग में) **पूर्वेद्युः (**प्रथम द्वादशी के दिन) **पारणे कृते** (पारण करने पर) **द्वादशद्वादशीः** (बारह द्वादशियों के पारणा–फल को) **हन्ति** (नष्ट करती है।)

अनुवादः किसी भी प्रसङ्ग में द्वादशी के अगले दिन भी एक कला तक, एक घटिका तक भी द्वादशी तिथि अवशिष्ट होती है, उस प्रसङ्ग में, प्रथम द्वादशी के दिन पारण करने पर, बारह द्वादशियों के पारणा–फल को नष्ट करती है।

अतिरिक्ता द्वादशी चेद्यस्तां नोपोषयेद्यदि।
द्वादशा द्वादशीर्हन्ति द्वादशी चातिलङ्घिता॥१६४॥

अन्वयः यदि (किसी प्रसङ्ग में एक द्वादशी के बाद अतिरिक्ता) **द्वादशी चेत्** (और एक द्वादशी होने पर) **यः (**जो पुरुष) **तां** (उस प्रथम द्वादशी के दिन) **न उपोषयेत्** (उपवास नहीं करता हैं तो) **अतिलङ्घिता** (छोडी गयी) **द्वादशी** (वह प्रथम द्वादशी) **द्वादश द्वादशी**ः (बारह द्वादशी पारणा फल को) **हन्ति** (नष्ट करती है।)

अनुवादः किसी प्रसङ्ग में एक द्वादशी के बाद अतिरिक्ता और एक द्वादशी होने पर जो पुरुष उस प्रथम द्वादशी के दिन उपवास नहीं करता हैं, तो छोडी गयी वह प्रथम द्वादशी बारह द्वादशी पारणा फल को नष्ट करती है।

द्वादश्यामतिरिक्तयां यो भुङ्क्ते पूर्ववासरे॥
द्वादश द्वादशर्हन्ति द्वादशी न परित्यजेत्॥१६५॥

अन्वयः [एक द्वादशी के बाद] **अतिरिक्तायां** (एक और) **द्वादश्यां** (द्वादशी होने पर) **यः** (जो पुरुष) **पूर्ववासरे** (प्रथम द्वादशी के दिन) **भुङ्क्ते** (भोजन करता है) तो **द्वादश द्वादशीः हन्ति** (बारह द्वादशियों के पारण फल को नष्ट करता है।) **अतः द्वादशीं** (उस प्रथम उपवास को) **न परित्यजेत्** (छोडना नहीं चाहिए।)

अनुवादः [एक द्वादशी के बाद] **अतिरिक्तायां** (एक और) **द्वादश्यां** (द्वादशी होने पर) **यः** (जो पुरुष) **पूर्ववासरे** (प्रथम द्वादशी के दिन) **भुङ्क्ते** (भोजन करता है) तो **द्वादश द्वादशीः हन्ति** (बारह द्वादशियों के पारण फल को नष्ट करता है।) **अतः द्वादशीं** (उस प्रथम उपवास को) **न परित्यजेत्** (छोडना नहीं चाहिए।)

(विशेष-व्याख्या श्लोक-संख्या १६३-१६५): कदाचित शुद्धैकादशी के बाद जो द्वादशी दिन है उसके अनन्तर दिन में (त्रयोदशी के दिन में) भी यदि एक कला (एक घटिका का १/६० भाग) या एक घटिका तक द्वादशी तिथि होती है, तब एकादशी-दिन उपवास के बाद प्रथम द्वादशी के दिन भी उपवास करना चाहिए। इन दोनों द्वादशी तिथियों में प्रथम द्वादशी को अतिरिक्तैकादशी कहलाया गया है। प्रथम द्वादशी के दिन उपवास न करने पर बारह द्वादशियों में पारण करने का पुण्यफल नष्ट हो जाता है। अतः अतिरिक्तैकादशी के दिन भी उपवास करना चाहिए।

द्वादशीं श्रवणोपेतां यो नोपोष्यात् सुमन्दधीः।
पंचसंवत्सरकृतं पुण्यं तस्य विनश्यति॥१६६॥

अन्वयः श्रवणोपेतां (श्रवणनक्षत्र से युक्त) **द्वादशी** (द्वादशी दिन को) **यः** (जो पुरुष) **न उपोष्यात्** (उपवास नहीं करता है) **सः** (वह पुरुष) **मूढधीः** (मूर्ख है।) **तस्य** (उस पुरुष का) **पञ्चसंवत्सरकृतं पुण्यं** (पांच सालों में संचित किया गया पुण्य) **विनश्यति** (नष्ट हो जाता है।)

अनुवादः श्रवण-नक्षत्र से युक्त द्वादशी दिन को जो पुरुष उपवास नहीं करता है, वह पुरुष मूर्ख है। उस पुरुष का पांच सालों में संचित किया गया पुण्य नष्ट हो जाता है।

एकादशीमुपोष्याथ द्वादशीमप्युपोषयेत्।
न तत्र विधिलोपः स्यादुभयोर्देवता हरिः॥१६७॥

अन्वयः [द्वादशी के दिन श्रवण नक्षत्र होने पर] **एकादशीम् उपोष्य** (एकादशी के दिन उपवास कर) **अथ** (अनन्तर) **द्वादशीम् अपि** (श्रवण-नक्षत्र-युक्त द्वादशी के दिन भी) **उपोषयेत्** (उपवास करना चाहिए।) **तत्र** (इस प्रकार श्रवण-द्वादशी उपवास करने पर) **विधिलोपः** (द्वादशीपारणा विधि का लोप) **न स्यात्** (नहीं होगा। क्यों कि) **उभयोः** (एकादशी तथा श्रवणनक्षत्रयुक्तद्वादशी इन दोनों का) **हरिः** (विष्णु-भगवान् ही) **देवता** (अभिमानी देवता है।)

अनुवादः द्वादशी के दिन श्रवण-नक्षत्र होने पर एकादशी के दिन उपवास कर, अनन्तर श्रवण-नक्षत्र-युक्त द्वादशी के दिन भी उपवास करना चाहिए। इस प्रकार श्रवण-द्वादशी उपवास करने पर द्वादशी-पारण-विधि का लोप नहीं होगा। क्यों कि एकादशी तथा श्रवण-नक्षत्र-युक्त-द्वादशी इन दोनों के भगवान् विष्णु ही अभिमानी देवता है।

विशेष व्याख्याः अतिरिक्ततैकादशी व्रत जैसे पुण्यकर है, उस से भी ज़्यादा पुण्यकर श्रवण-द्वादशी उपवास हैं। एकादशी के बाद द्वादशी के दिन श्रवण-नक्षत्र होने पर उस को श्रवण-द्वादशी कहते हैं। श्रवण-नक्षत्र भगवान् विष्णु का नक्षत्र होने के कारण श्रवण-द्वादशी उपवास विष्णु को अतीव प्रीतिकर हैं। उस दिन उपवास न करने पर पूरे पांच साल में अर्जित किया गया पुण्य नष्ट हो जाता है। श्रवण-नक्षत्र-युक्त द्वादशी के दिन उपवास के पर भी कोई दोष नहीं होता है।

अल्पायामपि विप्रेन्द्र पारणं तु कथं भवेत्।
पारयित्वोदकेनापि भुञ्जानो नैव दुष्यति॥१६८॥
आशिताऽनशिता यस्मादापो विद्वद्भिरीरिताः।

अम्भसा केवलेनैव करिष्ये व्रतपारणम्।
तद्वरिष्ठं मुनिप्रोक्तम् अशितानशितं च यत्॥१६९॥

अन्वय (श्लोक १६८): विप्रेन्द्र (हे मुनिश्रेष्ठ!) **अल्पायां अपि** (द्वादशी तिथि अत्यन्त कम होने पर उतनी कम समय में) **पारणं तु** (पारण तो) **कथं भवेत्** (कैसे हो सकता है?)

प्रश्नः हे मुनिश्रेष्ठ! द्वादशी तिथि अत्यन्त कम होने पर उतनी कम समय में पारण तो कैसे हो सकता है?

अन्वय (श्लोक १६९): उदकेनापि (पानी से भी) **पारयित्वा** (पारणा कर) **भुञ्जानः** (उस के बाद भोजन करनेवाले पुरुष को) **नैव दुष्यति** (कोई दोष नहीं होता है। क्यों कि) **आपः** (चरणामृत का जल) **अशितानशिताः** (भक्षित अथवा अभक्षित ऐसे) **विद्वद्भिः** (विद्वानों के द्वारा) **कथिताः** (कहा गया है।) ["इसलिये] **केवलेन अम्भासा** (केवल चरणामृत जल से ही) **व्रतपारणं** (एकादशी व्रत का पारण) **करिष्ये** (करूंगा") [इस प्रकार] **मुनिप्रोक्तं** (अम्बरीष मुनि के द्वारा बताया गया) **यत्** (जो) **अशितानशितं** (भक्षित अथवा अभक्षित पानी है) **तत्** (वह) **वरिष्ठं** (अत्यन्त श्रेष्ठ है।)

उत्तर—पानी से भी पारणा कर उस के बाद भोजन करनेवाले पुरुष को कोई दोष नहीं होता है। क्यों कि चरणामृत का जल भक्षित अथवा अभक्षित ऐसे विद्वानों के द्वारा कहा गया है। इसलिये केवल चरणामृत जल से ही एकादशी व्रत का पारण करूंगा", इस प्रकार अम्बरीष मुनि के द्वारा बताया गया जो भक्षित अथवा अभक्षित पानी (चरणामृत) है, वह अत्यन्त श्रेष्ठ है।

(विशेष-व्याख्या श्लोक-संख्या १६८-१६९): कदाचित् अम्बरीष राजा एकादशी उपवास कर द्वादशी-पारण हेतु सन्नद्ध (तैयार) हो रहे थे। उसी समय दुर्वासा ऋषि स्नान किये बिना वहाँ पधारे। तदा अम्बरीष जी उभय-संकट में पड़ गये। अकेले स्वयं पारण करने पर ऋषि जी के कोप के पात्र हो जाते हैं। पारण न करने पर पारणाभङ्ग दोष होता है, क्यों कि उस दिन द्वादशी तिथि अत्यन्त अल्पकाल तक ही थी। इस उभय-संकट से

बचने के लिये अम्बरीष जी ने एक उपाय सोच लिया कि केवल चरणामृत जल से पारण किया जाए ताकि पारणाभङ्ग न होगा। चरणामृत जल को पीने पर भी न पीने के बराबर ही है। अतः ऋषि-कोप से भी बच सकते हें। इस उपाय से अम्बरीष जी उभय-संकट से बच गये थे। यह कथा भागवत में प्रसिद्ध हैं। अतः अल्प-द्वादशी होने पर केवल चरणामृत जल से भी पारण किया जा सकता है।

संप्रति (अभी) एकादशी की महत्ता का वर्णन कर रहे हैं।

न काशी न गया गङ्गा न रेवा न च गौतमी।
न चापि कौरवं क्षेत्रं तुल्यं भूप हरेर्दिनात्॥१७०॥

अन्वयः भूप (हे राजन्!) **हरेः दिनात्** (एकादशी दिन के) **न काशी, न गया, न गङ्गा, न रेवा, न च पुष्करं, न चापि कौरवं क्षेत्रं तुल्यं** (काशी, गया, गङ्गा, नर्मदा, पुष्कर-क्षेत्र, कुरुक्षेत्र इस में कोई समान नहीं है।)

अनुवादः हे राजन्! काशी, गया, गङ्गा, नर्मदा, पुष्कर-क्षेत्र, कुरुक्षेत्र इन तीर्थों में से कोई भी तीर्थ एकादशी दिन के समान नहीं है।

अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च।
एकादश्युपवासस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥१७१॥

अन्वयः अश्वमेध-सहस्राणि (एक हजार अश्वमेघ याग) **वाजपेयशतानि च** (सैकडों वाजपेय याग भी) **एकादश्युपवासस्य** (एकादशी उपवास की) **षोडशीं कलां** (सोलहवे भाग की योग्यता को भी) **न अर्हन्ति** (प्राप्त नहीं करतें हैं।)

अनुवादः एक हज़ार अश्वमेघ याग और सैकडों वाजपेय-याग एकादशी-उपवास के सोलहवे भाग की योग्यता को भी प्राप्त नहीं करतें हैं।

एकादशीसमुत्थेन वह्निना पातकेन्धनम्।
भस्मीभवति राजेन्द्र अपि जन्मशतोद्भवम्॥१७२॥

अन्वयः राजेन्द्र (हे राजन्!) **एकादशीसमुत्थेन** (एकादशी उपवास से उत्पन्न) **वह्निना** (पुण्याग्नि से) **जन्मशतोद्भवम्** (एक सौ जन्मों में किया गया) **पातकेन्धनम् अपि** (पापरूपी इन्धन भी) **भस्मी-भवति** (भस्म हो जाता है।)

अनुवादः हे राजन्! एकादशी उपवास से उत्पन्न पुण्याग्नि से एक सौ जन्मों में किया गया पापरूपी इन्धन भी भस्म हो जाता है।

(विशेष-व्याख्या श्लोक-संख्या १७०-१७२): काशी, गया, प्रयाग, नर्मदा, पुष्कर, कुरुक्षेत्र इत्यादि जो भी पुण्यतम तीर्थ है, वे सब मिलकर भी एकादशी उपवास के समान नहीं है। एकादशी उपवास हजारों अश्वमेधों और सैकड़ों वाजपेयों से भी बहुत गुणा अधिक उत्कृष्ट हैं। सैकड़ों जन्मों में किया गया पाप एकादशी-उपवास से भस्म हो जाता है।

नेदृशं पावनं किंचिन्नराणां भुवि विद्यते।
यादृशं पद्मनाभस्य दिनं पातकहानिदम्॥१७३॥

अन्वयः पद्मनाभस्य (भगवान् आदि-नारायण जी का) **दिनं** (एकादशी दिन) **यादृशं** (जितना) **पातकहानिदं** (पाप-परिहारक है,) **ईदृशं** (इतनी) **नराणां** (मनुष्यों के लिये) **पावनं** (पवित्र वस्तु) **किंचित्** (जो कुछ भी) **भुवि** (इस धरती में) **न विद्यते** (नहीं है।)

अनुवादः भगवान् आदि-नारायण जी का एकादशी-दिन जितना पाप-परिहारक है, मनुष्यों के लिये इतनी पवित्र अन्य कोई भी वस्तु इस धरती पर विद्यमान नहीं है।

तावत्पापानि देहेऽस्मिन् तिष्ठन्ति मनुजाधिप।
यावन्नोपोषयेज्जन्तुः पद्मनाभदिनं शुभम्॥१७४॥

अन्वयः मनुजधिप (हे राजन्!) **जन्तुः** (मनुष्य) **यावत्** (जब तक) **शुभं पद्मनाभदिनं** (अत्यन्त पावन एकादशी के दिन) **न उपोषयेत्** (उपवास नहीं करता है) **तावत्** (तब तक) **अस्मिन् देहे** (इस देह में) **पापानि** (पाप) **तिष्ठन्ति** (रहते हैं।)

अनुवादः हे राजन्! मनुष्य जब तक अत्यन्त पावन एकादशी के दिन उपवास नहीं करता है, तब तक इस देह में पापरहते हैं।

एकादशेन्द्रियैः पापं यत्कृतं भविति प्रभो।
एकादश्युपवासेन तत्सर्वं विलयं व्रजेत्॥१७५॥

अन्वयः प्रभो (हे राजन्!) **एकादशेन्द्रियैः** (ग्यारह इन्द्रियों से) **यत् पापं** (जो पाप) **कृतं भवति** (किया हुआ रहता है) **तत् सर्वं** (वह सब पाप) **एकादश्युपवासेन** (एकादशी उपवास से) **विलयं व्रजेत्** (नष्ट हो जाता है।)

अनुवादः हे राजन्! ग्यारह इन्द्रियों से जो पाप किया हुआ रहता है, वह सब पाप एकादशी उपवास से नष्ट हो जाता है।

एकादशीसमं किंचित्पवित्रं न हि विद्यते।
व्याजेनापि कृता राजन्न दर्शयति भास्करिम्॥१७६॥

अन्वयः राजन् (हे राजन्!) **एकादशी-समं** (एकादशी के समान) **पवित्रं** (पवित्र वस्तु) **किंचित्** (कुछ भी) **न हि विद्यते** (नहीं हैं) **व्याजेन अपि** (किसी बहाने से) **कृता** (एकादशी उपवास करने पर) **भास्करिं** (भास्कर-पुत्र यम-धर्मराज का) **न दर्शयति** (दर्शन नहीं करवाती है।)

अनुवादः हे राजन्! एकादशी के समान पवित्र वस्तु कुछ भी नहीं हैं। किसी बहाने से एकादशी के दिन उपवास करने पर एकादशी-देवी भास्कर-पुत्र यम-धर्मराज का दर्शन नहीं करवाती है।

(विशेष-व्याख्या श्लोक-संख्या १७३-१७६): एकादशी उपवास के समान वस्तु इस भूमि में कुछ भी नहीं है। आंख-नासिका-कान-त्वगिन्द्रिय-रसनेन्द्रिय रूपी पञ्च-ज्ञानेन्द्रिय तथा वागिन्द्रिय-हस्त-पाद-पायु-उपस्थ रूपी पञ्च-कर्मेन्द्रिय तथा मनोरूपी अन्तरिन्द्रिय कुल मिलकर ग्यारह इन्द्रियों के द्वारा किया गया पाप एकादशी-उपवास से नष्ट होता है। इन पापों का नाश एकादशी-उपवास के बिना अन्य दूसरे कारणों से नहीं हो सकता है। किसी दूसरे बहाने से एकादशी-उपवास शास्त्रानुसार करने पर भी

मरणानन्तर यम–दर्शन नहीं होगा। साक्षात् विष्णु–लोक–प्राप्ति ही होगी।

व्यासः–

स ब्रह्महा स गोघ्नश्च स स्तेनो गुरुतल्पगः।
एकादश्यां तु भुञ्जानः पक्षयोरुभयोरपि॥१७७॥

अन्वयः उभयोः पक्षयोः अपि (शुक्ल कृष्ण दोनों पक्षों में भी) **एकादश्यां** (एकादशी के दिन) **भुञ्जानः** (भोजन करनेवाला जो पुरुष है) **सः** (वह पुरुष) **ब्रह्महा** (ब्राह्मण–वध करनेवाला है,) **सः गोघ्नः** (वह गोहत्या करनेवाला है,) **सः स्तेनः** (वह चोर है,) **सः गुरुतल्पगः** (वह गुरुपत्नी का भोग करनेवाला है।)

अनुवादः शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षों में भी एकादशी के दिन भोजन करनेवाला जो पुरुष है, वह पुरुष ब्राह्मण–वध करनेवाला है, वह गोहत्या करनेवाला है, वह चोर है, वह गुरु–पत्नी का भोग करनेवाला है।

वरं स्वमातृमनं वरं गोमांसभक्षणम्।
वरं हत्या सुरापानमेकादश्यान्नभोजनात्॥१७८॥

अन्वयः एकादश्यन्न–भोजनात् (एकादशी के दिन अन्न खाने से) **स्वमातृगमनं** (अपनी माता से भोग करना) **वरं** (श्रेष्ठ है,) **गोमांस–भक्षणं** (गाय का मांस खाना) **वरं** (श्रेष्ठ है,) **हत्या** (लोगों को मारना) **वरं** (श्रेष्ठ है,) **सुरा–पानं** (मदिरा पीना) **वरं** (श्रेष्ठ है।)

अनुवादः एकादशी के दिन अन्न खाने से अपनी माता से भोग करना श्रेष्ठ है, गाय का मांस खाना श्रेष्ठ है, लोगों को मारना श्रेष्ठ है और मदिरा पीना श्रेष्ठ है।

एकादशीदिने प्राप्ते भुञ्जते ये नराधमाः।
अवलोक्य मुखं तेषामादित्यमवलोकयेत्॥१७९॥

अन्वयः ये नराधमाः (जो हीन पुरुष) **पुण्ये** (अत्यन्त पवित्र) **एकादशी–दिने** (एकादशी के दिन में) **भुञ्जते** (भोजन करते

हैं) **तेषां** (उन लोगों का) **मुखं** (मुख के) **अवलोक्य** (देखकर) **आदित्यं** (सूर्य को) **अवलोकयेत्** (देखना चाहिए।)

अनुवादः जो हीन पुरुष अत्यन्त पवित्र एकादशी के दिन में भोजन करते हैं, उन लोगों का मुख-दर्शन करनेपर सूर्य को देखना चाहिए।

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च।
अन्नमाश्रित्य तिष्ठन्ति संप्राप्ते हरिवासरे॥१८०॥

अन्वयः पृथिव्यां (धरती में) **ब्रह्म-हत्यादिकानि** (ब्राह्मणों को मारना इत्यादि) **यानि पापानि** (जो पाप परिगणित हैं, वे सब पाप) **हरिवासरे संप्राप्ते** (एकादशी दिन आते ही) **अन्नं आश्रित्य** (अन्न में आश्रित होकर) **तिष्ठन्ति** (रहते हैं।)

अनुवादः धरती में ब्राह्मणों को मारना इत्यादि जो पाप परिगणित हैं, वे सब पाप एकादशी दिन आते ही अन्न में आश्रित होकर रहते हैं।

(विशेष-व्याख्या श्लोक-संख्या १७७-१८०): इस धरतीपर जितने भी पापों की परिगणना की गयी है, वे सभी पाप एकादशी के दिन अन्न में ही रहते हैं। अतः एकादशी के दिन भोजन करनेवाला ब्रह्म-हत्या-पाप, गो-हनन-पाप (गाय को मारने का पाप), चौर्य (चोरी करने) का पाप, अपने गुरूजी की पत्नी के साथ भोग करने का पाप-- ये सभी पापों को प्राप्त करता हैं। इतना ही नहीं, किन्तु उस से भी उउउ पाप प्राप्त करता है। ब्राह्मणों को मारना, अपनी माता से संभोग करना, अथवा गोमांस को खाना, मदिरा पीना, चुराना इत्यादि दुष्कार्यों से जो पाप होता है, वह पाप एकादशी के दिन अन्न खाने से होने वाले पाप से कम ही है। एकादशी के दिन भोजन करनेवाले लोगों के मुख देखकर प्रायश्चित्त हेतु सूर्य को देखना चाहिए।

रुक्माङ्गदः-

अष्टवर्षाधिको यस्तु यस्याशीतिर्न पूर्यते।
यो भुङ्क्ते मानवाः पापो विष्णोरहनि चागते॥१८१॥

अन्वयः यः तु (जो भी पुरुष) **अष्टवर्षाधिकः** (आठ से अधिक साल का है,) [तथा] **यस्य** (जो पुरुष) **अशीतिः न पूर्यते** (अस्सी से कम साल का है, ऐसा) **यः मानवः** (जो पुरुष) **विष्णोः अहनि आगते** (परमात्मा के दिन एकादशी प्राप्त होने पर) **भुङ्क्ते** (भोजन करता है, वह पुरुष) **पापः** (पापी है।)

अनुवादः जो भी पुरुष आठ से अधिक साल का है, तथा जो पुरुष अस्सी से कम साल का है, ऐसा जो पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण के दिन एकादशी प्राप्त होने पर भोजन करता है, वह पुरुष पापी है।

पिता वा यदि वा पुत्रो भार्या वापि सुहृज्जनः।
पद्मनाभदिने भुङ्क्ते निग्राह्यो दस्युवद्भवेत्॥१८२॥

अन्वयः पिता वा (पिताजी भी हो,) **यदि वा** (अथवा) **पुत्रः** (पुत्र हो, अथवा) **भार्या** (पत्नी हो,) **सुहृज्जनः अपि वा** (सखा भी हो, परन्तु) **पद्मनाभ-दिने** (भगवान् पद्मनाभ [श्रीकृष्ण] के दिन एकादशी को) **भुङ्क्ते** (जो व्यक्ति भोजन करता है, वह व्यक्ति) **दस्युवत्** (चोर जैसे) **निग्राह्यः भवेत्** (दण्डनीय होता है।)

अनुवादः पिताजी भी हो, अथवा पुत्र हो, अथवा पत्नी हो, सखा भी हो, परन्तु भगवान् पद्मनाभ [श्रीकृष्ण] के दिन एकादशी को जो व्यक्ति भोजन करता है, वह व्यक्ति चोर जैसे दण्डनीय होता है।

(विशेष-व्याख्या श्लोक-संख्या १८१-१८२)ः रुक्माङ्गद राजा के शासनकाल में यह आदेश प्रसारित हुआ था कि जो पुरुष एकादशी को भोजन करता हे, चाहे वह पिता, माता, पुत्र, भार्या, अथवा बन्धु, सखा हो, उसको चोरों की तरह दण्डना होगी (दंड मिलेगा)। एकादशी उपवास न करने पर वह पापी है। परन्तु आठ साल से कम उम्र के जो बालक हैं, तथा अस्सी साल से ज्यादा उम्र के जो वृद्ध हैं, इन दोनों को यह उपवास का नियम लागू नहीं है। बाल-वृद्ध-रोगी इत्यादि असहाय लोग फलाहार ले सकते हैं।

ब्रह्माः–

उपोष्य द्वादशीं पुण्यां सर्वपापक्षयप्रदाम्।
न पश्यति यमं वाऽपि नरकाणि न यातनाम्॥१८३॥

अनुवादः [एकादशी दशमी से संयुक्त होने पर अथवा अतिरिक्त–द्वादशी या श्रवण–द्वादशी आने पर उस] **पुण्यां** (पवित्र) **सर्वपापक्षयप्रदां** (सभी पापों को नाश करने वाली) **द्वादशीं** (द्वादशी के दिन) **उपोष्य** (उपवास करने से) **यमं** (यम–धर्मराज को,) **नरकाणि वा अपि** (नरकों को,) **यातनां** (नरक यातना को भी) **न पश्यति** (नहीं देखता है।)

अनुवादः एकादशी दशमी से संयुक्त होने पर अथवा अतिरिक्त–द्वादशी या श्रवण–द्वादशी आने पर उस पवित्र सभी पापों का नाश करने वाली द्वादशी के दिन उपवास करने से यम–धर्मराज का, नरकों का और नरक यातना का भी दर्शन नहीं होता हैं।

विशेषार्थः विद्धैकादशी को छोड़कर अगली द्वादशी के दिन उपवास करने से कभी भी नरक दर्शन नहीं होगा, नहीं यमराज का, और नहीं नरक–यातना का।

शंकरः–

रटन्तीह पुराणानि भूयो भूयो वरानने।
न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं संप्राप्ते हरिवासरे॥१८४॥

अन्वयः वरानने (हे पार्वतीदेवी!) **'हरिवासरे संप्राप्ते** (एकादशी के दिन प्राप्त होने पर) **न भोक्तव्यं** (भोजन नहीं करना चाहिए,) **न भोक्तव्यं** (भोजन नहीं करना चाहिए') [इस प्रकार] **पुराणानि** (बहुत पुराण–वाक्य) **इह** (एकादशी के विषय में) **रटन्ति** (बोल रहे हैं।)

अनुवादः हे पार्वती–देवी! 'एकादशी के दिन प्राप्त होने पर भोजन नहीं करना चाहिए, भोजन नहीं करना चाहिए'––इस प्रकार बहुत सारे पुराण–वाक्य एकादशी के विषय में बोल रहे हैं।

ब्रह्माः–

द्वादशी न प्रमोक्तव्या यावदायुः प्रवर्तते।
अर्चनीयो हृषीकेशो विशुद्धेनान्तरात्मना॥१८५॥

अन्वयः यावत् (जब तक) **आयुः** (हमारा जीवन) **प्रवर्तते** (चलता रहता है, तब तक) **द्वादशी** (एकादशी- उपवास तथा द्वादशी-पारण को) **न प्रमोक्तव्या** (छोडना नहीं चाहिए।) **विशुद्धेन अन्तरात्मना** (विशुद्ध मन से) **हृषीकेशः** (नारायण जी को) **अर्चनीयः** (अर्चना करना चाहिए।)

अनुवादः जब तक हमारा जीवन चलता रहता है तब तक एकादशी का उपवास तथा द्वादशी का पारण नहीं छोडना चाहिए। विशुद्ध मन से भगवान् कृष्ण का अर्चन करना चाहिए।

(विशेष-व्याख्या श्लोक-संख्या १८४-१८५): जब तक शरीर में प्राण वायु प्रवाहित होता रहता है, तब तक एकादशी-व्रत को छोड़ना नहीं चाहिए। 'एकादशी के दिन भोजन नहीं करना चाहिए', 'एकादशी के दिन भोजन नहीं करना चाहिए'—इस प्रकार से सारे ही पुराण-वाक्य एकादशी-उपवास की आवश्यकता को प्रतिपादित कर रहे हैं।

अब तक एकादशी के बारे में विस्तृत रूप में कहा गया है। इस के बाद भगवत्स्मरण का महत्त्व प्रतिपादित कर रहे हैं—

भक्त्या ग्राह्यो हृषीकेशो न धनैर्धरणीसुराः।
भक्त्या संपूजितो विष्णुः फलं धत्ते समीहितम्॥१८६॥

अन्वयः धरणीसुराः (हे ब्राह्मणों!) **हृषीकेशः** (विष्णु भगवान् का) **भक्त्या ग्राह्यः** (भक्ति से पूजन करना चाहिए।) **धनैः** (पैसे से) **न ग्राह्यः** (पूजन नहीं करना चाहिए।) **भक्त्या** (भक्तिपूर्वक) **संपूजितः** (पूजित किए गए) **विष्णुः** (विष्णु भगवान्) **समीहितं फलं** (अपेक्षित फल को) **धत्ते** (देते हैं।)

अनुवादः हे ब्राह्मणों! विष्णु भगवान् का भक्ति से पूजन करना चाहिए। पैसे से पूजन नहीं करना चाहिए। भक्तिपूर्वक पूजित किए गए विष्णु भगवान् अपेक्षित फल को देते हैं।

जलेनापि जगन्नाथः पूजितः क्लेशनाशनः।

परितोषं प्रयात्याशु तृषार्तस्तु यथा जलैः॥१८७॥

अन्वयः क्लेशनाशनः (कष्टों को नाश करने वाले) **जगन्नाथः** (जगत्प्रभु नारायण) **जलेन अपि** (भक्ति पूर्वक केवल पानी से भी) **पूजितः** (पूजित होते हुए) **आशु** (शीघ्र ही) **परितोषं प्रयाति** (संतुष्ट होते हैं।) **यथा** (जैसा) **तृषार्तः** (प्यासा पुरुष) **जलैः** (पानी से संतुष्ट होता है, वैसे ही भगवान् भी केवल जल से सन्तुष्ट होते हैं।)

अनुवादः कष्टोंका नाश करने वाले जगत्प्रभु नारायण भक्तिपूर्वक केवल पानी से भी पूजित होते हुए शीघ्र ही संतुष्ट होते हैं। जैसा प्यासा पुरुष पानी से संतुष्ट होता है, वैसे ही भगवान् भी केवल जल से सन्तुष्ट होते हैं।

(विशेष-व्याख्या श्लोक-संख्या १८६-१८७): भगवान् को सन्तुष्ट करने के लिए बहुत ज़्यादा पैसे की जरूरत नहीं हैं। किन्तु भक्ति की जरूरत है। भक्ति से केवल जल चढ़ाने से भी भगवान् संतुष्ट होते हैं। गीता में भी यही कहा गया हैः

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

(श्रीमद्भगवद्गीता श्लोक ९/२६)

अनुवादः जो भक्तिपूर्वक मुझे पत्र, पुष्प, फलादि प्रदान करते हैं, मैं उन शुद्ध-चित्त भक्तोंके द्वारा भक्तिपूर्वक प्रदत्त उन समस्त वस्तुओं को ग्रहण करता हूँ।

भावानुवाद--बल्कि अन्य देवताओंकी आराधनामें अधिक क्लेश है, किन्तु मेरी भक्तिमें कोई क्लेश या कष्ट नहीं है अर्थात् मेरी भक्ति अनायास ही साधित होने योग्य है। यहाँ भक्ति ही कारण है। श्लोकके तृतीय पादमें 'भक्त्युपहृतम्' शब्दका प्रयोग हुआ है। द्वितीय पादमें भी 'भक्त्या' का प्रयोग हुआ है। अतः दो बार इस शब्दके प्रयोगसे पुनरुक्ति होती है। अतएव सहार्थे तृतीया सूत्रानुसार तृतीया पादके शब्दका तात्पर्य है--भक्तिसे युक्त अर्थात् मेरे भक्तगण। अतः मेरे भक्तोंके अतिरिक्त यदि कोई तात्कालिक

भक्तिके साथ जो भी प्रदान करता है, उसके उस तात्कालिक भक्तिसहित प्रदत्त पत्र-पुष्पादिको ग्रहण नहीं करता हूँ। अतएव मेरे भक्तगण पत्रादि जो कुछ देते हैं, मैं उस द्रव्यका 'अश्नामि' अर्थात् यथोचित उपभोग करता हूँ। किन्तु, वह वस्तु भक्तिसहित समर्पित होनी चाहिए न कि किसीके अनुरोध करनेसे दी हुई। और भी, यदि मेरे भक्तका शरीर अपवित्र हो, तो मैं उसके द्वारा प्रदत्त वस्तुको अस्वीकार कर देता हूँ, इसलिए कहते हैं—'प्रयतात्मनः' अर्थात् जिसका शरीर शुद्ध है। इस कथनसे रजस्वलादिका निषेध किया गया है। अथवा, 'प्रयतात्मा' का तात्पर्य है--जिनका अन्तःकरण शुद्ध है, उनके द्वारा प्रदत्त वस्तुको स्वीकार करता हूँ; और मेरे भक्तके अतिरिक्त अन्य किसीका भी अन्तःकरण शुद्ध नहीं है। परीक्षित महाराजने कहा है—"पवित्र (शुद्ध) आत्मावाले पुरुष श्रीकृष्ण-पादपद्मका त्याग नहीं करते हैं।" 'शुद्धचित्त' होनेका लक्षण यही है कि मेरी चरणसेवाका त्याग करनेमें वे असमर्थ होंगे। अतएव यदि कभी किन्हींके चित्तमें काम-क्रोधादि देखा भी जाता है, तो उन्हें विषदन्तहीन सर्पके डँसनेके समान कुछ भी अनर्थ नहीं करनेवाला समझना चाहिए।

सारार्थ-वर्षिणी-प्रकाशिका-वृत्ति-भगवत्-भजनके अक्षय और अनन्त फलका वर्णनकर इस श्लोकमें सुख-साध्यत्वके सम्बन्धमें बता रहे हैं। पत्र-पुष्प फल या जल कोई सुलभ द्रव्य भक्तिपूर्वक भगवान्‌को अर्पित होनेपर अनन्त विभूतिशाली तथा पूर्णकाम होनेपर भी भगवान् यथोचितरूपमें उसका उपभोग करते हैं अथवा भक्तोंकी प्रीतिसे उनको भूख और तृष्णा लग जाती है और वे भक्तिके आवेशमें उन द्रव्योंको प्रेमसे ग्रहण करते हैं। भक्त विदुरके घरमें उनकी पत्नीके हाथोंसे कृष्णने केलेके छिलकेको भी बड़े प्रेमसे खाया था। श्रीकृष्णने अपने प्रिय सखा सुदामा विप्रके द्वारा लाये हुए सूखे तण्डुलके खूदको अत्यन्त प्रेमसे खाते हुए कहा था—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

(श्रीमद्भा. १०/८१/४)

इसका तात्पर्य यह है कि वस्तु स्वादिष्ट हो या अस्वादिष्ट हो, किन्तु यह बहुत ही स्वादिष्ट है--यदि इस बुद्धिसे भक्त मुझे भक्तिपूर्वक देता है, तो वह वस्तु मेरे लिए परम स्वादिष्ट हो जाती है। उस समय मुझे और कोई विचार नहीं रहता। मैं उसे खाता हूँ। यहाँ तक कि आहार और घ्राणके अयोग्य पुष्पादिको भी मैं बड़े प्रेमसे मुग्ध होकर ग्रहण करता हूँ। यदि कोई कहे कि दूसरे-दूसरे देवताओंके भक्तोंके द्वारा भक्तिपूर्वक निवेदित वस्तुको भगवान् ग्रहण करते हैं अथवा नहीं, तो इसके उत्तरमें कहते हैं--नहीं! मेरे भक्त जो कुछ देते हैं, मैं केवल उसे ही ग्रहण करता हूँ, दूसरेके द्वारा प्रदत्त वस्तुको नहीं। महाराज नाभिके यज्ञमें आविर्भूत भगवान्‌को ऋत्विकोंने कहा था—

'परिजनानुराग-विरचित-शबल-संशब्द-सलिल-सितकिसलय-तुलसिका-दूर्वाङ्कुरैरपि सम्भृतया सपर्यया किल परम परितुष्यसि॥'
(श्रीमद्भा. ५/३/५)

अर्थात्, आपके भक्तजन अनुरागसे भरे, रुद्ध गलेसे स्तुति-वाक्य, जल, कोमल पल्लव, तुलसी और दुर्वाङ्कुरके द्वारा जो पूजा करते हैं, आप निश्चय ही उस पूजाके द्वारा विशेषरूपसे सन्तुष्ट होते हैं।

हरिभक्तिविलासमें गौतमीय तन्त्रसे उद्धृत वाक्यमें भी ऐसा ही देखते हैं—

'तुलसीदल मात्रेण जलस्य चुलुकेन वा।
विक्रीणीते स्वमात्मानं भक्तेभ्यो भक्तवत्सलः॥'

श्रीमन्महाप्रभुने भक्त शुक्लाम्बरकी भिक्षाकी झोलीसे एक मुष्टि सूखे चावलको मुखमें डालकर चबाते हुए कहा था—

'प्रभु बले तोर खूदकण मुई खाऊँ।
अभक्तेर अमृत उलटि ना चाऊँ॥'

अर्थात्, श्रीमन्महाप्रभुने कहा--शुक्लाम्बर! मैं तुम्हारे खूद तण्डुलको भी ग्रहण करता हूँ, परन्तु अभक्तके अमृतको पलटकर देखना भी नहीं चाहता हूँ।

देवर्षि नारदने भी प्रचेताओंसे कहा है—*'भजति कुमनीषिणां स इज्या'* अर्थात् पाण्डित्य, धन तथा उच्चकुलके मदमें प्रमत्त होकर श्रीहरिकी अनन्य सेवा करनेवाले भगवद्~भक्तोंका तिरस्कार करनेवाले कुमनीषियोंकी पूजा श्रीहरि कभी भी ग्रहण नहीं करते हैं।

भगवान्ने अपने श्रीमुखसे उद्धवको ऐसा ही उपदेश दिया है--अभक्तोंके द्वारा प्रचुररूपमें प्रदत्त उपहारसे भी मैं सन्तुष्ट नहीं होता हूँ। और भी बड़े स्पष्टरूपमें इसी सिद्धान्तकी पुष्टि करते हुए सुदामासे कहा है—

'अण्वप्युपाहृतं भक्तैः प्रेम्णा भूर्येव मे भवेत्।
भूर्यप्यभक्तोपहृतं न मे तोषाय–कल्पते॥'

(श्रीमद्भा. १०.८१.३)

अर्थात्, भक्तों द्वारा अर्पित उपहार अणुमात्र होनेपर भी मैं उसे प्रचुररूपमें ग्रहण करता हूँ, किन्तु अभक्तोंके द्वारा प्रदत्त प्रचुर उपहार भी मेरा सन्तोष विधान नहीं कर सकते।

यहाँ 'प्रयतात्मा' शब्दका तात्पर्य भक्ति द्वारा शुद्ध अन्तःकरणवाले भक्त से है। भगवान् ऐसे शुद्धान्तःकरणवाले भक्तों द्वारा प्रदत्त भोज्य पदार्थोंको प्रीतिपूर्वक खाते हैं, दूसरेके द्वारा प्रदत्त वस्तुको नहीं। प्रह्लाद महाराजजीने भी ऐसा ही कहा है— *'इति पुंसार्पिता विष्णौ' 'अर्पितैव सती यदि क्रियते'* अर्थात् अपनेको भगवान्के चरणोंमें अर्पित करनेके पश्चात् श्रवण, कीर्त्तनादि अङ्गोंका अनुष्ठान करनेपर वह शुद्धा भक्ति है, अन्यथा नहीं। इसका तात्पर्य यह है कि पूर्ण शरणागतिके साथ भक्तिके अङ्गोंका पालन करनेपर ही अन्तःकरण शुद्ध होता है तथा ऐसे भक्तोंका ही नेवैद्य भगवान् प्रीतिपूर्वक ग्रहण करते हैं।

आसीनस्य शयानस्य तिष्ठतो व्रजतोऽपि वा।
रमस्व पुण्डरीकाक्ष नृसिंह हृदये मम॥१८८॥

अन्वयः आसीनस्य (बैठा हुआ) **शयानस्य** (सोया हुआ) **तिष्ठतः** (खड़ा हुआ) **व्रजतः अपि वा** (अथवा जा रहा हुआ) **मम** (मेरे) **हृदये** (मन में) **पुण्डरीकाक्ष** (कमल जैसे आंखोंवाले) **नृसिंह** (हे नृसिंहरूपी भगवान्!) **रमस्व** (आप विहार करें।)

अनुवादः जब मैं बैठा हूँ, सोया, खड़ा हूँ अथवा जा रहा हूँ, हर अवस्था में मेरे मन में कमल जैसे आंखोंवाले हे नृसिंहरूपी भगवान्! आप विहार करें।

करावलम्बन देहि श्रीकृष्ण कमलेक्षण।
भवपङ्कार्णवे घोरे मज्जतो मम सर्वदा॥१८९॥

अन्वयः कमलेक्षण (कमल जैसे आंखोंवाले श्री कृष्ण जी) **घोरे भवपङ्कार्णवे** (अत्यन्त घोर इस संसार रूपी कीचड़ के समुद्र में) **मज्जतः** (गिर रहे) **मम** (मेरे लिए) **सर्वदा** (सर्वकालों में) **करावलम्बनं देहि** (हाथ के अवलम्बन देकर उठाकर पार करें।)

अनुवादः कमल जैसे आंखोंवाले श्रीकृष्णजी अत्यन्त घोर इस संसार-रूपी कीचड के समुद्र में गिर रहे मुझे सर्वदा हाथ का आधार (अवलम्बन) देकर उठाकर पार करें।

सर्वगश्चैव सर्वात्मा सर्वावस्थासु चाच्युत।
रमस्व पुण्डरीकाक्ष नृसिंह हृदये मम॥१९०॥

अन्वयः पुण्डरीकाक्ष नृसिंह (हे कमल जैसे आंखों वाले नृसिंह भगवान्!) [आप] **सर्वगः च** (सर्वत्र रहनेवाले हैं।) **सर्वात्मा** (सब जीवों के नियन्ता हैं।) **अतः सर्वावस्थासु** (मेरे जीवन के जाग्रत, स्वप्न एवं सुषुप्ति--इन तीनों अवस्थाओं में) **मम हृदये** (मेरे हृदय में) **रमस्व** (विहार करते रहें।)

अनुवादः हे कमल जैसे आंखोंवाले नृसिंह भगवान्! आप सर्वत्र रहनेवाले हैं। सब जीवों के नियन्ता हैं। मेरे जीवन के जाग्रत, स्वप्न एवं सुषुप्ति--इन तीनों अवस्थाओं में आप मेरे हृदय में विहार करते रहें।

त्राहि त्राहि जगन्नाथ वासुदेवाच्युताव्यय।
मां समुद्धर गोविन्द दुःखसंसारसागरात्॥१९१॥

अन्वयः अच्युत (किसी प्रकार के च्युतिरहित) **अव्यय** (व्ययरहित) **जगन्नाथ** (जगत्प्रभु) **गोविन्द** (वेदों का उद्धारक) **वासुदेव** (वसुदेव-पुत्र अर्थात् नन्दनन्दन श्रीकृष्ण!) **त्राहि त्राहि** (हमारी रक्षा करें।) **दुःख-संसार-सागरात्** (दुःखमय इस संसार समुद्र से) **समुद्धर** (उद्धार करें।)

अनुवादः किसी प्रकार के च्युतिरहित, व्ययरहित, जगत्प्रभु वेदों के उद्धारक नन्दनन्दन श्रीकृष्ण! हमारी रक्षा करें। दुःखमय इस संसार समुद्र से हमारा उद्धार करें।

एतत्पुण्यं परं गह्यं पवित्रं पापनाशनम्।
आयुष्यं च यशस्यं च धन्यं दुःस्वप्ननाशनम्॥१९२॥

अन्वयः एतत् (इस प्रकार से प्रार्थना करना) **पुण्यं** (अत्यन्त पुण्यकर है,) **परं गुह्यं** (अत्यन्त गोपनीय है,) **पवित्रं** (पावन है,) **पापनाशनं** (पापनाशक है,) **आयुष्यं** (आयु को बढ़ाता है,) **यशस्यं** (यश को बढ़ाता है,) **धन्यं** (धनप्रद है,) **दुःस्वप्ननाशनम्** (दुःस्वप्नों से बचाता है।)

अनुवादः इस प्रकार से प्रार्थना करना अत्यन्त पुण्यकर है, अत्यन्त गोपनीय है, पावन है, पापनाशक है आयु को बढ़ाता है, यश को बढ़ाता है, धनप्रद है और दुःस्वप्नों से बचाता है।

(विशेष-व्याख्या श्लोक-संख्या १८८-१९२): मेरे मन सर्वदा भगवान् नृसिंह जी का स्मरण करते रहें। बैठे समय, सोते समय, खड़े होते हुए, जाते हुए, इन सभी अवस्थाओं में मेरे मन में भगवान् सर्वदा रहें। यह संसार तो कीचड़ का सागर है। इसमें हम लोग प्राणी गिर रहे हैं। इससे बचाने वाले एकमात्र भगवान् श्रीकृष्ण हैं। हे भगवान् श्री कृष्ण! कृपया हाथ से हम लोगों को उठाकर इस संसार से पार करें। आप तो सर्वत्र रहने वाले हैं। सब जीवों के नियामक आप ही हैं। हम लोग सर्वथा अस्वतन्त्रतम व्यक्ति हैं। अतः जाग्रत-काल, स्वप्नावस्था और सुषुप्त्यवस्था इन तीनों अवस्थाओं में मेरे हृदय में रहते हुए मेरी रक्षा करें।

'हे अच्युत! अव्यय! गोविन्द! जगन्नाथ! वसुदेव-पुत्र (नन्दनन्दन) श्रीकृष्ण! आप हम को संसार से बचाओ। कष्ट से बचाओ'--इस प्रकार से सर्वदा भगवान् का नाम स्मरण करने पर उन की प्रार्थना करने पर पुण्य-प्राप्ति होती है और पाप नष्ट होता है। हमारे आयु, यश और धन की वृद्धि होती है। सारे दुःस्वप्न नष्ट होते हैं। भगवान् की प्रार्थना अत्यन्त पुण्यदायक है। अतः सर्वदा करना चाहिए।

कलौ पापं कियन्मात्रं हत्यास्तेयादिसंभवम्।
स्मृते मनसि गोविन्दे दह्यते तूलराशिवत्॥१९३॥

अन्वयः कलौ (कलियुग में) **हत्यास्तेयसमुद्भवम्** (मारना, चुराना इत्यादि से प्राप्त होनेवाला) **पापं** (पाप) **कियन्मात्रं** (कितना है?) **मनसि** (मन में) **गोविन्दे** (गोविन्द जी को) **स्मृते** (स्मरण करने पर) **तूलराशिवत्** (रूई की समूह के समान) **दह्यते** (यह पाप जल जाता है।)

अनुवादः कलियुग में मारना, चुराना इत्यादि से प्राप्त होनेवाला पाप कितना है? मन में गोविन्द जी को स्मरण करने पर रूई की समूह के समान यह पाप जल जाता है।

कलौ केशवभक्तानां न भयं विद्यते क्वचित्।
स्मृते संकीर्तिते ध्याते संक्षयं याति पातकम्॥१९४॥

अन्वयः कलौ (कलियुग में) **केशवभक्तानां** (भगवान् के भक्तों को) **क्वचित्** (किञ्चित् भी) **भयं** (भय) **न विद्यते** (नहीं है।) **स्मृते** (भगवान् का स्मरण करने से,) **संकीर्तिते** (संकीर्तन करने से,) [और] **ध्याते** (ध्यान करने से) **पातकं** (पाप) **संक्षयं याति** (नष्ट हो जाता है।)

अनुवादः कलियुग में भगवान् के भक्तों को किञ्चित् भी भय नहीं है। भगवान् का स्मरण करने से, संकीर्तन करने से और ध्यान करने से पाप नष्ट हो जाता है।

(विशेष-व्याख्या श्लोक-संख्या १९३-१९४): भगवान् के स्मरण, कीर्तन, ध्यान से सारे पाप नष्ट होते हैं। अपनी इच्छा के

बिना आकस्मिक रूप से यदि किसी को मार डाल दिया हो अथवा किसी चीज को चुराया हो, उससे जो पाप उत्पन्न होता है वह पाप भगवत्स्मरण से नष्ट हो जाता है। केवल ऐसे आकस्मिक पापों के लिए प्रायश्चित्त भगवत्स्मरण है। हर दिन चोरी करने वाले डकैत लोगों के लिए यह प्रायश्चित्त नहीं है।

अध्येतव्यमिदं शास्त्रं श्रोतव्यमनसूयया।
भक्तेभ्यश्च प्रदातव्यं धार्मिकेभ्यः पुनः पुनः॥१९५॥

अन्वयः इदं शास्त्रं (भागवत इत्यादि विष्णुभक्तिप्रचारक शास्त्रों को) **अध्येतव्यं** (पढ़ना चाहिए,) **अनसूयया** (असूया के बिना) **श्रोतव्यं** (सुनना चाहिए,) [और] **धार्मिकेभ्यः** (धर्मभीरु) **भक्तेभ्यश्च** (भक्तों को भी) **पुनः पुनः** (बार बार) **प्रदातव्यं** (इस शास्त्र का उपदेश देना चाहिए।)

अनुवादः भागवत इत्यादि विष्णु-भक्ति-प्रचारक शास्त्रों को पढ़ना चाहिए, असूया के बिना सुनना चाहिए और धर्मभीरु भक्तों को भी बार बार इस शास्त्र का उपदेश देना चाहिए।

अधीयान इदं शास्त्रं विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तः प्राप्नोति च परं पदम्॥१९६॥

अन्वयः उत्तमं (अत्यन्त उत्कृष्ट) **विष्णोः माहात्म्यं** (विष्णु-माहात्म्य-प्रतिपादक) **इदं शास्त्रं** (इस शास्त्र को) **अधीयानः** (पढ़कर) **सर्व-पाप-विनिर्मुक्तः** (सब पापों से मुक्त होकर) **परं पदं च** (विष्णु लोक को भी) **प्राप्नोति** (प्राप्त करता है।)

अनुवादः अत्यन्त उत्कृष्ट विष्णु-माहात्म्य-प्रतिपादक इस शास्त्र को पढ़कर सब पापों से मुक्त होकर विष्णु-लोक को भी प्राप्त करता है।

श्रुत्वा धर्मं विजानाति श्रुत्वा त्यजति दुर्मतिम्।
श्रुत्वा ज्ञानमवाप्नोति श्रुत्वा मोक्षं च विन्दति॥१९७॥

अन्वयः श्रुत्वा (शास्त्र-श्रवण से) **धर्मं विजानाति** (धर्म का ज्ञान प्राप्त करता है) [और] **श्रुत्वा** (शास्त्र श्रवण से) **ज्ञानं**

(परमात्म–ज्ञान को) **अवाप्नोति** (प्राप्त करता है।) **श्रुत्वा** (शास्त्र श्रवण से) **मोक्षं च** (मोक्ष को भी) **विन्दति** (प्राप्त करता है।)

अनुवादः शास्त्र–श्रवण से मनुष्य धर्म का ज्ञान प्राप्त करता है और शास्त्र श्रवण से परमात्म–ज्ञान को प्राप्त करता है। शास्त्र–श्रवण से वह मोक्ष को भी प्राप्त करता है।

तस्मादिदं सदा श्राव्यं श्रोतव्यं च सदैव हि।
कुतर्कदावदग्धेभ्यो न दातव्यं कदाचन॥१९८॥

अन्वयः तस्मात् (इस कारण से) **इदं** (इस शास्त्र को) **सदा** (सर्वदा) **श्राव्यं** (दूसरे लोगों को सुनवाना चाहिए,) [और] **सदैव हि** (सर्वदा स्वयं को भी अपने से ज्येष्ठ लोगों से) **श्रोतव्यं** (सुनना चाहिए।) **कुतर्क–दाव–दग्धेभ्यः** (कुतर्क–रूप–वनाग्नि से दग्ध मूर्ख जीवों को) **कदाचन** (कभी भी) [इसे] **न दातव्यं** (नहीं देना चाहिए।)

अनुवादः इस कारण से इस शास्त्र को सर्वदा दूसरे लोगों को सुनवाना चाहिए और सर्वदा स्वयं को भी अपने से ज्येष्ठ लोगों से सुनना चाहिए। कुतर्क–रूप–वनाग्नि से दग्ध मूर्ख जीवों को कभी भी इसे नहीं देना चाहिए।

विशेष–व्याख्याः विष्णु–भक्ति–प्रतिपादक भागवत इत्यादि सच्छास्त्रों को सर्वदा पुनः पुनः आवृत्ति करते रहना चाहिए। स्वयं पढना चाहिए और दूसरे धार्मिक श्रद्धालुओं को भी सुनवाना चाहिए। इस से धर्म का (सामाजिक व्यवस्था रूपी धर्म) ज्ञान प्राप्त होता हैं, अज्ञान नष्ट होता है। भगवान् का ज्ञान प्राप्त होने से भगवान् के वैकुण्ठ लोक को भी प्राप्त कर सकते हैं। दुर्विचारी लोगों में इस की महत्ता नहीं होगी। उन दुर्विचारी लोगों को यह विषय नहीं बताना चाहिए।

संसारविषपानेन ये मृताः प्राणिनो भुवि।
अमृताय स्मृतस्तेषां कृष्णामृतमहार्णवः॥१९९॥

अन्वयः भुवि (भूमि पर) **ये प्राणिनः** (जो प्राणी) **संसारविषपानेन** (संसार रूपी विष–पान से) **मृताः** (मर गये हैं)

तेषां (उन प्राणियों को उठाने हेतु) **अमृताय** (अमृत सेचन के लिए) **कृष्णामृत–महार्णवः** (कृष्णरूपी अमृत समुद्र प्रस्तुत हैं।)

अनुवादः भूमि पर जो प्राणी संसार रूपी विष–पान से मर गये हैं, उन प्राणियों को उठाने हेतु अमृत सेचन के लिए कृष्णरूपी अमृत समुद्र प्रस्तुत हैं।

विशेष व्याख्याः श्रीकृष्ण जी तो अमृत के सागर हैं। उस अमृत सागर के एक भी बूँद के स्पर्श से संसाराग्नि से तपे हुए लोग उद्धृत हो सकते हैं। अतः उस अमृत का सेवन करना चाहिए।

क्लिन्नं पादोदकेनैव यस्य नित्यं कलेवरम्।
तीर्थकोटिसहस्त्रैस्तु स्त्रातो भवति प्रत्यहम्।
तीर्थकोटिसहस्त्रैस्तु सेवितैः किं प्रयोजनम्।
तोयं यदि पिबेन्नित्यं शालग्रामशिलाच्युतम्॥२००॥

अन्वयः यस्य (जिस पुरुष का) **कलेवरं** (शरीर) **नित्यं** (प्रतिदिन) **पादोदकेनैव** (भगवत्पादोदक से) **क्लिन्नं** (गीला होता हैं,) [वह पुरुष] **प्रत्यहं** (प्रतिदिन) **तीर्थकोटिसहस्रैः तु** (हजारों करोडों तीर्थों के) **स्नातो भवति** (स्नान का फल को प्राप्त करता है।)

शालिग्रामशिलाच्युतं (शालिग्राम शिला से निर्गलित) **तोयं** (तीर्थजल को) **यदि** (यदि) **नित्यं** (प्रतिदिन) [जो भी पुरुष] **पिबेत्** (पीता हो) [उस पुरुष को] **तीर्थ–कोटि–सहस्रैः सेवितैः तु** (हजारों करोडों तीर्थों को जल पीने से) **किं प्रयोजनं** (क्या प्रयोजन है?)

अनुवादः जिस पुरुष का शरीर प्रतिदिन भगवत्पादोदक से गीला होता हैं, वह पुरुष प्रतिदिन हजारों करोडों तीर्थों के स्नान का फल को प्राप्त करता है। शालिग्राम शिला से निर्गलित तीर्थजल को यदि कोई प्रतिदिन पीता हो, तो उस पुरुष को हजारों करोडों तीर्थों का जल पीने से क्या प्रयोजन है?

शालग्रामशिलास्पर्शं ये कुर्वन्ति दिने दिने।
वाञ्छन्ति करसंस्पर्शं तेषां देवाः सवासवाः॥२०१॥

अन्वयः ये (जो पुरुष) **दिने दिने** (प्रतिदिन) **शालिग्राम–शिला–स्पर्श** (शालिग्राम–शिला पूजन करने हेतु उस को स्पर्श करते हैं) **तेषां** (उन पुरुषों के) **करसंस्पर्शं** (कर से स्पर्श करने के लिए) **सवासवाः** (इन्द्र सहित) **देवाः** (देवताऐं) **वाञ्छन्ति** (इच्छुक रहते हैं।)

अनुवादः जो पुरुष प्रतिदिन शालिग्राम–शिला पूजन करने हेतु उस को स्पर्श करते हैं, उन पुरुषों के कर से स्पर्श करने के लिए इन्द्र सहित देवताऐं इच्छुक रहती हैं।

(विशेष–व्याख्या श्लोक–संख्या २००–२०१): जो पुरुष प्रतिदिन हरिपादोदक को सिर में धारण करता है उस को बाकी तीर्थ क्षेत्रों में स्नान करने से कोई लाभ नहीं हैं। जो पुरुष शालिग्राम–शिला–तीर्थ को पीता है उस पुरुष को अन्य तीर्थ–क्षेत्रों के जल में स्नान करना या उस पवित्र जल को पीने से कुछ भी प्रयोजन नहीं है। हजारों करोडों तीर्थ–क्षेत्रों से शालिग्राम–शिला तीर्थ अत्यन्त उत्कृष्ट हैं। उस को प्रतिदिन सेवन करने वाला पुरुष के घर में ही सारे तीर्थक्षेत्र स्वयं सन्निहित होंगे। जो पुरुष प्रतिदिन शालिग्राम शिला का स्पर्श करता है उसे पुरुष का हस्त–स्पर्श करने के लिए सारी देवताऐं लालायित रहती हैं।

दुःसहो नारको वन्हिर्दुःसहा यमकिंकराः।
विषमश्चान्तकपथः प्रेतत्वं चातिदारुणम्॥२०२॥
विचिन्त्य मनसाऽप्येवं पातकाद्विनिवर्तयेत्।
स्मरणं कीर्तनं विष्णोः सदैव न परित्यजेत्॥२०३॥

अन्वयः नारको वह्निः (नरकाग्नि) **दुःसहः** (अत्यन्त कठिन होता हैं।) **अन्तकपथः** (यमलोक का मार्ग) **विषमः** (अत्यन्त दुर्गम है।) **प्रेतत्वं च** (प्रेत शरीर में रहना भी) **अतिदारुणं** (अत्यन्त दुःस्सह है। एवं पूर्वोक्त प्रकार से) **मनसापि** (मन से भी) **विचिन्त्य** (विचार कर) **पातकात्** (पापकर्म से) **विनिवर्तयेत्** (दूर हटना चाहिए।) **विष्णोः** (विष्णु भगवान् का) **स्मरणं** (स्मरण को तथा)

कीर्तनं (कीर्तन को) **सदैव** (सर्वदापि**) न परित्यज्येत्** (कभी नहीं छोड़ना चाहिए।)

अनुवादः नरकाग्नि अत्यन्त कठिन होता हैं। यमलोक का मार्ग अत्यन्त दुर्गम है। प्रेत शरीर में रहना भी अत्यन्त दुःस्सह है। एवं पूर्वोक्त प्रकार से मन से भी विचार कर पापकर्म से दूर हटना चाहिए। विष्णु भगवान् का स्मरण तथा कीर्तन सर्वदापि कभी नहीं छोड़ना चाहिए।

(विशेष–व्याख्या श्लोक–संख्या २०२–२०३): हम लोग नित्य जीवन में अनेकविध पाप करते हैं। कभी मिथ्या–भाषण कभी परद्रोह, कभी पराहित, परहिंसा इत्यादि हमारे पापकर्मो का कोई अन्त नहीं होता है। किसी न किसी ऐहिक सुखभोगार्थ इस प्रकार पापकर्म करते हैं। परन्तु पापकर्म करने से पहले हम–लोगों को सोचना चाहिए कि 'पापकर्म से नरक प्राप्ति हो जायेगी। नरक कितना भयंकर है। यमदूत किस प्रकार से हम लोगों को दण्डित करते हैं। किस प्रकार से भूलोक से यमलोक तक भयंकर रास्ते में से ले जाते हैं। इस भौतिक शरीर के छूटने पर प्राप्त होने वाले प्रेत शरीर कितना भयंकर होता है'—इस प्रकार से सोचने मात्र से ही हम इस पाप कर्म से निवृत्त हो जायेंगे। तथा सर्वदा हरि स्मरण–हरिसंकीर्तन करते ही रहना चाहिए। उसे कभी भी छोड़ना नही चाहिए।

वेदव्यासः–

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात्।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥२०४॥

अन्वयः अच्युतानन्त–गोविन्द–नामोच्चारणमभेषजात् (अच्युत, अनन्त और गोविन्द––इस प्रकार तीनों नामों के उच्चारण रूपी दवाई से) **सकलाः रोगाः** (सभी रोग) **नश्यन्ति** (नष्ट हो जाते हैं।) **अहं वदामि** (मैं जो बोल रहा हूँ वह) **सत्यं सत्यं** (सत्य है, सत्य है।)

अनुवादः अच्युत, अनन्त और गोविन्द--इस प्रकार तीनों नामों के उच्चारण रूपी दवाई से सभी रोग नष्ट हो जाते हैं। मैं जो बोल रहा हूँ वह सत्य है, सत्य है।

सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम्।
बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति॥२०५॥

अन्वयः येन (जिस पुरुष ने) **सकृत्** (कभी एक बार हरिः) **इति अक्षरद्वयं** ('हरिः' इस प्रकार के दो अक्षरों का) **उच्चरितं** (उच्चारण किया है) **तेन** (उस पुरुष ने) **मोक्षाय गमनं प्रति** (मोक्ष जाने हेतु) **परिकरः बद्धः** (सारी व्यवस्था कर ली है।)

अनुवादः जिस पुरुष ने कभी एक बार हरिः 'हरिः' इस प्रकार के दो अक्षरों का उच्चारण किया है उस पुरुष ने मोक्ष जाने हेतु सारी व्यवस्था कर ली है।

एवं ब्रह्मादयो देवा ऋषयश्च तपोधनाः।
कीर्तयन्ति सुरश्रेष्ठं देवं नारायणं प्रभुम्॥२०६॥

अन्वयः एवं (इस प्रकार से) **ब्रह्मादयः देवाः** (चतुर्मुख ब्रह्मा इत्यादि देवगण) **तपोधनाः ऋषयः** (तपस्वी ऋषिलोग भी) **सुरश्रेष्ठं देवं** (देवताश्रेष्ठ देव) **नारायणं प्रभुं** (प्रभु नारायण जी का) **कीर्तयन्ति** (स्तोत्र करते हैं।)

अनुवादः इस प्रकार से चतुर्मुख ब्रह्मा इत्यादि देवगण तपस्वी ऋषिलोग भी देवता-श्रेष्ठ देव प्रभु नारायण जी की स्तुति करते हैं।

किं तस्य दानैः किं तीर्थैः किं तपोभिः किमध्वरैः।
यो नित्यं ध्यायते देवं नारायणमनन्यधीः॥२०७॥

अन्वयः यः (जो पुरुष) **अनन्यधीः** (एकाग्र मन से) **नित्यं** (प्रतिदिन) **देवं नारायणं** (प्रभु नारायण का) **ध्यायते** (ध्यान करता है) **तस्य** (उस पुरुष को) **दानैः किं** (दान से क्या लाभ?) **तीर्थैः किं** (तीर्थ क्षेत्रों से क्या लाभ?) **तपोभिः किं?** (तपस्या से क्या लाभ?) **अध्वरैः किं** (सोमयागों से क्या लाभ?) (नारायण स्मरण

से ही सब प्रयोजन प्राप्त होने के कारण तीर्थक्षेत्रों से कुछ भी प्रयोजन नहीं है।)

अनुवादः जो पुरुष एकाग्र मन से प्रतिदिन प्रभु नारायण का ध्यान करता है, उस पुरुष को दान से क्या लाभ? तीर्थ क्षेत्रों से क्या लाभ? तपस्या से क्या लाभ? सोमयागों से क्या लाभ? नारायण स्मरण से ही सब प्रयोजन प्राप्त होने के कारण तीर्थक्षेत्रों से कुछ भी प्रयोजन नहीं है।

नित्योत्सवो भवेत्तेषां नित्यश्रीर्नित्यमङ्गलम्।
येषां हृदिस्थो भगवान्मङ्गलायतनं हरिः॥२०८॥

अन्वयः मङ्गलायतनं (सारे मङ्गलों के आधार,) **भगवान्** (षड्गुणैश्वर्य-संपन्न) **हरिः** (भगवान् श्रीविष्णु) **येषां हृदिस्थः** (जिन पुरुषों के हृदय में रहते हैं,) **तेषां** (उन पुरुषों के) **गृहे** (घरों में) **नित्योत्सवः (**प्रतिदिन उत्सव होगा,) **नित्यश्रीः** (प्रतिदिन संपदाएं रहेंगी,) **नित्यमङ्गलं** (प्रतिदिन मङ्गल कार्य होगा।)

अनुवादः सारे मङ्गलों के आधार, षड्गुणैश्वर्य-संपन्न भगवान् श्रीविष्णु जिन पुरुषों के हृदय में रहते हैं, उन पुरुषों के घरों में प्रतिदिन उत्सव होगा, प्रतिदिन संपदाएं रहेंगी, प्रतिदिन मङ्गल कार्य होगा।

(विशेष-व्याख्या श्लोक-संख्या २०४-२०८)ः भगवान् जिस के हृदय में रहता है, उस पुरुष के घर में सर्वदा शुभ है, सर्वदा उत्सव होता है। सर्वदा सब प्रकार की संपदा होती है, उस पुरुष को दान, तीर्थ, तपस्या, याज्ञ, याग इत्यादि का कोई आवश्यकता नहीं होगी। सारे इष्टार्थ भगवन्नामध्यान से ही सिद्ध होंगे। वह पुरुष मोक्ष को अवश्य ही प्राप्त करेगा। मोक्ष के लिए अन्य साधना की आवश्यकता नहीं हैं। इस प्रकार से ब्रह्मा रुद्र इन्द्र इत्यादि देवताएं तथा ऋषि लोग सर्वदा भगवान् के गुणगान करते रहते हैं।

शरीर में नानाविध व्याधियां तो होती ही हैं। अनेक रोग दुःसाध्य होते हैं, इलाज नहीं होती है। उस स्थिति में 'अच्युत

अनन्त गोविन्द' इस प्रकार से तीन नामों का उच्चारण निरन्तर करते रहना चाहिए। उससे रोग शान्त हो जाते हैं।

जीवंश्चतुर्दशादूर्ध्वं पुरुषो नियमेन तु।
स्त्री वाऽप्यनूनदशकं देहं मानुषमार्जयेत्॥२०९॥
चतुर्दशोर्ध्वजीवीनि संसारश्चादिवर्जितः।
अविदित्वा परं देवं मोक्षाशा का महामुने॥२१०॥

अन्वयः महामुने (हे मुने!) **चतुर्दशात् ऊर्ध्वं** (चौदह साल की ऊपर की उम्र में) **जीवन्** (जीवित रहने वाला) **पुरुषः** (कोई पुरुष,) **चतुर्दशोर्ध्वजीवीनि स्त्री वा** (चौदह साल की उम्र से अधिक जीवित रहने वाली स्त्री भी) **नियमेन तु** (अत्यन्त नियमित रूप से) **अनूनदशकं** (कम से कम दस) **मानुषं देहं** (मनुष्य देह के कारणीभूत कर्मों को) **आर्जयेत्** (अर्जन करता है।) **संसारश्च** (संसार तो) **आदिवर्जितः** (अनादि और अनन्त है। इस कारण से) **परं देवं** (सर्वोत्कृष्ट देवता नारायण को) **अविदित्वा** (न जानने पर) **का मोक्षाशा** (मोक्ष की आशा क्या है?)

अनुवादः हे मुने! चौदह साल की ऊपर की उम्र में जीवित रहने वाला कोई पुरुष, चौदह साल की उम्र से अधिक जीवित रहने वाली स्त्री भी अत्यन्त नियमित रूप से कम से कम दस मनुष्य देह के कारणीभूत कर्मों को अर्जन करता है। संसार तो अनादि और अनन्त है। इस कारण से सर्वोत्कृष्ट देवता नारायण को न जानने पर मोक्ष की आशा क्या है?

आचतुर्दशमाद्वर्षात् कर्माणि नियमेन तु।
दशावराणां देहाना कारणानि करोत्ययम्।
अतः कर्मक्षयान्मुक्तिः कुत एव भविष्यति॥२११॥

अन्वयः अयं पुरुषः (कोई पुरुष) **आचतुर्दशमात् वर्षात्** (चौदह साल के उम्र के बाद) **नियमेन तु** (नियमित रूप से) **दशावराणां** (कम से कम दस) **देहानां** (शरीरों के) **कारणानि** (कारणीभूत कर्म) **करोति** (करता है।) **अतः** (इस कारण से)

कर्मक्षयात् (कर्मक्षय से) **मुक्तिः** (मोक्ष) **कुत एव भविष्यति** (कैसे होगी?)

अनुवादः कोई पुरुष चौदह साल के उम्र के बाद नियमित रूप से कम से कम दस शरीरों के कारणीभूत कर्म करता है। इस कारण से कर्मक्षय से मोक्ष कैसे होगी?

(विशेष-व्याख्या श्लोक-संख्या २०९-२११): इस धरती पर जीवन यापन करने के लिए खान पान की जरूरत है। पेड़ पौधों को नष्ट करते हुए उन के फल पुष्प रस इत्यादि को विविध रूप रंग देते हुए मनुष्य अपना भोजन बनाता है। पेड पौधे भी हम जैसे ही जीव है। उनको मारने से ही हमारा पेट भरेगा। इसी प्रकार वायु में रहनेवाले जीवों को, धरती पर रहने वाली चींटी इत्यादि जीवों को प्रतिक्षण मारने के बिना हमारा जीवन नहीं चलता है। इन सारे जीवों की हत्या से प्रतिदिन बहुत पाप उत्पन्न होता है। जिसे भोगने के लिए कम से कम दस जन्मों की आवश्यकता होती है। इस प्रकार से एक साल में हम इतना पाप पैदा करते हैं कि उस को भोगने हेतु ३६५० बार जन्म लेना पड़ता है। इस प्रकार जाते जाते जितने जन्म लेंगे उतने ही पाप करेंगें, फिर उसको भोगने के लिए और अधिक जन्म लेना पडेगा। अतः इसी कर्मचक्र में ही जीव उलझता रहेगा। कभी भी कर्मचक्र बन्द नहीं होगा। अतः कर्मक्षय से मुक्ति कभी भी हो नहीं सकती है।

समानां विषमा पूजा विषमानां समा तथा।
क्रियते येन देवोपि स्वपदाद् भ्रश्यते हि सः॥२१२॥

अन्वयः येन (जिस पुरुष के द्वारा) **समानां** (समान योग्यता वाले लोगों को) **विषमा पूजा** (भेदभाव के बिना समान रीति से) **समानां क्रियते** (किया जाता है) **सः** (वह पुरुष) देवः अपि (स्वयं देवता होने पर भी) **स्वपदात्** (अपने अधिकार पद से) **भ्रश्यते** (भ्रष्ट होता है।)

अनुवादः जिस पुरुष के द्वारा समान योग्यता वाले लोगों को भेदभाव के बिना समान रीति से किया जाता है वह पुरुष स्वयं देवता होने पर भी अपने अधिकार पद से भ्रष्ट होता है।

वित्तं बन्धुर्वयः कर्म विद्या चैव तु पञ्चमी।
एतानि मान्यस्थानानि गरीयो ह्युत्तरोत्तरम्॥२१३॥

अन्वयः वित्तं (पैसा) **बन्धुः** (रिश्ता) **वयः** (आयु) **कर्म** (यज्ञ याग इत्यादि सत्कर्म और) **पञ्चमी विद्या च एव** (पाँचवीं विद्या) **एतानि** (ये पाँच) **मान्यस्थानानि** (सम्मान के कारण होंगे। इन में) **उत्तरोत्तरं** (आगे आनेवाले जो है) **गरीयः** (वही श्रेष्ठ होता है।)

अनुवादः पैसा, रिश्ता, आयु, तथा यज्ञ, याग इत्यादि सत्कर्म और पाँचवीं विद्या ये पाँच सम्मान के कारण होंगे। इन में आगे आनेवाले जो है वही श्रेष्ठ होता है।

गुणानुसारिणीं पूजां समां दृष्टिं च यो नरः।
सर्वभूतेषु कुरुते तस्य विष्णुः प्रसीददति॥।२१४॥

अन्वयः यः नरः (जो पुरुष) **सर्वभूतेषु** (सभी पदार्थों में) **गुणानुसारिणीं पूजां** (तत्तदीय योग्यतानुसार सम्मान) **[तथा] समां दृष्टिं च** (समदृष्टि को भी) **कुरुते** (करता है,) **तस्य** (उस पुरुष पर) **विष्णुः** (भगवान्) **प्रसीददति** (प्रसन्न होंगे।)

अनुवादः जो पुरुष सभी पदार्थों में तत्तदीय योग्यतानुसार सम्मान तथा समदृष्टि को भी करता है, उस पुरुष पर भगवान् प्रसन्न होंगे।

यथा सुहृत्सु कर्तव्यं पितृमातृसुतेषु च।
तथा करोति पूजादि समदुद्धिः स उच्यते॥२१५॥

अन्वयः यथा (जिस प्रकार) **सुहृत्सु** (अपने रिश्तेदारी के) **पितृमातृसुतेषु** (पिता माता पुत्र इत्यादि में सम्मान इत्यादि) **कर्तव्यं** (करना चाहिए,) **तथा** (उसी प्रकार अन्य लोगों में) **पूजादि** (सम्मान इत्यादि) **करोति** (जो करता है) **सः** (वह पुरुष) **समबुद्धिः उच्यते** (समबुद्धि कहा जाता है।)

अनुवादः जिस प्रकार अपने रिश्तेदारी के पिता, माता, पुत्र इत्यादि में सम्मान इत्यादि करना चाहिए, उसी प्रकार अन्य लोगों में सम्मान इत्यादि जो करता है, वह पुरुष समबुद्धि कहा जाता है।

(विशेष-व्याख्या श्लोक-संख्या २१२-२१५): समाज में सम्मान के कारण के रूप में जिन की गणना होती है। वह है विद्या, यज्ञ याग इत्यादि सत्कर्म, उम्र, बन्धुता और पैसा। इन में सर्वोत्कृष्ट है ज्ञान। जो अधिक ज्ञानी है उसी को प्रथम स्थान, सत्कार्य करनेवालों को द्वितीय, वयसा वृद्ध होने पर तृतीय स्थान, माता पिता इत्यादि बन्धुओं का चतुर्थ स्थान, तथा सर्वान्तिम स्थान धन का है। इस शास्त्रीय क्रम में ही सम्मान करना चाहिए। तथा समान योग्यता वाले लोगों के बीच में किसी को अधिक आदर करना, किसी को कम आदर करना, ऐसी विषमता नहीं दिखाना चाहिए। और विषम योग्यतावालों को समान पूजा भी करना नहीं चाहिए। इस प्रकार की गलती से देवताए भी अपने पद से भ्रष्ट हो जायेंगे। अतः उनकी योग्यतानुसार ही पूजा करनी चाहिए। तथा सर्वत्र पदार्थों में समबुद्धि से भगवान् को देखना चाहिए। उस से भगवान् सन्तुष्ट हो जाते हैं। समदृष्टि का अर्थ है कि सर्वत्र भगवान् को देखना नतु सब पदार्थों को समान समझाना है, क्योंकि सब पदार्थ समान कभी भी न होंगे। लोहा और सोना बबूल और चन्दन वृक्ष यह दोनों समान कैसे होंगे? जैसे अपने माता पिता के प्रथमतया सम्मान, पुत्र भार्या इत्यादि का अनन्तर इस प्रकार से सम्मान होता है, वैसे ही अन्यलोगों में भी तत्तदीय योग्यतानुसार 'ये सब भगवान् के दास हैं' ऐसा मानकर उन का सम्मान करना चाहिए।

ऊर्ध्वपुण्ड्र की महिमा

तिर्यक्पुण्ड्रं न कुर्वीत संप्राप्ते मरणेऽपि वा।
न चान्यन्नाम विब्रूयात्परान्नारायणादृते॥२१६॥

अन्वयः मरणे संप्राप्तेपि वा (मरण काल में भी) **तिर्यक्पुण्ड्रं** (तिरछा तिलक) **न कुर्वीत** (नहीं करना चाहिए।) **परात्** (अत्यन्त श्रेष्ठ) **नारायणात्** (नारायण नाम को) **ऋते** (छोड़कर) **अन्यत्** (दूसरे नाम को) **न विब्रूयात्** (नहीं बोलना चाहिए।)

अनुवादः मरण काल में भी तिरछा तिलक नहीं करना चाहिए। अत्यन्त श्रेष्ठ नारायण नाम को छोड़कर दूसरे नाम को नहीं बोलना चाहिए।

नैवेद्यशेषं देवस्य यो भुनक्ति दिनेदिने।
सिक्थे सिक्थे भवेत्पुण्यं चान्द्रायणशताधिकम्॥२१७॥

अन्वयः यः (जो पुरुष) **दिने दिने** (प्रतिदिन) **देवस्य** (भगवान् श्रीकृष्ण जी को) **नैवेद्यशेषं** (निवेदित भोग शेष को) **भुनक्ति** (भोजन करता है, उस पुरुष को) **सिक्थे सिक्थे** (प्रति ग्रास में) **चान्द्रायण-शताधिकम्** (एक सौ चान्द्रायण व्रतों से भी अधिक) **पुण्यं** (पुण्य) **भवेत्** (प्राप्त होता है।)

अनुवादः जो पुरुष प्रतिदिन भगवान् श्रीकृष्ण जी को निवेदित भोग शेष को भोजन करता है, उस पुरुष को प्रति ग्रास में एक सौ चान्द्रायण व्रतों से भी अधिक पुण्य प्राप्त होता है।

ऊर्ध्वपुण्ड्रमृजुं सौम्यं ललाटे यस्य दृश्यते।
सं चण्डालोऽपि शुद्धात्मा पूज्य एव न संशयः॥२१८॥

अन्वयः यस्य (जिस पुरुष का) **ललाटे** (माथे पर) **ऋजुं सौम्यं** (सीधा और कोमल) **ऊर्ध्वपुण्ड्रं** (सीधे तिलक) **दृश्यते** (दिखायी देता है) **सः** (वह पुरुष) **चण्डालोपि** (अत्यन्त हीन जाति का चण्डाल होने पर भी) **शुद्धात्मा** (अत्यन्त शुद्ध और) **पूज्यः एव** (पूजनीय ही है।) **न संशयः** (इस में कोई संशय नहीं है।)

अनुवादः जिस पुरुष का माथे पर सीधा और कोमल सीधे तिलक दिखायी देता है वह पुरुष अत्यन्त हीन जाति का चण्डाल होने पर भी अत्यन्त शुद्ध और पूजनीय ही है। इस में कोई संशय नहीं है।

अशुचिर्वाप्यनाचारो मनसा पापमाचरन्।

शुचिरेव भवेन्नित्यमूर्ध्वपुण्ड्राङ्कितो नरः॥२१९॥

अन्वयः ऊर्ध्व-पुण्ड्राङ्कितः नरः (सीधे तिलक धारण किया हुआ पुरुष) **अशुचिर्वापि (**अशुचि होने पर भी,) **अनाचारः** (अत्यन्त दुराचारी होने पर भी) [और] **मनसा पापम् आचरन्** (मन से पाप आचरण करते हुए भी) **नित्यं** (प्रतिदिन) **शुचिरेव भवेत्** (शुचि ही होता है।)

अनुवादः सीधे तिलक धारण किया हुआ पुरुष अशुचि होने पर भी, अत्यन्त दुराचारी होने पर भी और मन से पाप आचरण करते हुए भी प्रतिदिन शुचि ही होता है।

ऊर्ध्वपुण्ड्रहीनस्य श्मशानसदृशं मुखम्।
अवलोक्य मुखं तेषामादित्यमवलोकयेत्॥२२०॥

अन्वयः ऊर्ध्व-पुण्ड्र-विहीनस्य (ऊर्ध्वपुण्ड्र से रहित नर का) **मुखं** (मुख) **श्मशान-सदृशम्** (श्मशान के सदृश हैं।) **तेषां** (ऐसे लोगों के) **मुखं** (मुख को) **अवलोक्य** (देखकर) **आदित्यम्** (सूर्य को) **अवलोकयेत्** (देखना चाहिए।)

अनुवादः ऊर्ध्वपुण्ड्र से रहित नर का मुख श्मशान के सदृश हैं। ऐसे लोगों के मुख को देखकर सूर्य को देखना चाहिए।

यज्ञो दानं तपश्चैव स्वाध्यायः पितृतर्पणम्।
व्यर्थं भवति तत्सर्वमूर्ध्वपुण्ड्रं विना कृतम्॥२२१॥

अन्वयः ऊर्ध्वपुण्ड्रं विना कृतम् (ऊर्ध्वपुण्ड्र को धारण किये बिना किया गया) **यज्ञः दानं तपः स्वाध्यायः पितृ-तर्पणं च एव** (यज्ञ, दान, तप, वेदाध्ययन, पितृश्राद्ध इत्यादि) **तत्सर्वं** (यह सब) **व्यर्थं भवति** (व्यर्थ होता है।)

अनुवादः ऊर्ध्वपुण्ड्र से रहित नर का मुख श्मशान के सदृश हैं। ऐसे लोगों के मुख को देखकर सूर्य को देखना चाहिए।

(विशेष-व्याख्या श्लोक-संख्या २१६-२२१): विष्णुभक्त का विशेष कर्त्तव्य है ऊर्ध्व-पुण्ड्र-धारण। सीधे तिलक तो साक्षात् हरि का आवास-स्थान है। ऊर्ध्व-पुण्ड्र के बिना किये जानेवाले यज्ञ, याग, तप, वेदाध्ययन इत्यादि सभी प्रकार के सत्कर्म व्यर्थ हो जाते

हैं। इन सत्कर्मों से किसी फल की प्राप्ति नहीं होती है। ऊर्ध्वपुण्ड्र के बिना मुख श्मशान सदृश होता है। ऊर्ध्वपुण्ड्र रहित पुरुष का मुख को देखकर प्रायश्चित हेतु सूर्य को देखना चाहिए। ऊर्ध्व–पुण्ड्र–धारी पुरुष कितना भी दुराचारी अशुचि दुष्ट हो, परन्तु वह शुचि ही होगा। ऊर्ध्वपुण्ड्र समाज के प्रत्येक वर्ग के लिये भी अनिवार्य है। ऊर्ध्वपुण्ड्र से शोभित अन्त्यज भी पूजनीय हैं अतः सर्वदा ऊर्ध्वपुण्ड्र को धारण करना ही चाहिए। कभी भी तिरछा तिलक धारण (तिर्यक् भस्म–धारण) नहीं करना चाहिए।

उसी प्रकार प्रतिदिन भगवान् को समर्पित भोग–शेष को खानेवाला पुरुष को भोजन का प्रत्येक ग्रास में एक सौ चान्द्रायण वृत का फल प्राप्त होता है। अतः प्रतिदिन हम जो भी खाद्य–पदार्थ तैयार करते हैं, उन का भगवान् को भोग लगाकर बाद में वह प्रसाद का सेवन करना चाहिए। अन्य खाद्य–पदार्थ नहीं खाना चाहिए।

गोपीचन्दनलिप्ताङ्गो यं यं पश्यति चुक्षुषा।
तं तं शुद्धं विजानीयान्नात्र कार्या विचारणा॥२२२॥

अन्वयः गोपी–चन्दन–लिप्ताङ्गः (गोपी–चन्दन से बारह जगहों में परिलेपित शरीरवाले पुरुष) **यं यं** (जिस जिस पुरुष को) **चक्षुषा** (आंखों से) **पश्यति** (देखता है) **तं तं** (उन सारे लोगों को) **शुद्धं विजानीयत्** (शुद्ध मानना चाहिए।) **अन्न** (इस विषय में) **विचारणा न कार्या** (कोई विचार नहीं करना चाहिए।)

अनुवादः गोपी–चन्दन से बारह जगहों में परिलेपित शरीरवाला पुरुष, जिस जिस पुरुष को आंखों से देखता है, उन सारे लोगों को शुद्ध मानना चाहिए। इस विषय में कोई विचार नहीं करना चाहिए।

आस्फोटयन्ति पितरः प्रनृत्यन्ति पितामहाः।
वैष्णवोऽस्मत्कुले जातः स नः संतारयिष्यति॥२२३॥

अन्वयः '**अस्मत्कुले** (हमारे कुल में) वैष्णवः (विष्णुभक्त पुरुष) **जातः** (पैदा हुआ है।) **सः** (वह पुरुष) **अस्मान्** (हम लोगों

को तथा पूर्वजों को) **सन्तारयिष्यति** (नरक से पार कराएगा') (इस प्रकार से) **पितरः** (पिता पितृव्य इत्यादि लोग) **आस्फोटयन्ति** (जोर से आवाज करते हैं।) **पितामहाः** (पितामह मातामह इत्यादि लोग) **प्रनृत्यन्ति** (नाचते हैं।)

अनुवादः हमारे कुल में विष्णुभक्त पुरुष पैदा हुआ है। वह पुरुष हम लोगों को तथा पूर्वजों को नरक से पार कराएगा' इस प्रकार से पिता पितृव्य इत्यादि लोग जोर से आवाज करते हैं। पितामह मातामह इत्यादि लोग नाचते हैं।

जीवितं विष्णुभक्तस्य वरं पञ्चदिनान्यपि।
न तु कल्पसहस्त्रैस्तु भक्तिहीनस्य केशवे॥२२४॥

अन्वयः विष्णुभक्तस्य (विष्णुभक्त पुरुष का) **पञ्च-दिनान्यपि जीवितं** (केवल पांच दिन का जीवन भी) **वरं** (अत्यन्त श्रेष्ठ है।) **केशवे भक्ति-हीनस्य** (नारायण भगवान् में भक्तिरहित पुरुष का) **कल्पसहस्रैः तु** (हजारों कल्पों तक जीवन से भी) **न तु** (कोई प्रयोजन नहीं है।)

अनुवादः विष्णुभक्त पुरुष का केवल पांच दिन का जीवन भी अत्यन्त श्रेष्ठ है। नारायण भगवान् में भक्तिरहित पुरुष का हजारों कल्पों तक जीवन से भी कोई प्रयोजन नहीं है।

किं तेन जातमात्रेण भूभारेणान्नशत्रुणा।
यो जातो नार्चयेद्विष्णुं न स्मरेन्नापि कीर्तयेत्॥२२५॥

अन्वयः यः (जो पुरुष) **जातः** (भूमि में उत्पन्न होकर) **विष्णुं नार्चयेत्** (भगवान् की पूजा नहीं करता है,) **न स्मरेत्** (स्मरण भी नहीं करता है,) **नापि कीर्तयेत्** (नाम-संकीर्तन भी नहीं करता है, वैसे) **भूभारेण** (भूमिको केवल अपने वजन से कष्ट देनेवाला) **अन्नशत्रुणा** (केवल भोजन के लिये) **जातमात्रेण** (जन्म लिया हुआ) **तेन** (उस पुरुष से) **किं** (कौन सा लाभ है?)

अनुवादः जो पुरुष भूमि में उत्पन्न होकर भगवान् की पूजा नहीं करता है, स्मरण भी नहीं करता है, नाम-संकीर्तन भी नहीं करता है, वैसे भूमिको केवल अपने वजन से कष्ट देनेवाला,

केवल भोजन के लिये जन्म लिया हुआ उस पुरुष से कौन सा लाभ है?

(विशेष-व्याख्या श्लोक-संख्या २२२-२२५): मुख में जैसे ऊर्ध्वपुण्ड्र का धारण किया जाता है उसी प्रकार देह को बारह अलग अलग स्थानों पर गोपी-चन्दन का लेपन किया जाता है। ऐसे गोपी-चन्दन-धारी पुरुष जिन जिन को देखता है वह सब शुद्ध हो जायेंगे।

विष्णु-भक्त-सन्तान से उन के पूर्वज नरक से पार हो जाते हैं। विष्णुभक्त पांच ही दिन तक जीवन करेगा तो वह सार्थक जीवन हैं भक्ति-रहित पुरुष ब्रह्मा जी जैसे हजारों कल्पों तक जीवन करने पर भी उस जीवन का कोई फल नहीं हैं। अतः विष्णु-भक्त सन्तति पैदा होने पर पितृ-पितामह-भातृ-मातुल इत्यादि सब लोग आनन्द से बोलेंगे कि "यह विष्णुभक्त हमारे कुल में पैदा हुआ हैं वह हम लोगों की नरक से रक्षा करेगा।" विष्णुभक्तिरहित सन्तान से कुल में किसी को सुख, सन्तोष का अनुभव नहीं होता हैं वह सन्तान भूमि को अपने भार से केवल कष्ट देता है। केवल भोजन करता रहता है। उस से कोई प्रयोजन नहीं है।

यो ददाति द्विजातिभ्यश्चन्दनं गोपिमर्दितम्।
अपि सर्षपमात्रेण पुनात्यासप्तमं कुलम्॥२२६॥

अन्वयः यः (जो पुरुष) **गोपिमर्दितं** (गोपियों के द्वारा कृष्ण के शरीर में लेपित) **चन्दनं** (गोपीचन्दन को) **द्विजातिभ्यः** (ब्राह्मणों के लिये) **ददाति** (दान देता है उस दान के रूप में दिये जानेवाला) **सर्षपमात्रेण** (एक रायी [राई] के कण के परिमाण-वाले गोपीचन्दन से भी) **आसप्तमं** (सात पीढियों तक) **कुलं** (अपने कुल को) **पुनाति** (पवित्र करता है।)

अनुवादः जो पुरुष गोपियों के द्वारा कृष्ण के शरीर में लेपित गोपी-चन्दन को ब्राह्मणों के लिये दान देता है, उस दान के रूप में दिये जानेवाला एक रायी [राई] के कण के परिमाण-

वाले गोपीचन्दन से भी सात पीढियों तक अपने कुल को पवित्र करता है।

विशेष व्याख्याः वैष्णवों को प्रतिदिन स्नान के बाद संध्या से पहले बारह जगहों पर गोपी-चन्दन धारण करना चाहिए। द्वापर युग में इस पीले माटी को गोपियों ने कृष्ण के शरीर में लेपन किया था। इस लिये इस को गोपी-चन्दन नाम दिया गया है। रायी (राई) के एक कण की मात्रा में ब्राह्मणों को गोपी-चन्दन देने से ही अपने सात पीढ़ियों का उद्धार हो जाता है। अतः प्रति दिन शरीर में गोपी-चन्दन धारण करना चाहिए।

ज्ञानी च कर्माणि सदोदितानि कुर्यादकामः सततं भवेत॥२२७।

अन्वयः ज्ञानी च (भगवान् को साक्षात् देखा हुआ ज्ञानी पुरुष भी) **सदा** (सर्वदा) **उदितानि** (शास्त्रों में कहे) गये) **कर्माणि** (संध्या-वन्दन, देवपूजा, एकादशी उपवास इत्यादि कर्म) **कुर्यात्** (करे।) [वह पुरुष] **सततं** (सर्वदा) **अकामः** (कर्मों के फल में कामनारहित) **भवेत** (हो।)

अनुवादः भगवान् को साक्षात् देखा हुआ ज्ञानी पुरुष भी सर्वदा शास्त्रों में कहे संध्या-वन्दन, देवपूजा, एकादशी उपवास इत्यादि कर्म करे। वह पुरुष सर्वदा कर्मो के फल में कामनारहित हो।

अतीतानागतज्ञानी त्रैलोक्योद्धारणक्षमः।
एतादृशोऽपि नाचारं श्रौतं स्मार्तं परित्यजेत॥२२८॥

अन्वयः [कोई पुरुष] **अतीतानागतज्ञानी** (भूत भविष्यत् के ज्ञानी हो सकता है,) **त्रैलोक्योद्धरणक्षमः** (तीनों लोकों के प्रजाओं का उद्धार करने में सक्षम हो सकता है, परन्तु) **एतादृशोपि** (ऐसे पुरुष को भी) **श्रौतं** (श्रुत्युक्त) **स्मार्तं** (स्मृत्युक्त) **आचारं** (संध्या-जप-देवपूजा इत्यादि आचार को) **न परित्यजेत्** (छोड़ना नहीं चाहिए।)

अनुवादः कोई पुरुष भूत भविष्यत् के ज्ञानी हो सकता है, तीनों लोकों के प्रजाओं का उद्धार करने में सक्षम हो सकता है, परन्तु ऐसे पुरुष को भी श्रुत्युक्त स्मृत्युक्त संध्या-जप-देवपूजा इत्यादि आचार को छोड़ना नहीं चाहिए।

यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा
तदेव वीर्यवत्तरं भवति॥२२९॥

अन्वयः विद्यया (ज्ञानपूर्वक) **श्रद्धया** (श्रद्धापूर्वक) **उपनिषदा** (अपनी योग्यता के अनुसार) **यदेव करोति** (जो कुछ भी करता है,) **तदेव** (वह कार्य) **वीर्यवत्तरं** (अत्यन्त फलजनक होता है।)

अनुवादः ज्ञानपूर्वक, श्रद्धापूर्वक अपनी योग्यता के अनुसार जो कुछ भी करता है, वह कार्य अत्यन्त फलजनक होता है।

(विशेष-व्याख्या श्लोक-संख्या २२७-२२९): न केवल हम जैसे पामरों के लिये यह कर्म विहित है, बल्कि बड़े-बड़े ज्ञानी लोगों को भी कर्माचरण अत्यन्त आवश्यक है। भगवान् को साक्षात् देखा हुआ अपरोक्ष ज्ञानी भी सन्ध्या, देवपूजा, उपवास इत्यादि सत्कर्म को छोड़ नहीं रह सकता है। भगवान् के साक्षात् दर्शन होने के बाद वह पुरुष जैसे-जैसे अधिक कर्म करता है उस कर्म से मोक्ष में और आनन्द बढ़ता है। यह बात वेदों में आयी है। अतः ज्ञानी को भी कर्म करते रहना चाहिए।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते हि नरे॥२३०॥

अन्वयः इह (इस संसार में) **कर्माणि कुर्वन्नेव** (कर्म करते हुए ही) **शतं समाः** (सौ साल तक) **जिजीविषेत्** (जीवित रहने की इच्छा करनी चाहियें।) **एवं** (इस प्रकार के जीवन से) **नरे** (मनुष्य में) **कर्म न लिप्यते** (पाप कर्मों का लेपन नहीं होता है।) **त्वयि** (तुम) **इतः अन्यथा** (पूर्वोक्त प्रकार से दूसरी रीति से रहने पर) **न लिप्यते न** (अवश्य ही पाप कर्म का लेपन होगा।)

अनुवादः इस संसार में कर्म करते हुए ही सौ साल तक जीवित रहने की इच्छा करनी चाहियें। इस प्रकार के जीवन से

मनुष्य में पाप कर्मों का लेपन नहीं होता है। तुम पूर्वोक्त प्रकार से दूसरी रीति से रहने पर अवश्य ही पाप कर्म का लेपन होगा।

आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च।
वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः॥२३१॥

अन्वयः वेदप्रणिहितः (वेदों के द्वारा बोधित कर्म ही) **धर्मः** (धर्म माना गया है।) **तद्विपर्ययः** (इस के विरुद्ध जो भी है वह) **अधर्मः** (अधर्म माना गया है।) (धर्म के विषय में) **साधूनां** (सज्जनों के) **आचारश्च एव** (सदाचार) [और] **आत्मनः तुष्टिरेव च** (स्वयं की तुष्टि भी प्रमाण है।)

अनुवादः वेदों के द्वारा बोधित कर्म ही धर्म माना गया है। इस के विरुद्ध जो भी है, वह अधर्म माना गया है। धर्म के विषय में सज्जनों के सदाचार और स्वयं की तुष्टि भी प्रमाण है।

निष्कामं ज्ञानपूर्वं तु निवृत्तहि चोच्यते।
निवृत्तं सेवमानस्तु ब्रह्माभ्येति सनातनम्॥२३२॥

अन्वयः ज्ञानपूर्व (ज्ञानपूर्वक) **निष्कामं** (बिना कामना किये जानेवाला जो कर्म है वह) **इह** (शास्त्र में) **निवृत्तम् उच्यते** (निवृत्त कर्म कहा गया है।) **निवृत्तं सेवमानः तु** (निवृत्त कर्म को करनेवाला पुरुष) **सनातनं** (अनादि-नित्य) **ब्रह्म** (परब्रह्म नारायण को) **अभ्येति** (प्राप्त करता है।)

अनुवादः ज्ञानपूर्वक बिना कामना किये जानेवाला जो कर्म है वह शास्त्र में निवृत्त कर्म कहा गया है। निवृत्त कर्म को करनेवाला पुरुष अनादि-नित्य परब्रह्म नारायण को प्राप्त करता है।

(विशेष-व्याख्या श्लोक-संख्या २३०-२३२): न केवल भगवद्दर्शन के बाद सत्कर्माचरण से आनन्द बढ़ता है, बल्कि कर्म न करने पर या दुष्कर्म करने पर पाप से ग्रसित होता है। अतः ज्ञानी को भी कर्म करना अत्यन्त आवश्यक है।

मुख्यरूप में वेदों में जिन-जिन क्रियाकलापों को विधान किया गया है, वह क्रियाकलाप ही धर्म है। परन्तु धर्म का ज्ञान

करना अत्यन्त कठिन हैं। 'क्या धर्म है', 'क्या अधर्म है'—इस विषय में बड़े-बड़े ज्ञानी लोग भी कभी-कभी दिङ्मूढ़ हो जाते हैं। अतः किसी विषय में धर्म के बारे में आचार को प्रमाण मानना चाहिए। तद्देश के शिष्ट लोग जिस को धर्म मानते हैं वही धर्म होगा। कभी-कभी शिष्ट लोगों में भी मतभेद हो सकता हैं। ऐसी स्थिति में अपनी अन्तरात्मा (Intuition) को प्रमाण मानना चाहिए। जिस से मन प्रसन्न होता है, वही धर्म होगा।

यह धर्म दो प्रकार का है—निवृत्त और प्रवृत्त कर्म। फल की कामना से किये जानेवाला कर्म प्रवृत्त कर्म है। परन्तु प्रवृत्त कर्म से पुनः पुनः इसी संसार-चक्र में फँस जाते हैं। अतः फल की कामना के बिना ज्ञानपूर्वक निवृत्त कर्म करने पर नारायण का लोक प्राप्त कर सकते हैं।

श्रीमदानन्दतीर्थर्यसहस्रकिरणोत्थिता।
गोततिः सततं सेव्या गीर्वाणैः शुद्धिदा भवेत्॥२३३॥

अन्वयः श्रीमदानन्द-तीर्थार्य-सहस्र-किरणोत्थिता (श्रीमदानन्द-तीर्थ रूपी सूर्य से निकल गयी) **गोततिः** (ये बाते) **गीर्वाणैः** (भूलोक की देवताओं से) **सेव्या** (अवश्य ग्राह्य हैं।) [यह वचनमाला] **शुद्धिदा भवेत्** (शुद्धिदायक है।)

अनुवादः श्रीमदानन्द-तीर्थ रूपी सूर्य से निकल गयी ये बाते भूलोक की देवताओं से अवश्य ग्राह्य हैं। यह वचनमाला शुद्धिदायक है।

यहां कृष्णमृतमहार्णव समाप्त होता है।

पाण्डुरङ्गीवीरनारायणाचार्यरचित हिन्दी-विवृत्ति समाप्त होती है।

अस्मद्गुर्वन्तर्गतभारतीरमणमुख्यप्राणान्तर्गतश्रीहरिः प्रीयताम्।

श्री हनुमत् भीम मध्वांतर्गत रामकृष्ण
वेदव्यासात्मक लक्ष्मी हयग्रीवाय नमः

श्री राम श्री

श्री कृष्णामृतमहार्णव एवं सदाचारस्मृतिः

श्रीमदानन्द–तीर्थ–भगवत्पादाचार्य–संगृहीता

सदाचार–स्मृतिः

पाण्डुरङ्गी–वीर–नारायणाचार्य–रचिता हिन्दी–विवृतिः

श्रीमदानन्द–तीर्थ–भगवत्पादाचार्य–संगृहीता

सदाचारस्मृतिः

यस्मिन् सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा।
निरशीर्निर्ममो याति परं जयति सोच्युतः॥१॥

पाण्डुरङ्गी–वीर–नारायणाचार्य–रचिता हिन्दी–विवृतिः

वन्दे गोविन्दमानन्दज्ञानदेहं पतिं श्रियः।
श्रीमदानन्दतीर्थार्यवल्लभं परमक्षरम॥
आचार्यचरणं नौमि विश्वेशाख्ययतिं सदा।
यदनुग्रहलेशेन प्राप्ता विद्यां विमुक्तिदा॥

अन्वयः **अध्यात्मचेतसा** (बुद्धि को अध्यात्मनिष्ठ कर) **निराशीः** (कर्म फल की आशा छोड़कर) **निर्ममः** (ममता रहित होकर) **सर्वाणि कर्माणि** (हम लोगों के द्वारा किये जानेवाले नित्य नैमित्तिक कर्मों को) **यस्मिन्** (जिस भगवान को) **संन्यस्य** (समर्पित कर) **परं** (श्रेष्ठ विष्णु लोक) **याति** (प्राप्त करता है) **सः** (वह) **अच्युतः** (नाशरहित श्री हरि) **जयति** (उत्कृष्ट हैं।)

अनुवादः बुद्धि को अध्यात्म–निष्ठ कर, कर्म–फल की आशा छोड़कर, ममता–रहित होकर, हम लोगों के द्वारा किये जानेवाले नित्य–नैमित्तिक कर्मों को जिस भगवान को समर्पित कर, श्रेष्ठ विष्णु–लोक प्राप्त किया जाता है, वह नाशरहित श्रीहरि उत्कृष्ट हैं।

विशेष व्याख्याः मध्वाचार्य जी ने सज्जनों को प्रातः काल से रात्रिकाल तक कर्त्तव्य–कर्मों की शिक्षा देने हेतु सदाचार–स्मृति ग्रन्थ को रचा है। मध्वाचार्यजी ने इस ग्रन्थ में नाना पुराणों के वचनों को उदाहृत कर स्नान, संध्या, देवपूजा, अध्ययन, अध्यापन, वैश्वदेव, भोजन इत्यादियों की विधि का निरूपण किया है।

आरम्भ में प्रथम श्लोक में भगवान की स्तुति की जा रही है। भगवान ने गीता मे अर्जुन को उपदेश दिया हैः

"मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्यध्यात्मचेतसा
निरीशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः॥"

अन्वय--अध्यात्मचेतसा (आत्मनिष्ठ चित्तसे) सर्वाणि कर्माणि (सभी कर्म) मयि (मुझमें) संन्यस्य (समर्पणकर) निराशीः (निष्काम) निर्ममः (ममताशून्य) विगतज्वरः (शोकरहित) भूत्वा (होकर) युध्यस्व (युद्ध करो)।

भावानुवाद--अतएव हे अर्जुन! तुम अध्यात्मचेतः द्वारा अर्थात् आत्मनिष्ठ चित्त द्वारा कर्मसमूह मुझे समर्पितकर निराशी अर्थात् निष्काम, निर्मम अर्थात् समस्त विषयोंमें ममताशून्य होकर युद्ध करो, विषयनिष्ठायुक्त चित्त द्वारा नहीं।

सारार्थ-वर्षिणी प्रकाशिका-वृत्ति--भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनको लक्ष्यकर सर्वसाधारणके लिए यह उपदेश दे रहे हैं कि कर्त्तापनका अहङ्कार और फलकी कामनासे रहित होकर विहित कर्मोंका आचरण करना चाहिए। यहाँ 'कर्म' का तात्पर्य लौकिक और वैदिक सभी प्रकारके कर्मोंसे है। 'सर्वशः'--सभी विषयोंमें अर्थात् देह-गेह, पुत्र-भार्या, भ्राता आदिके विषयमें ममताशून्य होकर कर्मोंका आचरण करना चाहिए। यहाँ 'युद्ध करो' का अभिप्राय है--विहित कर्मोंको करना चाहिए।

उसी को यह श्लोक-संख्या १ ध्वनित कर रहा है। कर्म करना है, परन्तु कर्म फल की आशा न ही रखना है। ममता छोड़ना है। इस प्रकार हम जितने भी कर्म करते हैं उन सारे कर्मों को भगवान को समर्पित करना चाहिए। जो पुरुष ऐसे जीवन जीता है, वह पुरुष मुक्त हो जाता हैं उस पुरुष को मोक्ष देनेवाले श्रीहरि सर्व-देवताओं से तथा सारे पदार्थो से श्रेष्ठ है।

भगवान् को कर्म समर्पण करने का अर्थ यह है कि "यह कर्म भगवान के द्वारा ही किया जा रहा है। न तु मेरा अंश है" इस प्रकार चिन्तन करना।

स्मृत्वा विष्णुं समुत्थाय कृतशौचो यथाविधि।
धौतदन्तः समाचम्य स्त्रानं कुर्याद्यथाविधि॥२॥

अन्वयः समुत्थाय (शयन से उठकर) **विष्णुं** (श्रीविष्णु का) **स्मृत्वा** (स्मरण करने के बाद) **यथाविधि** (शास्त्र के अनुसार) **कृतशौचः** (मल-मूत्र विसर्जन करना चाहिए।) (उस के बाद) **धौतदन्तः** (दन्तकाष्ठों से दन्त मंजन करना चाहिए।) (उसके बाद) **समाचम्य** (आचमन कर) **विधानतः** (विध्युक्तरीत्या) **स्नानं कुर्यात्** (स्नान करना चाहिए।)

अनुवादः शयन से उठकर श्रीविष्णु का स्मरण करने के बाद शास्त्र के अनुसार मल-मूत्र विसर्जन करना चाहिए। उस के बाद दन्तकाष्ठों से दन्त मंजन करना चाहिए। उसके बाद आचमन कर विध्युक्तरीत्या स्नान करना चाहिए।

विशेष व्याख्याः सुबह अरुणोदय-काल में सूर्योदय से करीब डेढ़ घण्टा पूर्व ही उठकर गजेन्द्र-मोक्ष स्तोत्र से हरि का स्मरण करना चाहिए। घर से नैऋत्य दिशा में मलमूत्र विसर्जन कर उस भूमि को घास से आच्छादित करना चाहिए। उसके बाद मल-मूत्राङ्गों को हाथ पैरों को अच्छे से मिट्टी लगाकर पानी से शुद्ध करना चाहिए। उस के बाद निषिद्ध तिथि नक्षत्र को छोड़कर अन्य दिनों में दन्त-काष्ठ से, निषिद्ध-तिथियों में पत्तों से अथवा घास से दन्त-धावन करना चाहिए। उस के बाद केशवादि चौबीस नामों से आचमन कर विध्युक्त-प्रकार से स्नान करना चाहिए। स्नान-विधि को अगले श्लोकों में बताया गया है।

उद्धृतेति मृदालिप्य द्विषडष्टषडक्षरैः।
त्रिर्निमज्याप्यसूक्तेन प्रोक्षयित्वा पुनस्ततः॥३॥
मृदालिप्य निमज्य त्रिः त्रिर्जपेदघमर्षणम्।
स्त्रष्टारं सर्वलोकानां स्मृत्वा नारायणं परम्॥४॥
यतश्वासो निमज्याप्सु प्रणवेनोत्थितस्ततः।
सिञ्चेत्पुरुषसूक्तेन स्वदेहस्थं हरि स्मरन्॥५॥

अन्वयः उद्धृता इति ('उद्धृतासि वराहेण' इस मन्त्र से) **मृदा आलिप्य** (तुलसी जी मिट्टी से पूरे शरीर में लेपन कर) **द्विषट्-अष्ट-षट्-अक्षरैः** (वासुदेव द्वादशाक्षर-नारायणाष्टाक्षर-कृष्णषड्क्षर इन तीनों मन्त्रों को उच्चारण कर) **त्रेः निमज्य** (तीन बार डुबकी लगाना चाहिए। उसके बाद) **आप्यसूक्तेन** ('आपो हि ष्ठा मयो भुवः' इस सूक्त से) **प्रोक्षयत्विा** (पूरे शरीर को प्रोक्षण कर) **ततः** (इसके बाद) **पुनः** (फिर) **मृदा आलिप्य** (मिट्टी से देह को लेपित कर) **पूर्ववत् त्रिः निमज्य** (तीन बार अघमर्षण सूक्त को) **त्रिः** (तीन बार) **जपेत्** (जप करना है।) **सर्वलोकानां** (सारे लोकों के) **स्त्रष्टारं** (सृष्टिकर्ता) **प्रभुं** (सर्वशक्तिमान) **नारायणं** (श्रीहरि का) **स्मृत्वा** (स्मरण कर) **यतश्वासः** (श्वास को धारण करते हुए) **अप्सु** (पानी में) **निमज्य** (डुबकी लगाकर) **ततः (**उस के बाद) **प्रणवेन** (ओंकार का जप करते हुए) **उत्थितः** (उठकर) **स्वदेहस्थं** (अपने शरीर में रहनेवाले) **हरिं** (हरि का) **स्मरन्** (स्मरण करते हुए) **पुरुष-सूक्तेन** (पुरुषसूक्त से) **सिञ्चेत्** (अपने शरीर को प्रोक्षण करना चाहिए।)

अनुवादः 'उद्धृतासि वराहेण' इस मन्त्र से तुलसी जी मिट्टी से पूरे शरीर में लेपन कर वासुदेव द्वादशाक्षर-नारायणाष्टाक्षर-कृष्णषड्क्षर इन तीनों मन्त्रों को उच्चारण कर तीन बार डुबकी लगाना चाहिए। उसके बाद 'आपो हि ष्ठा मयो भुवः' इस सूक्त से पूरे शरीर को प्रोक्षण कर इसके बाद फिर मिट्टी से देह को लेपित कर तीन बार अघमर्षण सूक्त को तीन बार जप करना है। सारे लोकों के सृष्टिकर्ता सर्वशक्तिमान श्रीहरि का स्मरण कर श्वास को धारण करते हुए पानी में डुबकी लगाकर उस के बाद ओंकार का जप करते हुए उठकर अपने शरीर में रहनेवाले हरि का स्मरण करते हुए पुरुषसूक्त से अपने शरीर को प्रोक्षण करना चाहिए।

विशेष व्याख्याः स्नान-विधि इस प्रकार से हैं। प्रथमतः एक बार साधारण रूप से डुबकी लगाकर "उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन

शतबाहुना। मृत्तिके हन में पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम्"॥ इस मन्त्र से पूरे शरीर में तुलसी जी के नीचे के जगह की मृत्तिका से लेपन करना चाहिए। पश्चात् बारह अक्षरवाला "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" मन्त्र, आठ अक्षरवाला "ॐ नमो नारायणाय" मन्त्र, छह अक्षरवाला "क्लीं कृष्णाय नमः" इन तीनों मन्त्रों से तीन बार डुबकी लगाना चाहिए। उसके बाद "आपो हि ष्ठा मयो भुवः ता न दधातन" इस मन्त्र से पूरे शरीर को प्रोक्षण करना चाहिए। फिर भी मिट्टी से लेपन कर तीन बार डुबकी लगाना है। उस के बाद "ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्" इस अघमर्षण मन्त्र को तीन बार जप करने से सारे पाप नष्ट हो जायेंगे। उस के बाद पानी में शक्त्यनुसार डूबे हुए ही विष्णु के महिमा का ध्यान करना चाहिए। प्रणव को उच्चारण करते पानी से उठकर पुरुषसूक्त से पूरे शरीर को पानी से प्रक्षालन करना चाहिए।

वसित्वा वास आचम्य प्रोक्षाचम्य च मन्त्रतः।
गायत्र्या चाञ्जलिं दत्वा ध्यात्वा सूर्यगतं हरिम्॥६॥
मन्त्रतः परिवृत्याथ समाचम्य सुरादिकान्।
तर्पयित्वा निपीड्याथ वासो विस्तृत्य चाञ्जसा॥७॥
अर्कमण्डलगं विष्णु ध्यात्वैव त्रिपदीं जपेत्।
सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम्॥८॥

अन्वयः वासः (दूसरे वस्त्र को) **वसित्वा** (पहन कर) **आचम्य** (आचमन कर) **मन्त्रतः** (मन्त्र से) **प्रोक्ष्य** (शिर में शङ्ख-मुद्रा से प्रोक्षण कर) **आचम्य** (फिर आचमन कर) **गायत्र्या** (गायत्री मन्त्र से) **अञ्जलिं** (अञ्जलि-परिमित जल को सूर्य को) **दत्वा (**देकर) **सूर्यगतं** (सूर्य में स्थित) **हरिं** (श्रीहरि को) **ध्यात्वा** (ध्यान करना चाहिए।) **अथ** (उसके बाद) **मन्त्रतः** ("असावादित्यो ब्रह्म" इस मंत्र से) **परिवृत्य** (परिक्रमा कर) **समाचम्य** (आचमन कर) **सुरादिकान्** (चन्द्र ग्रह इत्यादि ग्रहों को तथा केशवादि रूपों को) **तर्पयित्वा** (तर्पण देकर) **सः** (अपने गीला वस्त्र को) **निपीड्य** (निचोड कर) **अञ्जसा** (सम्यक्) **विस्तृत्य** (सुखाने हेतु फैलाना

चाहिए। उसके बाद) **अर्कमण्डलगं** (सूर्यमण्डल में स्थित) **विष्णुं** (विष्णु को) **ध्यात्वा एव** (ध्यान करते हुए) **सहस्रपरमां** (अत्यधिक एक सहस्र तक) **शतमध्यां** (मध्यमरूप में एक सौ) **दशावरां** (कम से कम दस तक) **देवीं** (अत्यन्त श्रेष्ठ) **त्रिपदीं** (तीन पदवाली गायत्री को) **जपेत्** (जप करना चाहिए।)

अनुवादः दूसरे वस्त्र को पहन कर आचमन कर मन्त्र से शिर में शङ्ख-मुद्रा से प्रोक्षण कर फिर आचमन कर गायत्री मन्त्र से अञ्जलि-परिमित जल को सूर्य को देकर सूर्य में स्थित श्रीहरि को ध्यान करना चाहिए। उसके बाद "असावादित्यो ब्रह्म" इस मंत्र से परिक्रमा कर आचमन कर चन्द्र ग्रह इत्यादि ग्रहों को तथा केशवादि रूपों को तर्पण देकर अपने गीले वस्त्र को निचोड कर सम्यक् सुखाने हेतु फैलाना चाहिए। उसके बाद सूर्यमण्डल में स्थित विष्णु का ध्यान करते हुए अत्यधिक एक सहस्र तक मध्यमरूप में एक सौ, या फिर कम से कम दस तक अत्यन्त श्रेष्ठ तीन पदवाली गायत्री-मंत्र का जप करना चाहिए।

(विशेष-व्याख्या श्लोक-संख्या ६-८)ः गीला वस्त्र को निकाल कर दूसरा सूखा वस्त्र को पहनकर आचमन कर फिर शङ्ख-मुद्रा से पूरे शरीर को प्रोक्षण करना चाहिए। उसके बाद शरीर में बारह जगहों में गोपी-चन्दन धारण करना चाहिए। पश्चात उस के ऊपर चक्र, शङ्ख, गदा, पद्म, नारायण इन पांच मुद्राओं से देह को अङ्कित करना चाहिए। तत्पश्चात् आचमन प्राणायाम कर संवत्सर मास पक्ष तिथि ध्यानपूर्वक कर सूर्य-नारायण के अन्तर्यामी श्रीहरि के ध्यान करते हुए तीन अर्घ्य देना चाहिए। पश्चात् "असावादित्यों ब्रह्म" इस मन्त्र से स्वयं परिक्रमा करके देवताओं को तर्पण देना चाहिए। शुक्लपक्ष में केशववादि बारह मन्त्रों से, कृष्ण पक्ष में सकर्षणादि बारह नामों से विष्णु का तर्पण, तथा आदित्य इत्यादि नवग्रहों का भी तर्पण देना चाहिए। तत्पश्चात् पूर्व में पहना हुआ गीले कपड़े को निचोड कर उसे सुखाने हेतु फैलाना चाहिए। उस के बाद अत्यन्त श्रेष्ठ गायत्री जप करना

चाहिए। हमारा ब्राह्मणत्व गायत्री मन्त्र से ही आता है। अतः एक हजार से दस के बीच में अपनी शक्ति के अनुसार गायत्री का जप करना चाहिए। गायत्री जप के बिना कोई पुरुष ब्राह्मण नही बनेगा।

आसूर्यदर्शनात्तिष्ठेत् ततस्तूपविशेत वा।
पूर्वां सन्ध्या सनक्षत्रामुत्तरां सदिवाकराम्।
उत्तरामुपविश्यैव वाग्यतः सर्वदा जपेत्॥९॥

अन्वयः आसूर्यदर्शनात् (सूर्य के दर्शन होने तक) **तिष्ठेत्** (खड़े होकर गायत्री जप करना चाहिए।) **ततः तु** (सूर्य-दर्शन के बाद) **उपविशेत वा** (बैठ कर भी गायत्री-जप कर सकते हैं।) **पूर्वां सन्ध्यां** (प्रातःकालीन संध्या को) **सनक्षत्रां** (नक्षत्र रहते ही करना चाहिए।) **उत्तरां** (सायं-सन्ध्या को) **सदिवाकरां** (सूर्य रहने पर करना चाहियें।) **उत्तरां** (सायं-सन्ध्या को) **उपविश्य एव** (बैठ कर ही करना चाहियें।) **सर्वदा** (तीनों कालों में) **वाग्यतः** (वाणी का नियन्त्रण करते ही) **जपेत्** (जप करना चाहिए।)

अनुवादः सूर्य के दर्शन होने तक खड़े होकर गायत्री जप करना चाहिए। सूर्य-दर्शन के बाद बैठ कर भी गायत्री-जप कर सकते हैं। प्रातःकालीन संध्या को नक्षत्र रहते ही करना चाहिए। सायं-सन्ध्या को सूर्य रहने पर करना चाहियें। सायं-सन्ध्या को बैठ कर ही करना चाहियें। तीनों कालों में वाणी का नियन्त्रण करते ही जप करना चाहिए।

ध्येयस्सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती
नारायणः सरसिजासनसंनिविष्टः।
केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी
हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः॥१०॥

अन्वयः सवितृमण्डलमध्यवर्ती (सूर्यमण्डल के बीच में स्थित) **सरसिजासनसंनिविष्टः** (पद्मासन में उपविष्ट) **केयूरवान्** (बाहुभूषणों से अलंकृत) **मकरकुण्डलवान्** (मकर [मगर] जैसे कुण्डलों को कान में धारण किए हुए) **किरीटी** (दिव्य किरीट से

सुशोभित) **हारी** (दिव्य हार का धारण किए हुए) **हिरण्मयवपुः** (सोने के शरीरवाले) **धृतशङ्खचक्रः** (शङ्ख-चक्र इन दोनों आयुधों के धारण किए हुए) **धारणः** (श्रीहरि नारायण जी को) **सदा** (सर्वदा गायत्री-जप काल में) **ध्यानः** (ध्यान करना चाहिए।)

अनुवादः सूर्य-मण्डल के बीच में स्थित पद्मासन में उपविष्ट बाहु-भूषणों से अलंकृत मगर (मकर) जैसे कुण्डलों को कान में धारण किए हुए, दिव्य किरीट से सुशोभित, दिव्य हार का धारण किए हुए, सोने के शरीर-वाले, शङ्ख-चक्र इन दोनों आयुधों के धारण किए हुए, श्रीहरि नारायण जी को सर्वदा गायत्री-जप काल में ध्यान करना चाहिए।

गायत्र्यास्त्रिगुणं विष्णुं ध्यायन्नष्टाक्षरं जपेत्।
प्रणम्य देवान् विप्रांश्च हरिपार्षनदान्॥११॥
एवं सर्वोत्तमं विष्णुं ध्यायन्नेवार्चयेद्धरिम्।

अन्वयः [इस प्रकार गायत्री जप करने के बाद] **विष्णुं ध्यायन्** (श्रीहरि के ध्यान करते) **गायत्र्याः** (गायत्री के) **त्रिगुणं** (तीन गुणा अधिक) **अष्टाक्षरं** (नारायण अक्षर मन्त्र को) **जपेत्** (जप करना चाहिए।) [उसके बाद] **देवान्** (सूर्य आदि अष्टदिक्पालक देवताओं को) **विप्रान् च** (ब्राह्मणों को भी) **गुरून्** (जनों को) **हरिपार्षदान् च** (विष्णु के वैयक्तिक सेवक जय-विजय इत्यादि को) **प्रणम्य** (नमस्कार करने के बाद) **एवं** (इस प्रकार) **सर्वात्तमं विष्णुं** (उत्तम विष्णु को) **ध्यायन् एव** (ध्यान करते हुए) **हरिं** (श्रीहरि की) **अर्चयेत्** (करना करना चाहिए।)

अनुवादः इस प्रकार गायत्री जप करने के बाद श्रीहरि का ध्यान करते गायत्री के तीन गुणा अधिक नारायण-अक्षर-मन्त्र का जप करना चाहिए। उसके बाद सूर्य आदि अष्ट-दिक्पालक देवताओं को, ब्राह्मणों को भी, गुरु-जनों को, विष्णु के वैयक्तिक सेवक जय-विजय इत्यादि को नमस्कार करने के बाद इस प्रकार उत्तम विष्णु का ध्यान करते हुए श्रीहरि की अर्चना करना चाहिए।

(विशेष–व्याख्या श्लोक–संख्या ९–११): इन श्लोकों में गायत्री जप का विधान निरूपित है। अरुणोदय काल में उठकर स्नान कर जब तक सूर्य दिखाई न ही देता है तब तक खड़े हो ही जप करना चाहिए। सूर्यदर्शन होने के बाद नीचे बैठकर भी गायत्री जप कर सकते हैं, उठकर भी कर सकते है। परन्तु सायं–सन्ध्या बैठकर ही करना चाहिए। सूर्योदय के बाद नक्षत्र अदृश्य होने से पूर्वं में ही प्रातस्सन्ध्या करना चाहिए। सूर्यास्त के पूर्व में ही सायंकालीन सन्ध्या करना चाहिए। संध्या होते समय मौनधारण करना चाहिए। गायत्री–जप करते समय भगवान् नारायण के ध्यान करना चाहिए। गायत्री–मन्त्र किसी स्त्रीदेवता को अथवा सूर्य को प्रतिपादित नहीं करता है, किन्तु साक्षात् श्रीविष्णु का ही। अतः सूर्य–मण्डल के मध्य विराजमान शङ्ख–चक्र–धारी पद्मासन में उपविष्ट, मगर जैसे कुण्डलों से सुशोभित, केयूर (बाहु–भूषण) धारी, किरीटधारी, सोने के शरीरवाले, कौस्तुभधारी श्री नारायण के ध्यान करते हुए गायत्री का जप करना चाहिए। इस प्रकार गायत्री जप के बाद सूर्य का उपस्थान करना चाहिए। तथा सारी दिशाएं, दिक्पालक, पूरे भूमण्डल में यत्र तत्र स्थित देवताएं, चतुस्सागरपर्यन्त भूमि में रहनेवाले सारे ब्राह्मण, गुरु, हरि के पार्षद जय विजय इत्यादि छप्पन लोग, सभी को प्रणाम करते हुए सभी गोब्राह्मणों को शुभाशंसन कर संध्या को श्रीकृष्ण में समर्पित कर समाप्त करना चाहिए। उस के बाद फिर आचमन कर जितनी गायत्री जप किया गया है उसकी तीन गुणा अधिक नारायण–मन्त्र (अष्टाक्षर) जप करना चाहिए। नारायणाष्टाक्षर मंत्र का जप करने से ही गायत्री जप सफल होता है। तथा भगवान् की पूजा भी करना चाहिए। इस को श्रौत–पूजा कहा गया है। इस श्रौत–पूजा में पुरुष–सूक्त के सोलह ऋचाओं से सोली उपचार संपादित कर षोडशोपचार–पूजा होती है।

ध्यानप्रवचनाभ्यां च यथायोग्यमुपासनम्॥१२॥
धर्मेणेज्यासाधनानि साधयित्वा विधानतः।

स्नात्वा संपूजयेद्विष्णुं वेदतन्त्रोक्तमार्गतः॥१३॥

अन्वयः [इस प्रकार प्रातःकालीन पूजा के बाद] **यथायोग्यं** (यथानुकूल) **ध्यानप्रवचनाभ्यां** (ध्यान और शास्त्राध्ययन से) **उपासनं** (श्रीहरि की उपासना करना चाहिए।) **तत्पश्चात् विधानतः** (विध्युक्तरीत्या) **धर्मेण** (धर्ममार्ग से) **इज्यासाधनानि** (पूजा के साधन तुलसी–पुष्प इत्यादि वस्तुओं को) **साधयित्वा** (संपादन कर) **स्नात्वा** (फिर मध्याह्नकाल में स्नान कर) **वेदतन्त्रोक्तमार्गतः** (वैदिक और पञ्चरात्र–तन्त्रों में विहितरीत्या) **विष्णुं** (श्रीहरि की) **संपूजयेत्** (पूजा करना चाहिए।)

अनुवादः इस प्रकार प्रातःकालीन पूजा के बाद यथानुकूल ध्यान और शास्त्राध्ययन से श्रीहरि की उपासना करना चाहिए। विध्युक्तरीत्या धर्ममार्ग से पूजा के साधन तुलसी–पुष्प इत्यादि वस्तुओं को संपादन कर फिर मध्याह्नकाल में स्नान कर वैदिक और पञ्चरात्र–तन्त्रों में विहितरीत्या श्रीहरि की पूजा करना चाहिए।

वैश्वदेवं बलिं चैव कुर्यान्नित्यमतन्द्रितः।
इष्टं दत्तं हुतं जप्तं पूर्तं यच्चात्मनः प्रियम्।
दारान् सुतान् प्रियान्प्राणान् परस्मै संनिवेदयेत्॥१४॥

अन्वयः अतन्द्रितः (सतर्क होकर) **वैश्वदेवं** (वैश्वदेव याग) **बलिं च एव** (बलिहरण भी) **नित्य** (प्रतिदिन) **कुर्यात्** (करना चाहिए।) **इष्टं** (यागों को,) **दत्तं** (दान,) **हुतं** (होम,) **जप्तं** (जाप,) **पूर्तं** (जो भी जनोपयोगी कार्य किया हुआ है,) [तथा] **आत्मनः** (अपने) **प्रियं** (प्रिय वस्तु) **यत् च** (जो कुछ भी है, उस को,) **दारान्** (पत्नी को,) **सुतान्** (बच्चों को,) **प्रियान् प्राणान्** (सब से प्रिय अपने प्राणों को भी) **परस्मै** (श्रीहरि को) **संनिवेदयेत्** (समर्पित करना चाहिए।)

अनुवादः सतर्क होकर वैश्वदेव–याग और बलिहरण भी प्रतिदिन करना चाहिए। यागों को, दान, होम, जाप, जो भी जनोपयोगी कार्य किया हुआ है, तथा अपने प्रिय वस्तु जो कुछ

भी है, उस को, पत्नी को, बच्चों को, सब से प्रिय अपने प्राणों को भी श्रीहरि को समर्पित करना चाहिए।

भुक्तशेषं भगवतो भृत्यातिथिपुरस्सरः।
भुञ्जीत हृद्गतं विष्णुं स्मरंस्तद्गतमानसः।
आचम्य मूलमन्त्रेण कोष्ठं स्वमभिमन्त्रयेत्॥१५॥

अन्वयः तद्गतमानसः (श्रीहरि का चिन्तन करते करते) **भृत्यातिथिपुरस्सरः** (अपने दास तथा अभ्यागत अतिथियों के साथ) **भागवतः भुक्तशेषं** (भगवान को समर्पित अन्नशेष को) **भुञ्जीत** (भोजन करना चाहिए। [भोजन के बाद] **आचम्य** (आचमन कर) **मूलमन्त्रेण** (नारायण-अष्टाक्षर-मन्त्र से) **स्वं** (अपने) **कोष्ठं** (पेट को) **अभिमन्त्रयेत्** (अभिमन्त्रण करना चाहिए।)

अनुवादः श्रीहरि का चिन्तन करते करते अपने दास तथा अभ्यागत अतिथियों के साथ भगवान को समर्पित अन्नशेष को भोजन के बाद आचमन कर नारायण-अष्टाक्षर-मन्त्र से अपने पेट को अभिमन्त्रण करना चाहिए।

(विशेष-व्याख्या श्लोक-संख्या १३-१५): दिन को आठ भागों में विभक्त कर प्रथम भाग में प्रातःस्नान संध्या, द्वितीयभाग में स्वयं वेदाध्ययन दूसरों के अध्यापन करना चाहिए। उसके बाद तीसरे भाग में भगवत्पूजा होम इत्यादियों का साधन धन धान्य इत्यादि का संग्रह करना चाहिए। इस प्रकार साधनों को संचित कर पुनः दिन के मध्यभाग (चौथवा अंश) में पुनः स्नानकर पञ्चरात्र वेदोक्त विधि से भगवत्पूजा करना चाहिए। अर्घ्य पाद्य इत्यादि सोलह उपचार समर्पित कर शालिग्रामशिला अथवा अन्य प्रतिमाओं संनिहित भगवान को शुद्ध-रूप से तैयार किया गया अन्न को भोग लगाकर भगवान को आरती कर फिर छत्र चामर इत्यादि उपचार दिखाकर पूजा समाप्त करना चाहिए। उसके बाद लक्ष्मीदेवी चतुर्मुख-ब्रह्मा, हनुमानजी गरुड़जी शेषजी इत्यादि देवताएं

तथा सनक सनन्दन शुक इत्यादि ऋषि लोगों को भी भगवन्निवेदित भोग का कुछ अंश समर्पित करना चाहिए।

उसके बाद प्रतिदिन वैश्वदेव होम करना चाहिए। हम लोग हर दिन धान्यों को पकाने हेतु उसके साथ रहनेवाले अत्यन्त सूक्ष्म कृमि कीट इत्यादि को भी छेदन, भेदन, पकाना, शोषण और मार्जन—इस प्रकार पांच प्रकार हिंसा करते हैं। इस से उत्पन्न होनेवाले पाप के परिहारार्थ प्रतिदिन देवताओं को अन्न की आहुति देकर वैश्वदेव करना चाहिए। उसके बाद सारे भूतों की तृप्ति हेतु अन्न से चक्राकार में भूत-बलि भी देना चाहिए। इस प्रकार देवताओं के संतोष हेतु देव-यज्ञ, पितृदेवताओं के संतोषहेतु पितृ-तर्पण, पाप-परिहारार्थ वैश्वदेव, भूत-तृप्ति-हेतु भूत-बलि, ऋषि-तृप्ति हेतु स्वाध्याय तथा अध्यापन इन सारी क्रियाओं से समस्त-लोक ही संतुष्ट हो जाता हैं। उस से मनुष्य उन लोगों के ऋण से मुक्त हो जाता है।

इन सारी क्रियाओं को और अपने सारे प्रियवस्तुओं को बाल-बच्चे पत्नी प्राण इत्यादि सब कुछ भी भगवान को फिर समर्पित करना चाहिए।

उस के बाद ब्रह्मचारी और यति इन दोनों को प्रथमतः भिक्षा प्रदान करना चाहिए। उसके बाद अपने दास दासियाँ अतिथि अभ्यागत परिवार इन सब के साथ भगवान को लगाया गया भोग को ग्रहण करना चाहिए। भोजन के समय में भी बिल्कुल मौन से भगवान के स्मरण करते हुए 'गोविन्द' 'गोविन्द' इस प्रकार नामोच्चारण करना चाहिए। भोजन के बाद नारायण अष्टाक्षरमन्त्र से भुक्तान्न के सम्यक् पचन हेतु अपने पेट को अभिमिन्त्रत करना चाहिए। तथा 'अगस्त्य और वडवानल! मेरे द्वारा खाए गए अन्न को पाचन करें' इस प्रकार प्रार्थना करना चाहिए।

वेदशास्त्रविनोदेन प्रीणयन् पुरुषोत्तमम्।
अहश्शेषं नयेत्सन्ध्यामुपासीताथ पूर्ववत्॥१६॥

अन्वयः दशास्त्रविनोदेन (वेद और शास्त्रों के अभ्यास और विचारों से) **पुरुषोत्तमं** (श्रीहरि को) **प्रीणयन्** (संतुष्ट कराते हुए) **अहश्शेषं** (दिन के अवशिष्ट भाग को) **यायेत्** (बीतना चाहिए।) **अथ** (सायंकाल में) **पूर्ववत्** (प्रातःवत्) **संध्याम् उपासीत** (संध्या-वन्दन करना चाहिए।)

अनुवादः वेद और शास्त्रों के अभ्यास और विचारों से श्रीहरि को संतुष्ट कराते हुए दिन के अवशिष्ट भाग को बीतना चाहिए। सायंकाल में प्रातःवत् संध्या-वन्दन करना चाहिए।

यामात्परत एवाथ स्वपेत ध्यात्वा जनार्दनम्।
अन्तराले ततो बुद्ध्वा स्मरेत बहुशो हरिम्॥१७॥

अन्वयः एवाथ (सायंकालीन भोजन इत्यादि कर) **यामात् परत एव** (रात्रि के प्रथम भाग के बाद ही) **जनार्दनं** (असुर-संहारि श्रीकृष्ण का) **ध्यात्वा** (ध्यान कर) **स्वपेत्** (शयन करना चाहिए।) **ततः** (उस के बाद) **अन्तराले** (बीच में) **बुद्ध्वा** (नीन्द से उठकर) **हरिं** (श्रीहरि को) **बहुशः** (अनेक बार) **स्मरेत** (स्मरण करना चाहिए।)

अनुवादः सायंकालीन भोजन इत्यादि कर रात्रि के प्रथम भाग के बाद ही असुर-संहारि श्रीकृष्ण का ध्यान कर शयन करना चाहिए। उस के बाद बीच में नीन्द से उठकर श्रीहरि को अनेक बार स्मरण करना चाहिए।

(विशेष-व्याख्या श्लोक-संख्या १६-१७): मध्याह्न भोज करने के बाद फिर वेदों के प्रवचन शास्त्रों के अध्ययन से श्रीहरि को प्रसन्न करना वाहिये। तथा अपने गृहस्थीय कर्तव्यों को निभाना चाहिए। इस प्रकार सायंकाल प्राप्त होने पर पूर्ववत् हजार से दस के बीच में गायत्री जप के साथ सायंकालीन सन्ध्योपासना करना चाहिए। तब तक रात्र काल प्राप्त होता है। रात्रि के तीन भाग होते हैं। हर एक भाग करीब तीन घण्टे का होता है। उस प्रकार रात्रि के प्रथम याम (भाग) में भोजन इत्यादि समाप्त कर द्वितीय याम में ही पूर्व में या दक्षिण में सिर रखकर शयन करना

चाहिए। रात्रि के प्रथम भाग में सोना सर्वथा निषिद्ध हैं बीच में कभी उठने पर हरि के स्मरण करते हुए फिर सोना चाहिए। फिर ब्राह्मी मुहूर्त में उठना चाहिए। इस प्रकार आदर्श दिनचर्या को अपनाना चाहिए।

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्ध्यात्मना वानुसृतः स्वभावम्।
करोमि यद्यत्सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयामि॥१८॥

अन्वयः कायेन (शरीर से,) **वाचा** (वाणी से,) **मनसा** (मन से,) **इन्द्रियैः वा** (अथवा इन्द्रियों से,) **बुद्ध्या** (निश्चयरूप बुद्धि से,) **आत्मना वा** (अध वा आत्मस्वरूप से) **स्वभावम् अनुसृतः** (अपने स्वभाव के अनुसार) **यत् यत्** (जो कुछ भी) **करोति** (करता है) **तत् सकलं** (उन सारे कर्मों को) **परस्मै नारायणाय** (सर्वोत्तम नारायण को) **समर्पयेत्** (अर्पित करना चाहिए।)

अनुवादः शरीर से, वाणी से, मन से, अथवा इन्द्रियों से, निश्चयरूप बुद्धि से, अध वा आत्मस्वरूप से अपने स्वभाव के अनुसार जो कुछ भी करता है उन सारे कर्मों को सर्वोत्तम नारायण को अर्पित करना चाहिए।

(विशेष-व्याख्या श्लोक-संख्या १८): मन पांच प्रकार का होता है- मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त और चेतना। अतः मनो-वाक्-कार्यों से, इन्द्रियों से, बुद्धि से, अथवा आत्मा से जो कुछ भी करता है, उन सारे कर्मों को नारायण को समर्पण करना चाहिए। श्रीहरि के इच्छा के बिना एक घास भी हिल नहीं सकता है। अतः "हमारे कर्म नारायण भगवान् के द्वारा ही किये गये जाते हैं"--इस चिन्तन से सारे कार्यों को भगवान् को को समर्पित करना चाहिए।

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरस्सर्वाणि भूतानि कूटस्थोक्षर उच्यते॥१९॥
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रमयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः॥२०॥

यस्मात्क्षरमतीतोहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥२१॥
यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत॥२२॥
इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ।
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान् स्यात् कृतकृत्यश्च भारत॥२३॥

अन्वयः क्षरः (क्षर) **अक्षरः एव च** (और अक्षर) **इमौ द्वौ** (ये दोनों) **पुरुषौ** (पुरुषतत्त्व) **लोके** (चौदह लोकोंमें) [प्रसिद्ध हैं] **सर्वाणि भूतानि** (चराचर भूतसमूहको) **क्षरः** (क्षर) [और] **कूटस्थः** (कूटस्थ पुरुषको) **अक्षर** (अक्षर) **उच्यते** (कहा जाता है)॥१९॥

अन्वयः तु (किन्तु) **अन्यः** (पूर्वोक्तिसे भिन्न) **उत्तमः पुरुषः** (एक उत्तम पुरुष) **परमात्मा इति** (परमात्मा शब्दसे) **उदाहृतः** (कथित होते हैं) **यः** (जो) **ईश्वरः** (ईश्वर) [तथा] **अव्ययः** (निर्विकार) [हैं, एवं] **लोकत्रयम्** (त्रिलोकमें) **आविश्य** (प्रविष्ट होकर) **बिभर्ति** (पालन करते हैं)॥२०॥

अन्वयः यस्मात् (क्योंकि) **अहम्** (मैं) **क्षरम् अतीतः** (क्षरसे अतीत) **अक्षरात् अपि च** (और अक्षरसे भी) **उत्तमः** (श्रेष्ठ हूँ) **अतः** (अतः) **लोके** (जगत्में) **वेदे च** (और वेदमें) **पुरुषोत्तमः** (पुरुषोत्तमके नामसे) **प्रथितः अस्मि** (प्रसिद्ध हूँ)**॥२१॥**

अन्वयः भारत (हे भारत!) **यः** (जो) **एवम्** (इस प्रकार) **असम्मूढ़** (मोहशून्य होकर) **माम्** (मुझे) **पुरुषोत्तमम्** (पुरुषोत्तम) **जानाति** (जानते हैं) **सः** (वे) **सर्ववित्** (सर्वज्ञ) **सर्वतभावेन** (सब प्रकारसे) **माम्** (मुझे) **भजति** (भजते हैं)॥**२२॥**

अन्वयः अनघ भारत (हे निष्पाप भारत!) **इति** (इस प्रकारसे) **इदम् गुह्यतमम्** (इस गुह्यतम अर्थात् अति-रहस्य-पूर्ण) **शास्त्रम्** (शास्त्र) **मया उक्तम्** (मेरे द्वारा कहा गया) **एतत्** (इसको) **बुद्ध्वा** (जानकर) **बुद्धिमान्** (बुद्धिमान् लोग) **कृतकृत्यः च** (और भी कृतार्थ) **स्यात्** (होते हैं)**॥२३॥**

अनुवाद: क्षर और अक्षर—ये दो पुरुष-तत्त्व चौदह लोकोंमें प्रसिद्ध हैं। इनमें से चराचर भूतसमूहको क्षर और कूटस्थ पुरुषको अक्षर कहा जाता है॥१९॥

किन्तु, पूर्वोक्त क्षर और अक्षर तत्त्वसे भिन्न एक अन्य उत्तम पुरुष परमात्मा कहलाते हैं, जो ईश्वर और निर्विकार हैं तथा तीनों लोकोंमें प्रविष्ट होकर उनका पालन करते हैं॥२०॥

क्योंकि मैं क्षरसे भी अतीत तथा अक्षरसे भी श्रेष्ठ हूँ, अत: जगत्में और वेदमें पुरुषोत्तमके नामसे प्रसिद्ध हूँ॥२१॥

हे भारत! जो इस प्रकार मोहशून्य होकर मुझे पुरुषोत्तम जानते हैं, वे सर्वज्ञ हैं, एवं सभी प्रकारसे मुझे ही भजते हैं॥२२॥

हे निष्पाप अर्जुन! इस प्रकार यह अति-रहस्य-पूर्ण शास्त्र मेरे द्वारा कहा गया। इसे जानकर बुद्धिमान् लोग और भी कृतार्थ हो जाते हैं॥२३॥

(विशेष-व्याख्या श्लोक-संख्या १९-२३): वस्तुतः लोकमें दो ही पुरुष हैं— उनके नाम--'क्षर' और 'अक्षर' हैं। विभिन्नांशगत चैतन्यरूप जीव ही 'क्षर' पुरुष है। अपने स्वरूपसे क्षरणशील तटस्थ स्वभाववशतः ही जीवको क्षर पुरुष कहा जाता है। जो कभी भी अपने स्वरूपसे च्युत नहीं होते हैं, वे स्वांश-तत्त्व ही 'अक्षर' पुरुष हैं। अक्षर पुरुषका दूसरा नाम कूटस्थ पुरुष भी है। उस कूटस्थ अक्षर पुरुषके तीन प्रकाश हैं--जगत्के सृष्ट होनेपर जगत्में सर्वव्यापी सत्तास्वरूपमें एवं उसके (जगत्के) समस्त धर्मोंकी विपरीत अवस्थामें जो अक्षर पुरुष लक्षित होते हैं, वे ही ब्रह्म हैं। अतएव ब्रह्म जगत्-सम्बन्धी तत्त्वविशेष हैं, स्वतन्त्र तत्त्व नहीं। और, जगत्में चित्स्वरूप जीवोंको आश्रय देकर जो थोड़े परिमाणमें शुद्ध चित्-तत्त्वके प्रकाशक हैं, वे ही परमात्मा हैं। वे भी जगत्-सम्बन्धी तत्त्वविशेष हैं, स्वतन्त्र नहीं। तीसरा कूटस्थ प्रकाश स्वयं भगवत्-तत्त्व हैं।

ब्रह्म, परमात्मा एवं भगवान्--तीनों दर्शन एक नहीं हैं। इन दर्शनोंमें तारतम्य विद्यमान हैं। जल, हिम एवं कुहासा तत्त्वत: एक होनेपर भी जलको बर्फ या कुहासा अथवा कुहासेको बर्फ या जल नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण ही परतत्त्वकी सीमा हैं। उसी परतत्त्वकी पहली प्रतीति ब्रह्म, दूसरी प्रतीति परमात्मा और तीसरी प्रतीति स्वयं-भगवान् हैं--ये तीनों एक नहीं हैं। इसीलिए शास्त्रोंमें परमब्रह्मको ब्रह्मसे श्रेष्ठ बताया गया है। 'ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्'--गीताके इस श्लोकमें इसे भलीभाँति स्पष्ट किया गया है। इसलिए ब्रह्म और आत्मामें 'परम' विशेषण युक्तकर परमब्रह्म, परमात्मा आदिको श्रेष्ठ बताया गया है। किन्तु, भगवान् शब्दके पहले 'परम' विशेषणका प्रयोग कभी नहीं देखा जाता है। इसलिए स्वयं-भगवान् ही परतत्त्वकी चरम सीमा हैं, परमात्मा और ब्रह्म उनकी ही दो प्रतीतियाँ हैं। कृष्णकी अङ्गकान्तिको ब्रह्म तथा उनके अंशांशको परमात्मा कहा गया है। तृतीय एवं सर्वोत्कृष्ट अक्षर पुरुषका नाम 'भगवान्' है। भगवान् कृष्ण ही भगवत्-तत्त्व है। भगवान् कृष्ण क्षर-पुरुष 'जीव' से अतीत एवं अक्षर-पुरुष 'ब्रह्म' और 'परमात्मा' से उत्तम है। अतएव जगत्में तथा वेदमें कृष्ण को पुरुषोत्तम कहा जाता है। अतः यही सिद्धान्त जानना चाहिए कि पुरुष दो हैं--क्षर और अक्षर। अक्षर-पुरुषके तीन प्रकाश हैं--सामान्य प्रकाश 'ब्रह्म', उत्तम प्रकाश 'परमात्मा' और सर्वोत्तम प्रकाश 'भगवान्'।

रुद्रं समाश्रिता देवा रुद्रो ब्रह्माणमाश्रितः।
ब्रह्मा मामाश्रितो नित्यं नाहं कंचिदुपाश्रितः॥२४॥

अन्वयः देवाः (इन्द्र इत्यादि देवताएं) **रुद्रं** (शंकरजी के) **आश्रिताः** (आश्रय में हैं।) **रुद्रः** (शंकरजी) **ब्रह्माणं** (ब्रह्माजी के) **आश्रितः** (आश्रय में हैं।) **ब्रह्मा** (ब्रह्माजी) **नित्यं** (प्रतिदिन) **मां** (मेरे [श्रीहरि के]) **आश्रितः** (आश्रय में हैं।) **अहं** (मैं) **कंचित्** (किसी के भी) **उपाश्रितः न** (आश्रय में नही हूँ।)

अनुवादः भगवान् कहते हैं, "इन्द्र इत्यादि देवताएं शंकरजी के आश्रय में हैं। शंकरजी ब्रह्माजी के आश्रय में हैं। ब्रह्माजी प्रतिदिन मेरे [श्रीहरि के] आश्रय में हैं। मैं किसी के भी आश्रय में नही हूँ।"

(विशेष-व्याख्या श्लोक संख्या २४)ः "इन्द्र इत्यादि सारी देवताएं शंकरजी के आश्रय में रहते हैं। शंकर जी चतुर्मुख ब्रह्माजी के आश्रय में रहते हैं। चतुर्मुख ब्रह्माजी मेरे आश्रय में रहते हैं। मैं तो बिलकुल स्वतन्त्र हूँ। किसी के आश्रय मैं नहीं हूं। अतः मैं ही सर्वोत्तम पुरुष हूँ।" यह वचन श्रीहरि का है।

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठान्ति मानवाः।
श्रद्धावन्तोनुसूयन्तो मुच्यन्ते तेपि किल्बिषैः॥२५॥
ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति में मतम्।
सर्वज्ञानविमूढांस्तान् विद्धि नष्टानचेतसः॥२६॥

अन्वयः ये मानवाः (जो मनुष्य) **मे** (मेरे) **इदं मतं (**इस मत का) **श्रद्धावन्तः** (श्रद्धायुक्त होकर) **अनसूयन्तः** (असूया-रहित होकर) **अनुतिष्ठन्ति** (अनुष्ठान करते हैं) **ते अपि** (वे मनुष्य भी) **कर्मभिः** (कर्मपाश से) **मुच्यन्ते** (मुक्त होंगे।) **ये तु** (जो मनुष्य) **अभ्यसूयन्तः** (असूया से) **मे मतं** (मेरे मत को) **न अनुतिष्ठन्ति** (अनुष्ठान नहीं करते हैं) **तान्** (उन मनुष्यों को) **अचेतसः** (बुद्धिरहित) **सर्वज्ञानविमूढान्** (ज्ञातव्य विषय में विमूढ़) (और) **नष्टान्** (नष्ट) [इस प्रकार से] **विद्धि** (समझो।)

अनुवादः जो मनुष्य मेरे इस मत का श्रद्धायुक्त होकर असूया-रहित होकर अनुष्ठान करते हैं वे मनुष्य भी कर्मपाश से मुक्त होंगे। जो मनुष्य असूया से मेरे मत को अनुष्ठान नहीं करते हैं, उन मनुष्यों को बुद्धिरहित ज्ञातव्य विषय में विमूढ़ और नष्ट इस प्रकार से समझो।

द्वौ भूतसर्गौ लोकेस्मिन् दैव आसुर एव च।
विष्णुभक्तिपरौ दैवो विपरीतस्तथासुरः॥२७॥

अन्वयः अस्मिन् (यह) **लोके** (जगत में) **दैव** (दैवी लोग) **आसुरः एव च** (आसुरी लोग) [इस प्रकार से] **द्वौ** (दो प्रकार के) **भूतसर्गौ** (मनुष्यों की सृष्टि है।) [उन में] **विष्णुभक्तिपरः** (विष्णु–भक्ति संपन्न जीवों को) **दैवः** (दैवी लोग समझना चाहिए) **तथा** (और) **विपरीतः (**विष्णु–भक्ति–रहित जीवों को) **आसुरः** (आसुरी लोग समझना चाहिए।)

अनुवादः यह जगत में दैवी लोग और आसुरी लोग ––इस प्रकार से दो प्रकार के मनुष्यों की सृष्टि है। उन में विष्णु–भक्ति संपन्न जीवों को दैवी लोग समझना चाहिए और विष्णु–भक्ति–रहित जीवों को आसुरी लोग समझना चाहिए।

(विशेष व्याख्या श्लोक संख्या २५–२७): इस जगत में दो प्रकार के मनुष्यों की सृष्टि होती है। जो विष्णु–भक्त मनुष्य हैं, उनकी दैव–सृष्टि है। जो विष्णु के द्वेष करते हैं, उन की सृष्टि आसुरी–सृष्टि है। इन में जो दैवी–स्वभाव के मनुष्य हैं, वे मेरे (भगवान् के) मत के अनुसार जीवन यापित कर मुक्त हो जाते हैं। जो मेरे द्वेषी हैं और असूया से मेरे शास्त्र की अवमानना करते हैं, वे लोग कभी भी मुक्त नहीं होंगे।

स्मर्तव्यः सततं विष्णुः विस्मर्तव्यो न जातुचित्।
सर्वे विधिनिषेधास्स्युः एतयोरेव किंकराः॥२८॥
धर्मो भवत्यधर्मोपि कृतो भक्तैस्तवाच्युत।
पापं भवति धर्मोपि यो न भक्तैः कृतो हरेः॥२९॥

अन्वय श्लोक २८ः विष्णुः (श्रीहरि को) **सततं** (सर्वदा) **स्मर्तव्यः** (स्मरण करना चाहिए।) **जातुचित्** (कभी भी) **न विस्मर्तव्यः** (विष्णु को भूलना नहीं चाहिए।) **सर्वे** (सभी) **विधिनिषेधाः** (विधि और निषेध) **एतयोः एव** (स्मरण–विधि और विस्मरण–निषेध इन दोनों से) **किंकराः** (निकृष्ट हैं।)

अनुवाद श्लोक २८ः श्रीहरि को सर्वदा स्मरण करना चाहिए। कभी भी विष्णु को भूलना नहीं चाहिए। सभी विधि और निषेध स्मरण–विधि और विस्मरण–निषेध इन दोनों से निकृष्ट हैं।

अन्वय श्लोक २९: अच्युत (हे नारायण!) **तव भक्तैः** (तुमारे भक्तों के द्वारा) **कृतः** (किया गया) **अधर्मः** (अधर्म कार्य भी) **धर्मः भवति** (धर्मकार्य बन जाता है।) **हरेः न भक्तैः** (हरि में भक्तिरहित लोगों के द्वारा) **कृतः** (किया गया) **धर्मः अपि** (धर्मकार्य भी) **पापं भवति** (पापकार्य हो जाता है।)

अनुवाद श्लोक २९: हे नारायण! तुमारे भक्तों के द्वारा किया गया अधर्म-कार्य भी धर्म-कार्य बन जाता है। हरि में भक्ति-रहित लोगों के द्वारा किया गया धर्म-कार्य भी पाप-कार्य हो जाता है।

(विशेष व्याख्या श्लोक-संख्या २८-२९): हम जो भी धर्म कार्य करते हैं वे सारे कार्य श्री हरिस्मरण से ही सफल होते हैं। हरिस्मरण के बिना ये सारे कर्म व्यर्थ ही होते हैं। अतः सारे शास्त्रों का मुख्य विधि एक ही है "सर्वदा हरि स्मरण करना चाहिए।" 'संध्या-वन्दन करना चाहिए' 'सत्य बोलना चाहिए' 'अग्निहोत्र करना चाहिए' 'दान देना चाहिए' इन सारी विधियों से हरिस्मरण का विधि सर्वोत्कृष्ट है, मुख्य है। जैसे मानवता का मुख्य-विधि हैं—"मनुष्य को दूसरे लोगों के प्रति दयावान् होना चाहिए।"। इस मुख्य विधि के अधीन ही "पढना चाहिए" "लिखना चाहिए" इत्यादि विधि प्रवृत्त होती हैं और मुख्य विधि के विरोध में ये सारी विधियां कार्य नहीं करती हैं। उसी प्रकार हरिस्मरण-विधि के अधीन ही अन्य धार्मिक-विधियां प्रवृत्त होती हैं। हरिस्मरण-विधि के विरोध में कार्य नहीं करती हैं। उसी प्रकार "हरिस्मरण को कभी छोड़ना नहीं चाहिए" इस निषेध के अधीन ही अन्य निषेध जैसे "असत्य नहीं बोलना चाहिए" "मांस नही खाना चाहिए" "प्राणि-हिंसा नहीं करना चाहिए" इत्यादि निषेध प्रवृत्त होंगे।

इसी कारण से मुख्य "हरि-स्मरण" नियम के पालन करनेवाले लोगों के द्वारा किया गया अधर्म-कार्य भी धर्म-कार्य बन जाता है, क्योंकि वह अधर्म-कार्य भी मुख्य-विधि के अनुसार

ही किया गया है। तथा हरि में भक्ति रहित लोगों के द्वारा किया धर्म-कार्य भी पाप-कार्य बन जाते हैं, क्योंकि वे धर्म-कार्य मुख्य नियम के अनुसार नहीं किये गये हैं।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
नित्यं भवेच्च मन्निष्ठो बुभूषुः पुरुषस्तथा॥३०॥

अन्वयः मन्मनाः भव (मन मुझ में लगावो,) **मद्भक्तो भव** (मेरे भक्त बनों,) **मद्याजी भव** (मुझे उद्देश्य कर याग करो,) **मां नमस्कुरु** (मुझे नमस्कार करो,) **नित्यं** (प्रतिदिन) **मन्निष्ठ** (मुझ में श्रद्धावान् रहो,) **बुभूषुः** (मोक्ष की इच्छा करनेवाले) **पुरुषः** (मनुष्य) **तथा** (पूर्वोक्त-प्रकार से रहना चाहिए।)

विशेष व्याख्या—गीता के वचनों को उदाहृत कर प्रतिदिन हरि-स्मरण की अत्यन्त आवश्यकता का प्रतिपादन कर रहे हैं। जो पुरुष संसार को छोड़कर मुक्ति को प्राप्त करना चाहता है, उस को भगवान श्रीकृष्ण जी कह रहे हैं कि "तुम मुझ में मन लगावो, मेरे भक्त बनो, मुझे उद्देश्य कर याग (यज्ञ) करो, मुझे नमस्कार करो, प्रतिदिन मेरे विषय में श्रद्धा रखो, किसी अन्य-देवताओं को उद्देश्य कर याग मत करो, मुझे उद्देश्य कर याग करो—इस प्रकार रहने से ही मोक्ष प्राप्त होगा।"

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥

(श्रीमद्भगवद्गीता १८.६५)

अन्वय--मन्मनाः (मद्गत चित्त) [होओ] मद्भक्तः (मेरे नाम-रूपादिके श्रवण-कीर्त्तनादि परायण) [होओ] मद्याजी (मेरी पूजा करनेवाला) भव (होओ) माम् नमस्कुरु (मुझे नमस्कार करो) [तदा--तब] माम् एव एष्यसि (मुझे ही पाओगे) ते (तुम्हें) सत्यम् (सत्य ही) प्रतिजाने (प्रतिज्ञा करता हूँ) [यतः त्वम्--क्योंकि तुम] मे (मेरे) प्रियः असि (प्रिय हो)।

भावानुवाद--'मन्मना भव'--मेरा भक्त होकर ही तुम मेरी चिन्ता करो, ज्ञानी या योगी होकर मेरा ध्यान मत करना। अथवा,

'मन्मना भव'--श्यामसुन्दर, सुस्निग्ध घुंघराले लट, सुन्दर भ्रूलताविशिष्ट, मधुर कृपाकटाक्ष वर्षणकारी मुखचन्द्रविशिष्ट मुझे जिसने अपना मन आत्मसमर्पण कर दिया है, वैसा होओ। अथवा, कर्ण, नेत्र आदि इन्द्रि योंको मुझे अर्पण करो अर्थात् श्रवण, कीर्त्तन, मेरी श्रीमूर्त्तिके दर्शन, मेरे मन्दिर मार्जन, लेपन, पुष्प चयन, माला, अलङ्कार, छत्र, चामर आदि द्वारा सभी इन्द्रियोंको मेरी सेवामें नियोजितकर मेरा भजन करो। अथवा, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि मुझे अर्पित करो अर्थात् मेरी पूजा करो। अथवा, भूमिपर निपतित होकर अष्टाङ्ग या पञ्चाङ्ग प्रणाम मात्र करो। अथवा, मेरी चिन्ता, सेवा, पूजा और प्रणाम--इन चारोंको एकत्र या किसी एकका अनुष्ठान करो। इस प्रकार तुम मुझे ही पाओगे । तुम अपने मनको मुझे प्रदान करो, इसके बदले मैं स्वयंको तुम्हें प्रदानकर दूँगा। यह सत्य है, तुम इस विषयमें संशय मत करो। अमरकोषके अनुसार सत्य, शपथ और तथ्य--इन तीनोंका एक ही तात्पर्य है। यदि कहो कि मथुरावासी तो बात-बातपर शपथ खाते हैं, उनका क्या भरोसा, तो इसका उत्तर यह है कि यह बात तो ठीक है, किन्तु मैं प्रतिज्ञाकर यह कह रहा हूँ, क्योंकि तुम मेरे प्रिय हो। कोई अपने प्रिय व्यक्तिकी वञ्चना नहीं करता है॥॥

सा. व. प्रकाशिका वृत्ति—

मन्मना भव--कृष्णमें ही अपने मनको लगाना ही मन्मना भव होना है। श्रीकृष्णने स्वयं अपने मुखसे मन्मनाभवका आदर्श उदाहरण गोपियोंको ही स्वीकार किया है। श्रीकृष्ण उद्धवसे कह रहे हैं—

'ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः।
मामेव दयितं प्रेष्ठमात्मानं मनसा गताः।
ये त्यक्तलोकधर्माश्च मदर्थे तान् बिभर्म्यहम्॥
मयि ताः प्रेयसां प्रेष्ठे दूरस्थे गोकुलस्त्रियः।
स्मरन्त्योऽङ्ग विमुह्यन्ति विरहौत्कण्ठ्यविह्वलाः॥
धारयन्त्यतिकृच्छ्रेण प्रायः प्राणान् कथञ्चन।

प्रत्यागमनसंदेशैर्बल्लव्यो मे मदात्मिकाः॥'

(श्रीमद्भा. १०/४६/४/-६)

अर्थात्, प्यारे उद्धव! गोपियोंका मन सदा-सर्वदा मुझमें निमग्न रहता है, मैं ही उनका प्राण तथा जीवन-सर्वस्व हूँ। मेरे लिए ही उन्होंने घर-बार, पति-पुत्र, सगे-सम्बन्धी, लोक-लज्जा, धर्म आदि सब कुछ छोड़ा है। वे नित्य-निरन्तर मुझमें ही तन्मय रहती हैं। 'मैं आऊँगा'--केवल मेरी इस बातपर विश्वासकर बड़े कष्टसे किसी प्रकार अपने प्राणोंको धारणकर मेरी प्रतीक्षा कर रही हैं।

यह 'मन्मना भव' का सर्वोत्तम उदाहरण है। यह तो कृष्णके विरहमें व्याकुल गोपियोंकी बात है, जरा पूर्वरागमें भी गोपियोंकी कृष्णके प्रति तन्मयताका प्रसङ्ग श्रवण करें—

एक दिनकी बात है। एक गोपी विवाहिता होकर नन्दगाँवमें आई थी। इस गोपीने श्रीकृष्णके नाम, उनके परम मनोहर और मधुर लीलाओंके विषयमें सुना तो था, किन्तु कभी प्रत्यक्ष देखनेका सुयोग नहीं पाया था। प्रतिदिनकी भाँति श्रीकृष्ण सखाओंके साथ वंशी-वादन करते हुए गोचारणके लिए वन जा रहे हैं, वंशी ध्वनि सुनकर व्रजके समस्त प्राणी कृष्णकी अनुपम माधुरीका दर्शन करनेके लिए उत्कण्ठित होकर राजमार्गके समीप यत्र-तत्र एकत्रित हो गए हैं, कोई अटारियों पर तो कोई वृक्ष पर चढ़ा है, कोई मार्गके समीप खड़ा है, तो कोई झरोंखेसे झाँक रहा है। वह नवविवाहिता गोपी भी कृष्णके दर्शनके लिए जाना चाहती है, किन्तु उसकी सास उसे जाने नहीं दे रही है। सासने कहा, "वहाँ एक काला साँप है, जो तुम्हें डँस लेगा, अतः तुम्हारा वहाँ जाना उचित नहीं है।" उस नववधूने प्रतिवाद किया, "तुम्हारी बेटी भी तो वहाँ गई, मुझे क्यों नहीं जाने दे रही हो।" सासने उसे अनुमति नहीं दी, तथापि सासकी बात अनसुनी कर वह नई गोपी कृष्णके दर्शनके लिए राजमार्गके समीप झाड़ीके ओटमें खड़ी हो गई।

कृष्णने उस गोपीके मन की बात जान ली और एक बछड़ेकी पूँछपर हाथ रख दिया। वह बछड़ा कूदता-फाँदता उस नई गोपीके समीप आकर खड़ा हो गया। कृष्ण भी बछड़ेको पकड़नेके लिए बछड़ेके पीछे दौड़ते हुए वहीं आ गए। पल भरके लिए कृष्ण वहाँ त्रिभंग-ललित मुद्रामें खड़े हुए और अपनी वंशीसे उस गोपीकी ठोड़ीको छू-भर दिया और पुनः सखाओंके दलमें सम्मिलित हो गए। वह गोपी कृष्णकी रूप-माधुरीमें आविष्ट होकर बाह्य-ज्ञानशून्य होकर वहीं खड़ी रही। कृष्ण सखाओंके साथ वनमें प्रवेश कर गए। बहुत समय बीत गया, किन्तु तब भी वह घर नहीं आई, तो ढूँढ़ते हुए उसकी सास वहाँ आई। उसके शरीरको झकझोरते हुए सासने कहा, "वही हुआ, जिसका मुझे भय था। उस काले सर्पने तुम्हें डँस लिया।] शास उसे अपने संग घर ले आई और उसे आदेश दिया कि तुम मटकेमें रखे दहीसे छाछ निकालो। उस नववधूने दहीका मटका समझकर सरसोंके मटकेको उठा लिया, क्योंकि अब भी वह पूर्ण चेतन नहीं हुई थी। उसी सरसोंको दही समझकर वह मथने लगी। पूर्ण बाह्य-ज्ञान नहीं होनेके कारण कभी वह सरसों मथने लगती, तो कभी रुक जाती । इसलिए कभी तो कर्कश ध्वनि होती और कभी वह ध्वनि बन्द हो जाती। जब उसकी शासका ध्यान इधर आया तो उसका सरसों मथना बन्द करवा दिया। सासने उसके सिरपर एकके बाद एक पानीके तीन मटके रख दिए, हाथमें पानी भरनेके लिए रस्सी तथा गोदमें एक छोटा बच्चा दे दिया और कहा कि कुएँसे पानी भर लाओ। वह नववधू पानी भरनेके लिए कुएँपर गई और पानी भरनेके लिए घड़ेमें रस्सी बाँधने लगी, किन्तु अपनी स्वाभाविक दशामें नहीं होनेके कारण वह उस बच्चेके गलेमें रस्सी लगाने लगी। निकट ही पानी भरनेवाली अन्य गोपियोंने हाय! हाय! कहते हुए उसके हाथको पकड़ लिया। वे लोग कहने लगीं, "इसे क्या हो गया? लगता है इसे भूत लग गया।" कुछ अन्य

गोपियाँ, जो जानती थीं, उन्होंने कहा, "भूत नहीं! इसे नन्दका पूत लग गया है।"--यह है 'मन्मना भव' का उदाहरण।

मद्भक्तो भव--जो गोपियोंकी भाँति कृष्णके प्रति तन्मय नहीं हो सकते, उनके लिए यहाँ 'मद्भक्तो भव'का उपदेश दिया जा रहा है। 'मद्भक्तो भव' का तात्पर्य है--सब प्रकारसे स्वयंको भगवान्‌के चरणोंमें अर्पित कर देना। भक्त होकर किस प्रकार निरन्तर उनकी सेवाकी जा सकती है, इसके विषयमें प्रह्लाद-उपाख्यानमें कहा गया है—

'श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्म निवेदनम्॥
इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नव लक्षणा।
क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम्॥'

(श्रीमद्भा. ७/५/२३-२४)

अर्थात्, प्रह्लाद महाराजने कहा--हे पिताजी! नौ प्रकारसे भगवान् श्रीविष्णुकी भक्ति की जाती है, ये हैं--उनके नाम-रूप-गुण-लीला इत्यादिका श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, उनके श्रीचरणोंकी सेवा, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन। यदि भगवान्‌के प्रति समर्पण भावसे ये नौ प्रकारकी भक्ति की जाय, तो मैं उसीको उत्तम अध्ययन समझता हूँ।

महाराज अम्बरीष इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। वे कृष्णके प्रति कैसी भक्ति करते थे, इसे श्रीमद्भागवतमें देखिए--

'स वै मनः कृष्ण पदारविन्दयोर्वचांसि वैकुण्ठ गुणानुवर्णने।
करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु श्रुतिं चकाराच्युतसत्कथोदये॥
मुकुन्द लिङ्गालयदर्शने दृशौ तद्भृत्यगात्रस्पर्शेऽङ्गसङ्गमम्।
घ्राणं च तत्पादसरोजसौरभे श्रीमत्तुलस्या रसनां तदर्पिते॥
पादौ हरेः क्षेत्रपदानुसर्पणे शिरो हृषीकेशपदाभिवन्दने।
कामं च दास्ये न तु कामकाम्यया
यथोत्तमःश्लोकजनाश्रया रतिः॥'

(श्रीमद्भा. ९/४/१८-२०)

उन्होंने अपने मनको श्रीकृष्णचन्द्र के चरणारविन्दयुगलमें, वाणीको भगवद्गुणानुवर्णनमें, हाथोंको श्रीहरिमन्दिरके मार्जन–सेवनमें और अपने कानोंको भगवान् अच्युतकी मङ्गलमयी कथाके श्रवणमें लगा रखा था। उन्होंने अपने नेत्र मुकुन्दमूर्त्ति एवं मन्दिरोंके दर्शनमें, अङ्ग–सङ्ग भगवद्भक्तोंके शरीर–स्पर्शमें, नासिका उनके चरणकमलोंपर चढ़ी तुलसीके दिव्य गन्धमें और रसना (जिह्वा) को भगवान्के प्रति अर्पित नैवेद्य–प्रसादमें संलग्न कर दिया था। अम्बरीष महाराजके पैर भगवान्के क्षेत्र आदिकी पैदल यात्रा करनेमें ही लगे रहते और वे सिरसे भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी वन्दना किया करते। राजा अम्बरीषने माला, चन्दन आदि भोग–सामग्रीको भगवान्की सेवामें समर्पित कर दिया था। भोगनेकी इच्छासे नहीं बल्कि इसलिए कि इससे वह भगवत्प्रेम प्राप्त हो, जो पवित्रकीर्त्ति भगवान्के निजजनमें ही निवास करता है।

बिल्वमङ्गल ही इस श्रेणीके भक्तोंके उदाहरणस्वरूप हैं। इनका जन्म दक्षिण भारतमें प्रवाहिता कृष्णा–वेण्णा नदीके तटपर स्थित किसी गाँवमें हुआ था। ये वेद–वेदान्त इत्यादिके प्रकाण्ड पण्डित थे, तथापि चिन्तामणि नामक एक वेश्याके प्रति अत्यधिक आसक्त थे। एक बारकी बात है, रातका समय था, घनघोर वर्षा हो रही थी। किन्तु चिन्तामणिसे मिलनेके लिए ये इतने अधीर थे कि किसी भी बातकी परवाह न करते हुए उससे मिलने चल दिए। रास्तेमें एक नदी पड़ती थी। बाढ़के कारण उस भयानक रजनीमें उस उफनती नदीने कालका रूप धारण कर रखा था। नदी पार करनेका कोई साधन नहीं था। बिल्वमङ्गल नदीके किनारे बहते हुए एक शवको तरणी बनाकर तैरते हुए नदीसे उत्तीर्ण हुए। जब वे चिन्तामणिके यहाँ गए, तो उसका घर बन्द था। प्राचीरसे लटकते हुए सर्पको रस्सी समझकर उसीके सहारे प्राचीरके ऊपर चढ़ गए, किन्तु प्राचीरके दूसरी ओर पाँव फिसल जानेके कारण अन्दर गिरकर अचेत हो गए। गिरनेके शब्दको सुनकर सखियोंके साथ चिन्तामणि बाहर आई और विद्युतके प्रकाशमें बिल्वमङ्गलको

पहचानते ही वह सारी बात समझ गई। चिन्तामणिने स्वयंको धिक्कारते हुए बिल्वमङ्गलको भी खूब फटकार लगाई। उसने कहा कि तुम्हारी जितनी आसक्ति मुझमें है, यदि इतनी आसक्ति श्रीकृष्णके चरणोंमें होती, तो निश्चित ही तुम्हारा कल्याण हो गया होता। चिन्तामणिकी फटकारको सुनकर इनकी आँखें खुलीं और ये वहाँसे वृन्दावनकी ओर चल दिए।

रास्तेमें इन्हें प्यास लगी। जब ये किसी गाँवके समीपसे जा रहे थे, तो एक स्त्रीको कुएँसे पानी भरते हुए देखा। ये पानी पीनेके लिए वहाँ गए, किन्तु उस स्त्रीके रूपपर मुग्ध हो गए। उस स्त्रीके पीछे-पीछे ये उसके घर तक जा पहुँचे। स्त्रीके पतिने साधु समझकर सम्मान देते हुए इन्हें अन्दर बैठाया। बिल्वमङ्गलने उनसे स्त्रीको बुलानेका आग्रह किया। पतिके कहनेसे वह स्त्री बाहर आई। इन्होंने स्त्रीसे उनके बालोंमें लगे हुए काँटेको माँगा। स्त्रीसे काँटा पाकर बिल्वमङ्गलने काँटेको वहीं अपनी दोनों आँखोंमें यह कहकर चुभो दिया कि आँखें ही अपने विषय अर्थात् रूपके वशीभूत होकर मुझे भ्रष्ट करती हैं, न रहेगी बाँस, न बजेगी बाँसुरी। आँखोंसे अविरल रक्त प्रवाहित होने लगा। वहाँसे नेत्रहीन होकर ये वृन्दावनके लिए पुनः चल दिए, किन्तु इनका ङ्दय पवित्र हो चुका था। कुछ ही दूर चलनेके बाद इनके समीप एक बालक आया। उस बालकने अत्यन्त ही मधुर आवाजमें पूछा —"बाबा! आप कहाँ जा रहे हैं?" बिल्वमङ्गलने उत्तर दिया, "मैं वृन्दावन जा रहा हूँ।" बालकने कहा, "मैं भी वृन्दावन जा रहा हूँ। आप मेरी यह लठिया पकड़ लें।" वह बालक और कोई नहीं स्वयं मुरली मनोहर श्रीकृष्ण थे।

मद्याजी--मद्याजीका तात्पर्य है--मेरा अर्चन करो। अर्चन करनेवालेकी निष्ठा कैसी होती है, इसके लिए मैं अपने अनुभवकी एक बात बताता हूँ, जो इसी मथुराकी घटना है। यद्यपि अर्चनकी निष्ठा भी साधारणतया सम्भव नहीं है, किन्तु 'मद्भक्तो भव' की निष्ठा से थोड़ी निम्नस्तरकी है, इसीलिए भगवान् कहते हैं--यदि

बिल्वमङ्गल जैसा मेरा भक्त नहीं बन सकते हो, तो मेरा अर्चन करो। घटना इस प्रकार है--मथुरामें एक बाबा रहते थे, जो शालग्राम शिलाका निष्ठापूर्वक अर्चन करते थे। अर्चनके विभिन्न अंगोंका उन्हें पूर्ण ज्ञान नहीं था, किन्तु जो कुछ करते, निष्ठापूर्वक करते। उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि प्रातः ब्रह्ममुहूर्तमें यमुना स्नानकर यमुना-जलसे ही मैं शालग्रामका अर्चन करूँगा। एक बारकी बात है, माघ महीनेकी अमावस्या थी--घनघोर अन्धकार, उसपर भी रातभर वर्षा होती रही और हवाके तेज झोंके चलते रहे। आकाशमें तारोंके न होने कारण उन्हें समयका ज्ञान नहीं हो पाया और वे ब्राह्म-मुहूर्तसे भी पहले उठकर यमुना स्नानके लिए चल पड़े। यमुनाजीका पानी बर्फकी भाँति ठंडा था। ठंडके मारे उनका बुरा हाल हो रहा था, तथापि अपने नियमकी रक्षाके लिए उन्होंने यमुनाजीमें स्नान किया और ठाकुरजीके लिए जल लिया। जब वे वापस आ रहे थे, तो अन्धकार, वर्षा और शारीरिक अस्वस्थताके कारण उन्हें अत्यन्त कठिनाई हो रही थी। वे बड़े चिन्तित हुए कि मैं किस प्रकार घर जाकर ठाकुरजीकी सेवा कर पाऊँगा। इतनेमें ही उन्होंने देखा कि सामनेसे लालटेन लेकर कोई चला आ रहा है। जब वे और निकट गए, तो देखा कि वह एक बालक है। बालकके सिरपर वर्षासे बचनेके लिए कम्बल था। बिल्कुल समीप आनेपर बालकने पूछा, "बाबा! आप कहाँ जाएँगे?" उस व्यक्तिने अपना ठिकाना बताया, तो बालकने पुनः कहा, "मैं भी उधर ही जा रहा हूँ, आप मेरे साथ चलें, मैं आपको घर छोड़ दूँगा।" वे उस बालकके साथ चलने लगे। कब वे अपने घर पहुँच गए, उन्हें पता ही नहीं चला। जब वे घरकी ओर मुड़ने लगे, तो उन्होंने सोचा कि बालकका नाम तो पूछ लूँ। किन्तु, यह क्या! दूर-दूर तक उस बालकका पता नहीं था। वे वहीं जड़वत् खड़े रह गये और सोचने लगे, "हाय! मेरे वचनकी रक्षाके लिए स्वयं छलिया इस रूपमें आया और मुझे छलकर चला गया।"

माम् नमस्कुरु--यमराजजी यमदूतोंको उपदेश दे रहे हैं—

'जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयं
चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम्।
कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदापि
तानानयध्वमसतोऽकृतविष्णुकृत्यान्॥'

(श्रीमद्भा. ६/३/२९)

अर्थात्, हे दूतगण! जिसकी जिह्वा कृष्ण नामका कीर्त्तन नहीं करती है, जिसका चित्त श्रीकृष्णके पादपद्मका स्मरण नहीं करता है, जिसका मस्तक एकबार भी श्रीकृष्णको नमन नहीं करता है, ऐसे असत् लोगोंको ही मेरे पास लाओ, क्योंकि वे कुछ भी भक्तिका कार्य नहीं करते हैं।

'दशाश्वमेधि पुनरेतिजन्म कृष्ण प्रणामी न पुनर्भवाय॥'

अर्थात्, दश अश्वमेध यज्ञ करने वालेको जन्म ग्रहण करना पड़ता है, किन्तु जो कृष्णको प्रणाम करते हैं, वे पुनः जन्म नहीं ग्रहण करते।

'सकृत प्रणामी कृष्णस्य मातुस्तन्यम् पिवेन्नहि॥'

अर्थात्, जो कृष्णको प्रणाम करते हैं, उन्हें पुनः माताका स्तन–पान नहीं करना पड़ता है।

श्रीजीवगोस्वामी भक्तिसन्दर्भ (१६९) में 'नमः' शब्दकी व्याख्यामें लिखते हैं—*'वन्दनम् नमस्कारम्'*। श्रीअक्रूरजीने नमस्कारके द्वारा श्रीकृष्णकी भक्ति प्राप्त की थी।

स्कन्द पुराणमें नमस्कारका महात्म्य इस प्रकार कहा गया है —

'शाठ्येपि नमस्कारं कुर्वतः शार्ङ्गधन्विने।
शतजन्मार्जितं पापं तत्क्षणादेव नश्यति॥'

अर्थात् यदि कोई शठतापूर्वक भी शार्ङ्गधन्वी श्रीविष्णुको प्रणाम करे, तो उसके सौ जन्मोंके सञ्चित पाप भी तत्क्षणात् नष्ट हो जाते हैं।

एष नित्यस्सदाचारो गृहिणो वनिनस्तथा।
वैश्वदेवं बलिं दन्तधावनं चाप्यूते वटोः॥३१॥

अन्वयः एषः (पूर्वश्लोकों में कह गया जो धर्म है वह धर्म) **गृहिणः** (गृहस्थों को तथा) **वनिनः** (वानप्रस्थों को भी) **नित्यः सदाचारः** (प्रतिदिन का आचार है।) **वैश्वदेवं** (वैश्वदेव) **बलिं** (बलिहरण) **दन्तधावनं च अपि** (काष्ठों से दातों को मांजना भी) **ऋते** (इन तीनों को छोड़कर) **बटोः** (ब्रह्मचारियों का भी यही सदाचार है।)

अनुवादः पूर्व-श्लोकों में कह गया जो धर्म है, वह धर्म गृहस्थों का तथा वानप्रस्थों का भी प्रतिदिन का आचार है। वैश्वदेव, बलि-हरण और काष्ठों से दातों को मांजना—यह तीन कार्यों को छोड़कर ब्रह्मचारियों का भी यही सदाचार है।

विशेष व्याख्याः गृहस्थ तथा वानप्रस्थ इन दोनों आश्रमों को पूर्वोक्त आचार प्रतिदिन विहित हैं। ब्रह्मचारी का भी धर्म यही है। परन्तु वैश्वदेव और बलि-हरण नहीं हैं। दन्त-काष्ठों से दन्त-धावन भी ब्रह्मचारी के लिए निषिद्ध है।

एवमेव यतेः स्वीयवित्तेन तु विना सदा।
मूलमन्त्रैः सदा स्नानं विष्णोरेव च तर्पणम्॥३२॥
विशेषो निष्क्रिययतेरजलाज्जलिता तथा।
तर्पणं तु हरेरेव यतेरन्यस्य चोदितम्।
समिद्धोमो वटोश्चैव स्मृत्वा विष्णुं हुताशने॥३३॥

अन्वय (श्लोक ३२): यतेः (संन्यासियों को) **स्वीयवित्तेन विना** (अपने पैसे के बिना) **सदा** (सर्वदा) **एवमेव** (बाकी आचार समान है।) **सदा** (सर्वदा) **मूलमन्त्रैः** (नारायणाष्टाक्षर मन्त्र से तीनों कालों में स्नान तथा) **विष्णोः एव** (केवल विष्णु को) **तर्पणं** (तर्पण ये दोनों कार्य) **विशेषः** (विशेषरूप से विहित है।)

अनुवाद (श्लोक ३२): संन्यासियों को अपने पैसे के बिना सर्वदा बाकी आचार समान है। सर्वदा नारायणाष्टाक्षर मन्त्र से तीनों कालों में स्नान तथा केवल विष्णु को तर्पण ये दोनों कार्य विशेषरूप से विहित है।

अन्वय (श्लोक ३३): निष्क्रिययतेः (परमहंस संन्यासी को) **अजलाञ्जलिता** (जलाञ्जलि के बिना) **हरेः एव** (श्रीहरि को ही) **तर्पणं तु** (तर्पण देना विशेष रूप से विहित है।) **अन्यस्य** (परमहंस यति को छोड़कर बाकी हंस-कुटीचक-बहूदक संन्यासियों को) **हरेः एव तर्पणं** (हरि को तर्पण देना) **चोदितं** (विहित है।) **तथा समिद्धोमः** (कुटीचक-बहूदकों को समिद्धोम भी विहित है।) **वटोः च एव** (ब्रह्मचारी को भी) **विष्णुं** (विष्णु का) **स्मृत्वा** (स्मरण कर) **हुताशने** (अग्निमें) **समिद्धोमः** (समिधाओं का होम विहित है।)

अनुवाद (श्लोक ३३): परमहंस-संन्यासी को जलाञ्जलि के बिना श्रीहरि को ही तर्पण देना विशेष रूप से विहित है। परमहंस-यति को छोड़कर बाकी हंस-कुटीचक-बहूदक संन्यासियों को हरि को तर्पण देना विहित है। कुटीचक-बहूदकों को समिद्धोम भी विहित है। ब्रह्मचारी के लिए भी विष्णु का स्मरण कर अग्निमें समिधाओं का होम विहित है।

सर्ववर्णाश्रमैर्विष्णुरेक एवेज्यते सदा।
रमाब्रह्मादयस्तस्य परिवारतयैव तु॥३४॥

अन्वयः सर्व-वर्णाश्रमैः (सभी वर्ण और आश्रमों के लोगों के द्वारा) **सदा** (सर्वदा) **विष्णुः एक एव** (केवल विष्णु को उद्देश्य कर) **इज्यते** (याग किया जाता है।) **तस्य** (उस श्री हरि के) **परिवारतया एव** (परिवार-स्वरूप में ही) **रमा-ब्रह्मादयः** (लक्ष्मी देवी-ब्रह्माजी-शंकरजी इत्यादि देवताओं को याग किया जाता है।)

अनुवादः सभी वर्ण और आश्रमों के लोगों के द्वारा सर्वदा केवल विष्णु को उद्देश्य कर याग किया जाता है। उस श्री हरि के परिवार-स्वरूप में ही लक्ष्मी देवी-ब्रह्माजी-शंकरजी इत्यादि देवताओं को याग किया जाता है।

(विशेष व्याख्या श्लोक क्रमांक ३२-३४): चार प्रकार के संन्यासी होते हैं। कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस। इन में परमहंस-यति सर्वथा क्रियारहित होते हैं। अतः उन के लिए स्नान,

सन्ध्या एवं प्रणव–जप ही कर्तव्य है। शिखा, यज्ञोपवीत इत्यादि कुछ भी जरूरी नहीं हैं। वह परमहंस–संन्यासी सर्वदा हरि को ही तर्पण करते हैं। ब्रह्मयज्ञ इत्यादि पञ्च–महायज्ञ उन के लिये विहित नहीं हैं। देव–तर्पण, ऋषि–तर्पण एवं पितृ–तर्पण––ये तीनों तर्पण संन्यासियों के विहित नहीं हैं। सभी प्रकार के यति केवल हरि को ही तर्पण देते हैं। कुटीचक और बहूदक संन्यासियों को जरूरी हैं कि वे हरि को उद्देश्य कर अग्नि में आहुति भी दे।

संन्यासियों का अपना कोई धन–संग्रह नहीं होता है। अतः वित्त की चिन्ता के बिना केवल हरि का निरन्तर स्मरण करना चाहिए। संन्यासियों को त्रिकाल–स्नान विहित है। और केवल विष्णु को ही तर्पण देना चाहिए।

न केवल संन्यासियों के लिये ये नियम हैं, अपितु सभी वर्णों के तथा आश्रमों के लोगों के लिये भी यही नियम लागू होते हैं। केवल विष्णु का ही भजन–पूजन–तर्पण इत्यादि करना चाहिए। विष्णु–परिवार के अङ्गतया लक्ष्मी ब्रह्माजी हनुमान जी इत्यादियों के भी पूजन करना चाहिए। ध्यान रखना है कि ये देवताएं सर्वोत्तम नहीं हैं किन्तु विष्णु ही सर्वोत्तम हैं।

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयंसमनुस्मरेद्यः।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्॥३५॥

अन्वयः कविं (सर्वज्ञानी) **पुराणं** (सबसे पुराने) **अनुशासितारं** (उपदेशक) **अणोः अणोयांसं** (सूक्ष्म से सूक्ष्म) **सर्वस्य धातारं** (सब के रक्षक) **अचिन्त्यरूपं** (अत्यन्त सूक्ष्म होने से हमारे चिन्तन के परे) **आदित्यवर्णं** (उदीयमान सूर्य जैसे) **स्वर्ण–वर्ण तमसः परस्तात्** (प्रकृति से भी उत्कृष्ट जो भगवान हैं उन को जानने से मुक्त होगा।)

अनुवादः सर्व–ज्ञानी, सबसे पुराने उपदेशक, सूक्ष्म से सूक्ष्म, सब के रक्षक, अत्यन्त सूक्ष्म होने से हमारे चिन्तन के परे, उदीयमान सूर्य जैसे प्रकृति से भी उत्कृष्ट, जो भगवान हैं, उन को जानने से मुक्त होगा।

वेदहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसस्तु पारे।
सर्वाणि रूपाणि विचिन्त्य धीरो नामानि कृत्वाभिवदन्यदास्ते॥३६॥

अन्वयः धीरः (जो भगवान जिस कारण से) **सर्वाणि रूपाणि** (ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत सभी वस्तुओं के रूप को) **विचिन्त्य** (सृजित कर) **नामानि कृत्वा** (उनके नाम भी सृजितकर) **अभिवदन् आस्ते** (नाम बोलते रहते हैं) **एतं** (इन) **तमसः तु पारे** (प्रकृति से भी उत्कृष्ट) **आदित्यवर्णं** (सूर्य जैसे स्वर्णिम आभावाले) **महान्तं पुरुषं** (महापुरुष को) **अहं** (मैं) **वेद** (जानता हूं।)

अनुवादः जो भगवान जिस कारण से ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत सभी वस्तुओं के रूप को सृजित कर उनके नाम भी सृजितकर नाम बोलते रहते हैं, इन प्रकृति से भी उत्कृष्ट सूर्य जैसे स्वर्णिम आभावाले महापुरुष को मैं जानता हूं।

धाता पुरस्ताद्यमुदाजहार शक्रः प्रविद्वान् प्रदिशश्चतस्त्रः।
तमेवं विद्वानमृत इह भवति नान्यः पन्था अयनाय विद्यते॥३७॥

अन्वयः यं (जिस भगवान को) **पुरस्तात्** (पूर्व में) **धाता** (ब्रह्माजी नें) **उदाजहार** (उत्कृष्टत्वेन प्रतिपादन किया है,) **चतस्त्र प्रदिशः** (चारो दिशाओं में रहनेवाले पदार्थों को) **प्रविद्वान्** (जाननेवाले) **शक्रः** (इन्द्र ने भी जिन को) **उदाजहार** (उत्कृष्टत्वेन प्रतिपादन किया है,) **तं** (उस भगवान् को) **एवं** (उत्कृष्टत्वेन) **विद्वान्** (जाननेवाला पुरुष) **इह** (इस संसार में) **अमृतः भवति** (मुक्त हो जाता है।) **अयनाय** (मोक्ष के लिये) **अन्यः पन्थाः** (भगवान के ज्ञान के बिना दूसरा कोई उपाय) **न विद्यते** (नहीं हैं।)

अनुवादः जिस भगवान को पूर्व में ब्रह्माजी नें उत्कृष्टत्वेन प्रतिपादन किया है, चारो दिशाओं में रहनेवाले पदार्थों को जाननेवाले इन्द्र ने भी जिन को उत्कृष्टत्वेन प्रतिपादन किया है, उस भगवान् को उत्कृष्टत्वेन जाननेवाला पुरुष इस संसार में मुक्त हो जाता है। मोक्ष के लिये भगवान के ज्ञान के बिना दूसरा कोई उपाय नहीं हैं।

(विशेष व्याख्या श्लोक संख्या ३५-३६): भगवान् के ज्ञान से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस विषय में श्रुति-स्मृति-वाक्य प्रमाण दे रहे हैं। श्लोक क्रमांक ३५ गीता वाक्य है। भगवान् सर्वज्ञानी हैं, पुरातन पुरुष हैं, सब को ज्ञानोपदेश करनेवाले वही हैं। अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थों से भी सूक्ष्म हैं। इसी कारण से भगवान के रूप अचिन्त्य है। सब के रक्षक वही हैं। प्रकृति से परे हैं। उदीयमान सूर्य जैसा सोने के रंग के हैं। उस भगवान का चिन्तन करने से योगी मुक्त हो जाते हैं।

(विशेष-व्याख्या श्लोक-क्रमांक ३६-३७): ये यजुर्वेद के हैं। वेद-पुरुष बोल रहे हैं कि जिस भगवान् ने सब वस्तुओं के रूप और नाम की सृष्टि कि है, उस भगवान को मैं जानता हूं। न केवल मैं अपितु अन्य लोग भी उन्हें जानते हैं। ब्रह्माजी भी इसी भगवान् को उत्कृष्ट मान कर भगवान् के गुणगान कर रहे हैं\ जो इन्द्र चारों दिशांओं में रहनेवाले पदार्थों को जानते हैं, वे भी उसी भगवान् के गुणगान करते हैं। इस भगवान् के ज्ञान से ही मुक्ति प्राप्त होती है। मोक्ष के लिये दूसरा कोई मार्ग नहीं है। इस प्रकार वेद स्मृति इत्यादि में भगवान का गुणगान किया गया है। अतः उसी भगवान् का ज्ञान प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है।

आनन्दतीर्थमुनिना व्यासवाक्यसमुद्धृतिः।
सदाचारस्य विषये कृता संक्षेपतः शुभा॥३८॥

अन्वयः सदाचारस्य विषये (सदाचार के विषय में) **शुभा** (अत्यन्त श्रेष्ठ) **व्यास-वाक्य समुद्धृतिः** (भगवान वेदव्यासजी के वचनों का उद्धरण [प्रतिपादन]) **संक्षेपतः** (संक्षिप्त-रूप से) **आनन्दतीर्थमुनिना** (आनन्द-तीर्थ [मध्वाचार्य] नामक मुनि के द्वारा) **कृता** (किया गया है।)

अनुवादः सदाचार के विषय में अत्यन्त श्रेष्ठ व्यास-वाक्य भगवान वेदव्यासजी के वचनों का उद्धरण (प्रतिपादन) संक्षिप्त-रूप से आनन्द-तीर्थ [मध्वाचार्य] नामक मुनि के द्वारा किया गया है।

अशेषकल्याणगुणनित्यानुभवसत्तनुः
अशेषदोषरहितः प्रीयतां पुरुषोत्तमः॥३९॥

अन्वयः अशेष-कल्याण-गुण-नित्यानुभव-सत्तनुः (सारे मङ्गल-कर-गुण तथा सर्व-विषयों का ज्ञान—यह दोनों जिन का मङ्गल शरीर है, वे) **अशेषदोषरहितः** (सारे दोषों से दूर रहनेवाले) **पुरुषोत्तमः (**पुरुषोत्तम श्रीहरि) **प्रीयतां** (इस ग्रन्थ की रचना से संतुष्ट हो जाए।)

अनुवादः सारे मङ्गल-कर-गुण तथा सर्व-विषयों का ज्ञान—यह दोनों जिन का मङ्गल शरीर है, वे सारे दोषों से दूर रहनेवाले पुरुषोत्तम श्रीहरि इस ग्रन्थ की रचना से संतुष्ट हो जाए।

(विशेष व्याख्या श्लोक-संख्या ३७-३८): इस प्रकार सदाचार के बारे निरूपण कर मध्वाचार्य जी इस ग्रन्थ को समाप्त कर रहे हैं। वेदव्यास जी के अनेक ग्रन्थों से चुने गये वचनों के द्वारा ही इस ग्रन्थ में सदाचार का वर्णन किया गया हैं, इस की रचना से भगवान संतुष्ट हो जाए। भगवान का शरीर प्रकृति से निर्मित नहीं हैं, किन्तु पूर्णतया सारे कल्याण गुण और नित्य-ज्ञान — इन दोनों ही भगवान् का शरीर है। और भगवान् में दोष अणुमात्र भी नहीं है। वे पुरुषोत्तम भगवान् इस कार्य से संतुष्ट होकर अनुग्रह करें।

सदाचार-स्मृति-ग्रन्थ संपूर्ण होता हैं।

***